सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

भाष्यकार

श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद

भाग २

१९४०
विज्ञान परिषद
इलाहाबाद

सूर्य-सिद्धान्त

चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार
परिलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार
और नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

भाष्यकार

श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद

प्रकाशक

विज्ञान परिषद

मुद्रक

सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

प्रथम बार १०००] १९८५ [मूल्य १)

सूर्यग्रहणाधिकार

परिलेखाधिकार या छेद्यकाधिकार

ग्रहयुत्यधिकार

नक्षत्र-ग्रहयुत्यधिकार

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३२	११	किरणों	किरणें
६३३	२४	पहुँचेगी पिंड	पहुँचेगी । पिंड
६४५	श्लोक की १ली पंक्ति	मध्ययोद्धृता	मध्ययोद्धृता
६५०	६	भचा और भचा	भचा और भच
६५४	८	भूमार्ध	भूमार्ध
६५६	९	कोणा	कोणों
६६५	११	जाड़	जोड़
६७०	१७	सकल	सकल ग्रहे ॥१७॥
६७५	१०	मनैक्यखंड	मानैक्यखंड
"	१५	ना पड़ता है	देना पड़ता है
६७६	१४	तब है	है तब
६८२	३	प्रतीच्य	प्राच्य
६९७	१	१९०	१९०१
७००	११	१६.६७	१६.६६
७०२	४	होगा ।	होगा,
७०३	१२	क्रन्ति	क्रान्ति
७०६	२२	५४ घ. ३६ प.	५४ घ. ५६ प.
७०८	५	सूर्यसिद्धान	सूर्यसिद्धान्त
"	६	होगा राहु के इसी ।	होगा । राहु के इसी
७१६	१६	श्रोक	श्लोक
"	१७	क्षययाह्य	क्षयाह्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१७	१४	+	×
७१८	१६	२२°४०·५	२२°४०′
७१६	३	६८४	६८५
७२३	६	ननि	नति
७२६	५	व्रग	वर्ग
”	१०	”	”
७३०	१	कज्या	कोज्या
”	२३	५८	५८६
७३२	१४	३	१३
७३४	१२	आन	आने
७३५	७	पूष	पूर्व
७४४	१४	.५११३	.५११३ कला
७४५	१	२३७१	·२३७१
७४५	१८	६५०°	६५००

७४६ की पहली और दूसरी पंक्तियां ७४७ पृष्ठ की पादटिप्पणी को दूसरी और तीसरी पंक्तियां हैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७४७	४	−·७°६७	−·७०६७
७५५	१६का अंतिम अक्षर	अ	आ
७६०	२३	१′	४१′
७६२	२०	६८६६	·६८६६
७७०	१२	चन्द्रमा क	चन्द्रमाकी
७८२	८	विन्दुआपर	विन्दुओंपर
७८३	१२	सीचो	खींचो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७८३	२४	आर	और
७८४	६	प्रत्येका	प्रत्येक
७८७	६	आर	ओर
७८६	पाद टि-प्पणी की २ री पंक्ति	सारी	सारी बातें
७६०	२	आर	ओर
७६४	४	धा	चा
७६८	२१	(१६)	है (१६)
७६६	७	मत्रस्य	मत्स्य
८००	१७	द्रुष्ट	दृष्ट
८०१	२३	सको	इसको
८०५	१५	लिने	लिए
८१५	१	विन	बिन्दु
८२७	१०	प्रका	प्रकार
८३१	२	अङ्कगाणत	अङ्कगणित
”	२४	होता	होती
८३२	११	वम	कम
८३६	१४	ध ग्रह	घ ग्रह
८४४	२२	वद्गुत	बहुत
८५५	५	त्रशदर्धाधं	त्रिंशदर्धार्धं
”	”	वाधताः	वर्धिताः
८५७	१०	बम्बों	बिम्बों
८५६	६	है । तब	है तब
”	२०	पद्मम	पद्म

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८६१	१	सूय	सूर्य
,,	६	शाङ्कु	शङ्कु
,,	१०	,,	स्वशङ्कु
८६६	६	स्वभाग	स्वभोग
८७२	६	युगरसः	युगरसाः
८७८	क्रमसंख्या २ नवां स्तम्भ	१५	५१
८७६	,, ७ छठां स्तम्भ	५४	४५
८८०	,, २३ नवां ,,	८७	४७
८८७	६ पंक्ति	अंश	२ अंश
८६०	१२	भाग	भोग
८६०	२३	आयनक्कर्म	आयनदृक्कर्म
८६२	१	ब्रह्महृदयांदशकैः	ब्रह्महृदयादंशकैः
,,	१४	कृत्तिका और	कृत्तिका, मघा और
८६५		Orioniss	Orionis
,,		$\gamma \ddot{u} \mu$	$\gamma \breve{s} \mu$
८६७		δζ Sagittaii	δζ Sagittari
६०८	१३	ऊपर	आगे
६१२	२०	मर्ग शीर्ष	मार्गशीर्ष
६२७	२६	कंभ	कुंभ

चन्द्रग्रहणाधिकार

संक्षिप्त वर्णन

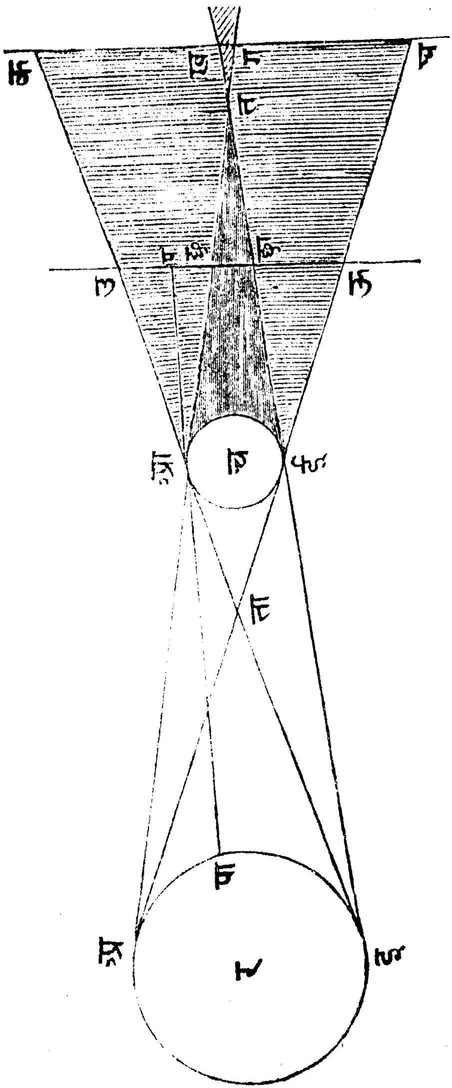
[१ श्लोक—सूर्य और चन्द्रमाके मध्यव्यासके मान । २-३ श्लोक—प्रत्येकके स्पष्ट व्यास जाननेकी रीति तथा चंद्रमाकी कक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास (योजनों और कलाओंमें) जाननेकी रीति । ४-५ श्लोक—चंद्रमाकी कक्षामें पृथ्वीकी छायाके व्यासका मान जाननेकी रीति । ६ श्लोक—चंद्रमाके पातके कहां रहनेसे ग्रहण हो सकता है । ७ श्लोक—किस तिथिमें ग्रहण हो सकता है । ८-श्लोक—अमावास्या और पूर्णमासीके अन्तकालके सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करनेकी रीति । ९—श्लोक-ग्रहण क्यों पड़ता है । १० श्लोक-ग्रस्त भागका परिमाण जाननेकी रीति । ११-श्लोक—सर्वग्रास ग्रहण होगा या खंड ग्रहण अथवा ग्रहण न पड़ेगा यह निश्चय करनेकी रीति । १२-१५ श्लोक—ग्रहण और सर्वग्रास ग्रहण कितने समयतक रहेगा यह जाननेकी रीति । १६ श्लोक—ग्रहणके आरंभकाल और अन्तकाल जाननेकी रीति । १७ श्लोक—सर्वग्रास ग्रहणके आरंभकाल और अन्तकाल जाननेकी रीति । १८—२१ श्लोक—किस समय कितना भाग ग्रस्त रहेगा यह जाननेकी रीति । २२—२३ श्लोक—ग्रासका परिमाण जानकर इष्टकाल जाननेकी रीति । २४—२५ श्लोक—ग्रहणका चित्र खींचनेके लिये वलन जाननेकी आवश्यकता । २६ श्लोक—इष्टकालमें बिम्बका अङ्गुलात्मक मान जाननेकी रीति ।]

सूर्य और चन्द्रमामें ग्रहण किस प्रकार लगता है यह जाननेके लिए पहले प्रकाशके कुछ गुणोंकी जानकारी आवश्यक

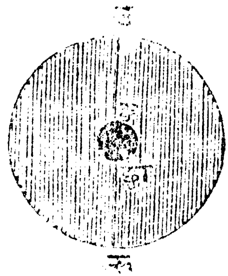
है। इसलिए पहले संक्षेपमें इन्हींपर विचार किया जायगा। यह सबके अनुभवकी बात है कि रातको दीपकके उजेलेमें दीवालपर किसी वस्तुकी जो छाया पड़ती है वह कहीं हलकी और कहीं गहरी होती है। गहरी छाया बीचमें होती है और हलकी छाया गहरी छायाको घेरे रहती है। यदि वस्तु दीवालके पास हो तो गहरी छाया बड़ी होती है और हलकी छाया कम। ज्यों ज्यों वह वस्तु दीवालसे दूर होती जाती है परंतु दीपकके निकट त्यों त्यों छायाका विस्तार तो बढ़ता जाता है परंतु गहरी छाया कम होती जाती है और हलकी छाया अधिक। यदि वस्तु दीपकसे छोटी हो तो एक स्थिति ऐसी भी आजायगी जिसमें गहरी छाया बिल्कुल नहीं पड़ेगी, केवल हलकी छाया दीवालपर देख पड़ेगी। हां, यदि वस्तु दीपकसे बड़ी हो तो गहरी छाया दीवालपर सदैव पड़ेगी।

दीवालके जिस भागपर गहरी छाया पड़ती है उस भागपर दीपकके प्रकाशका कोई अंश नहीं पहुंचता परंतु हलकी छायामें दीपकका प्रकाश कुछ न कुछ अवश्य पहुँचता है। यदि कोई कीड़ा दीवालपर गहरी छायामें हो तो उसे दीपक बिल्कुल नहीं देख पड़ेगा परन्तु हलकी छायामें उसे दीपकका कोई न कोई भाग अवश्य देख पड़ेगा। इसकी परीक्षा यों की जा सकती है:—

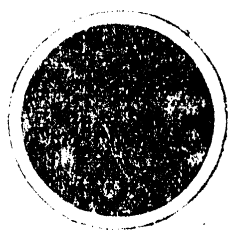
एक दीपक या लम्प जलाकर रख लो। थोड़ी दूरपर एक पेंसिल, गोली या ऐसी चीज़ जो दीपकसे छोटी हो खड़ी कर दो या टांग दो। कुछ और दूरपर एक पतला कागज़ हाथमें इस प्रकार थामो कि इसपर पेंसिलकी गहरी और हलकी दोनों छाया पड़ें। गहरी छायामें सुईसे एक छेद कर दो और इसीसे देखो कि दीपक देख पड़ता है या नहीं। दीपक नहीं



चित्र ६०



चित्र ६१



चित्र ६२

देख पड़ेगा। हल्की छायामें सुईसे छेद करके देखो। दीपकका कुछ अंश देख पड़ेगा।

रेखागणितसे यह जाना जा सकता है कि गहरी छाया कहां पड़ेगी और हल्की छाया कहां पड़ेगी। इनके विस्तार आदिका पता लगाना भी गणितसे सम्भव है। सूर्य, चन्द्रमामें ग्रहण कैसे पड़ता है यह जाननेके लिए गहरी और हल्की छायाका गणित करना पड़ता है इसलिए इसपर अच्छी तरह विचार करना आवश्यक है। आगे गहरी छायाको केवल छाया और हल्की छायाको परिछाया कहा जायगा।

मान लो र एक प्रकाशमान पिंड और च एक अपारदर्शक पिंड है। दोनों पिंड गोलाकार हैं। र से प्रकाशकी किरणें चारों दिशाओंमें फैलती हैं परन्तु जो किरणें च पिंडपर पड़ती हैं वे इसके आगे नहीं बढ़ने पातीं। इन दोनों पिंडोंको सीधी स्पर्श करती हुई रेखाएं खींची जांय तो वे त बिन्दुपर परस्पर मिलकर एक दूसरेको काटती हुई आगे बढ़ेंगी। अतई सूची (cone) के आकारका होगा। यही च पिंडसे बनी हुई छायाकी सीमा होगी इसके ऊपर, नीचे, इधर उधर छाया नहीं पड़ेगी। देखो चित्र ९०

इन दोनों पिंडोंको छूती हुई जो रेखाएं ता विंदुपर मिलती है। इनसे परिछाया की सीमा बनती है।

यदि एक पट (पर्दा) छायामें इस प्रकार रखा जाय कि वह र, च पिंडोंके केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखासे समकोणपर रहे तो इस पटपर छायाका जो वृत्त बनेगा उसका व्यास छ छा होगा और परिछायाके वृत्त का व्यास वक होगा जिसमें छायाका व्यास भी शामिल है (देखो चित्र ९१) यदि व छ खंडमें किसी जगह प विंदुपर एक छेद कर दिया

जाय और इसी छेदसे प्रकाशमान पिंड देखा जाय तो पिंडका वह ऊपरी भाग देख पड़ेगा जो पा विंदु के ऊपर है। यह पा विंदु प आ स्पर्श रेखाको बढ़ानेसे प्रकाशमान पिंडपर निश्चय किया जाता है। यदि ऊ छा खंडमें कहीं छेद किया जाय तो प्रकाशमान पिंडके नीचेका भाग देख पड़ेगा। परंतु यदि छेद छ छा खंडमें किया जाय तो प्रकाशमान पिंडका कोई भाग नहीं देख पड़ेगा। सारांश यह कि यदि द्रष्टा अ आ त रेखाके ऊपर परन्तु ता आ उ के नीचे कहीं रहेगा तो उसे र पिंडका ऊपरी भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु नीचे वाला भाग नहीं देख पड़ेगा। इसी प्रकार इ ई त रेखाके नीचे और अ ई ऊ रेखाके ऊपर द्रष्टाके रहनेसे प्रकाशमान पिंडका नीचे वाला भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु ऊपर वाला भाग नहीं देख पड़ेगा।

यदि पट त विंदुपर लाया जाय तो यहां छाया नाम मात्रको भी नहीं रहेगी। प्रकाशमान पिंड देख तो नहीं पड़ेगा परंतु इसकी चमक चारों ओर कुछ अवश्य देख पड़ेगी। यदि पट त से और दूर किया जाय तो एक और ही दृश्य देख पड़ेगा। क ख और ग घ परिछायाके खंडोंमें तो पहले की ही तरह बात देख पड़ेगी परन्तु ख ग खंडमें जो छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओंके बीचमें है प्रकाशमान पिंडका किनारे वाला पूरा भाग देख पड़ेगा परंतु बीचमें अन्धकार रहेगा। (देखो चित्र ६२) चित्र से यह प्रकट ही है कि ख ग के बीच किसी विंदु से च पिंडको स्पर्श करती हुई जो रेखाएं खींची जायंगी वह र पिंडके ऊपर नीचे दोनों ओर पहुँचेगी पिंड गोल है इसलिए बीचमें अन्धकारमय होनेसे कंकण की तरह देख पड़ेगा।

यह सब दृश्य प्रयोग द्वारा देखे जा सकते एक गोल लम्प, गेंद तथा लकड़ीके चौखटेमें तने हुए पट, बस तीन चीजें इसके लिए पर्याप्त हैं। र पिंडकी जगह गोल लम्प और च की जगह गेंदको समझना चाहिए। अंधेरी रात में किसी स्थानमें यह प्रयोग सहज ही किया जा सकता है।

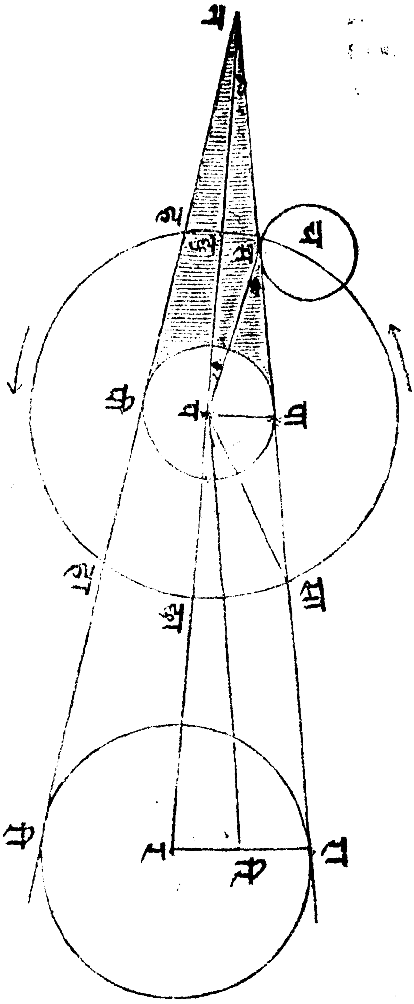
इसी प्रयोगसे सूर्यग्रहणकी सारी बातें समझमें आ सकती हैं। र को रवि या सूर्य और च को चन्द्रमा समझनाचाहिए। पट-की जगह पृथ्वीको समझना चाहिए। जिस तरह यह पिंडके निकट रहने पर छाया और परिछाया दोनोंमें रहता है परन्तु दूर रहनेपर केवल परिछाया या छायाकी सीमा बनाने वाली रेखाओंके बीचमें रहता है, इसी तरह पृथ्वी भी कभी चंद्रमाके निकट रहनेसे चंद्रमाकी छाया और परिछाया दोनोंमें रहती है और कभी दूर रहनेसे केवल परिछायामें ही रहती है। पृथ्वी चंद्रमासे बहुत बड़ी है इसलिए सारी पृथ्वी छाया या परिछाया-में नहीं पड़ सकती। पृथ्वीका जो भाग छायामें पड़ जाता है वहांके निवासियों को सूर्य बिलकुल नहीं देख पड़ता। इस लिये सूर्यका पूर्णग्रहण या सर्वग्रहण (total eclipse of the sun) होता है। पृथ्वीका जो भाग परिछायामें पड़ता है वहाँके निवासियोंको सूर्य का खंडग्रहण (partial eclipse) देख पड़ता है। यदि पृथ्वीपर छाया न पहुंचे तो वह उसी स्थितिमें रहेगी जो क ख ग घ पटसे दिखायी गयी है। ऐसी दशामें पृथ्वीका जो भाग छायाकी सीमा बनाने वाली रेखाके बीचमें होगा वहां कंकण ग्रहण (annular eclipse) देख पड़ेगा।

जिस तरह चंद्रमाकी छाया या परिछायामें पृथ्वीके आ जानेसे सूर्यमें पूर्ण ग्रहण खंड ग्रहण, अथवा कंकण ग्रहण देख

पड़ता है उसी तरह पृथ्वीकी छायामें जब चंद्रमा आजाता है तब प्रकाश हीन हो जाता है। इसीको चंद्रग्रहण कहते हैं। यदि चंद्रमाका पूर्ण पिंड छायामें आ जाय तो पूर्ण चंद्रग्रहण (total elclipse of the moon) और अधूरा पिंड छायामें आवे तो खंड चंद्र ग्रहण (partial eclipse of the moon) पड़ता है। इस स्थितिमें चंद्रमा निवासी सूर्यमें ही ग्रहण लगता हुआ देखेंगे परंतु उनको कंकण ग्रहण देखनेका सौभाग्य नहीं हो सकता क्योंकि चंद्रमासे पृथ्वीका आकार बड़ा होनेके कारण चंद्रमा कभी छायासे बाहर नहीं जा सकता है।

चित्रसे यह भी स्पष्ट है कि छायामें पहुंचनेके पहले परिछायामें घुसना आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिए कि चंद्रग्रहण तभी देख पड़ता है जब चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें आता है। यदि चंद्रमा केवल परिछायामें जाय तो ग्रहण नहीं देख पड़ेगा, हां कुछ मलिनता अवश्य आ जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वीकी परस्पर दूरियोंके अनुसार छाया और परिछाया-का परिमाण भी कम या अधिक हो सकता है। यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है कि सूर्य और पृथ्वीके बीचकी दूरी तथा चंद्रमा और पृथ्वीके बीचकी दूरी घटती बढ़ती रहती है। दूरीके घटने बढ़नेसे इन पिंडोंके कोणात्मक आकार घटे बढ़े देख पड़ते हैं (देखो पृष्ठ १२७,१२८) इसलिए कोणात्मक आकारोंका परिमाण जाननेके लिए इनकी स्पष्ट दूरियोंका जानना आवश्यक है। परंतु त्रिप्रश्नाधिकार में यह बतलाया गया है कि किसी पिंडके आकार, लम्बन और उसकी स्पष्ट दूरीमें परस्पर क्या संबंध है। इस लिए लंबन या दूरी दोनों-



चित्र ३६.

में से किसी के ज्ञान लेनेसे यह जाना जा सकता है कि छायाका परिमाण किस समय कितना होता है। नीचेके चित्र ९३ से यह जाना जाता है कि चंद्रग्रहणके समय चंद्रमाकी कक्षामें पृथ्वी की छायाका व्यास कितना बड़ा होता है।

मान लो कि चित्र ९३ में च चंद्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिंदुपर प्रवेश कर रहा है, इस लिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और पृथ्वीकी सामान्य स्पर्श रेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वीकी छाया बनती है जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्याएं र रा और प पा स्पर्श रेखा रा पा के समकोणपर हैं। परि रेखा पा रा के समानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वीके केन्द्रपर छायाकी उस त्रिज्यासे बनता है जो चंद्रमाकी कक्षामें है इसलिए इससे चंद्रकक्षामें छायाके आकारका पता चलेगा।

$$\angle \text{ रिप र } = \frac{\text{रिर}}{\text{पर}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{पर}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{पर}} = \frac{\text{रार}}{\text{पर}} - \frac{\text{पाप}}{\text{पर}}$$

$$= \text{सूर्यकी त्रिज्या} - \text{सूर्यका लंबन}$$

$$= \text{त्र} - \text{ल}$$

त्र और ल से सूर्यकी त्रिज्या और लंबन सूचित किये गये हैं।

$$\angle \text{ स प छ} = \angle \text{ प स पा} - \angle \text{प न पा}$$

$$= \angle \text{ प स पा} - \angle \text{ रिपर}$$

क्योंकि परि और न पा रा समान्तर हैं और न प र दोनों को काटता है।

$$\text{यहां } \angle \text{ प स पा} = \frac{\text{प पा}}{\text{प स}} = \text{चंद्रमा का लंबन} = \text{ला}$$

ला को चंद्रमाका परम लंबन या क्षितिज लंबन मान लेनेमें बहुत अंतर नहीं पड़ेगा। इसलिए

$$\angle \text{स प छ} = \text{ला} - (\text{त्र} - \text{ल})$$
$$= \text{ल} + \text{ला} - \text{त्र}$$

इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि सूर्य और चंद्रमा के क्षितिज लम्बनोंके योगफलसे सूर्यकी त्रिज्याका कोणात्मक मान घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाकी त्रिज्याका कोणात्मक मान होता है। इसीको भूभार्द्ध भी कहते हैं।

अनुभव से जाना गया है कि पृथ्वीके वातावरणके कारण इसकी छाया उपर्युक्त गणितसिद्ध छायासे $\frac{१}{५०}$ गुना बड़ी होती है क्योंकि ऊपरके गणितमें पृथ्वीके केवल ठोस पिंडका विचार किया है, इसके वातावरणका नहीं।

उदाहरण—यदि सूर्यका लंबन ६″ चंद्रमाका लंबन ५८′१″ और सूर्यकी त्रिज्या १६′१३″ हो तो चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छाया-की त्रिज्या बतलाओ।

$$\text{भूभार्द्ध} = \text{ल} + \text{ला} - \text{त्र}$$
$$= ९'' + ५८'१'' - १६'१३''$$
$$= ५८'१०'' - १६'१३''$$
$$= ४१'५७''$$

यह गणितसिद्ध छायाकी त्रिज्या है। वातावरणके कारण छायाका $\frac{१}{५०}$ गुना बढ़ जाता है। इसलिए कुल छाया

$$= ४१'५७'' + \frac{४१'५७''}{५०} = ४१'५७'' + ५०'' = ४२'४७''$$

यह प्रकट है कि चंद्रकक्षामें भूभार्द्ध (पृथ्वीकी छायाकी त्रिज्या) का परिमाण सदैव एकसा नहीं रहता क्योंकि यह

सूर्य और चंद्रमाके लंबन तथा सूर्यकी कोणात्मक त्रिज्या पर अवलंबित है और यह तीनों बातें पृथ्वीसे सूर्य और चंद्रमाकी दूरियोंपर अवलंबित हैं जो सदैव घटा बढ़ा करती हैं।

अब यह बतलाया जायगा कि इस विषयपर सूर्यसिद्धान्त का क्या मत है :—

सूर्य और चन्द्र बिम्बोंका मध्यम व्यास तथा चंद्रकक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास —

सार्धानि षट्सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहाशीत्या चतुःशतम् ॥१॥
स्फुटस्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौस्फुटौ।
रवेः स्वभगणाभ्यस्तः शशाङ्क भगणोद्धृतः ॥२॥
शशाङ्ककक्षा गुणितो भाजितो वार्ककक्षया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायां तिथ्याप्ता मानुलिप्तिका ॥३॥

अनुवाद—(१) सूर्यके मण्डलका मध्यम व्यास ६५०० योजन और चन्द्रमाके मण्डलका मध्यम व्यास ४८० योजन है। (२) जिस समय किसीका स्पष्ट व्यास जानना हो तो उसके मध्यम व्यासको उस समयकी उसकी स्पष्टगतिसे गुणा कर दो और गुणनफलको उसकी मध्यमगतिसे भाग दे दो। सूर्यके स्पष्ट व्यासको सूर्यके महायुगीय भगणसे गुणा करके गुणनफलको चन्द्रमाके महायुगीय भगणसे भाग देनेपर (३) अथवा सूर्यके स्पष्ट व्यासको चन्द्रकक्षासे गुणा करके और गुणनफलको सूर्यकी कक्षासे भाग देनेपर जो आता है वही चन्द्रकक्षामें सूर्यके स्पष्ट व्यासका परिमाण है। चन्द्रकक्षामें सूर्य और चन्द्रमाके व्यासको १५ से भाग देनेपर सूर्य और चन्द्रमाके व्यास कलाओंमें ज्ञात हो जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकोंका सार यह है—:

सूर्य बिम्बका मध्यम व्यास=६५०० योजन

चन्द्र बिम्बका मध्यम व्यास=४८० योजन

$$\text{स्फुट व्यास} = \frac{\text{मध्यम व्यास} \times \text{स्फुट गति}}{\text{मध्यम गति}}$$

चन्द्रकक्षामेंसूर्यका स्फुट व्यास

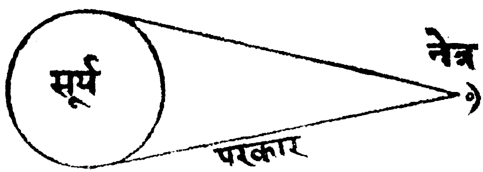
$$= \frac{\text{सूर्यका स्फुट व्यास} \times \text{सूर्यका महायुगीय भगण}}{\text{चन्द्रमाका महायुगीय भगण}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{सूर्यका स्फुट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

यहां यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या सूर्यका योजनात्मक आकार भी घटता बढ़ता है क्योंकि ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यका स्फुट (स्पष्ट) व्यास उसकी स्फुट गतिपर अवलंबित है जो सदा घटती बढ़ती रहती है। परन्तु बात यह नहीं है। सूर्यका योजनात्मक आकार स्फुट गतिके अनुसार कदापि घटता बढ़ता नहीं है, हां कलात्मक या कोणात्मक आकार अवश्य बदलता है जिसकी मीमांसा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२७-१३३ में अच्छी तरह की गयी है। यहां मध्यम व्यास और स्फुट व्यासका परिमाण यद्यपि योजनोंमें बतलाया गया है तथापि इसे कोणात्मक ही समझना चाहिए क्योंकि इसके जाननेकी जो रीति भास्कराचार्यजी * ने लिखी है उससे यह अर्थ निकलता है। भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस दिन सूर्यकी स्पष्ट या स्फुट गति मध्यम गतिके समान हो उस दिन उदयकालमें ३४३८ इकाइयोंके समान

* गणिताध्याय पृष्ठ १७१-१७२

दो लकड़ियां लेकर इनके दो सिरोंको मिलाकर[२] मूल स्थानोंमें आंख रखकर सूर्यके बिम्बको इस प्रकार बेधो कि इन लकड़ियोंके आगेवाले सिरे बिम्बके उत्तर और दक्खिनवाले किनारोंको स्पर्श करें। इसी दशामें लकड़ियोंके सिरोंको इस प्रकार कस दो कि आगेवाले सिरोंकी दूरीमें कोई भेद न पड़े। अब इन सिरोंकी दूरीको उसी इकाईसे नापो जिससे लकड़ियोंकी लम्बाई नापी गयी है। यह अन्तर जितनी इकाइयों के



चित्र ६४

समान होगा उतनी ही कला सूर्यके बिम्बका व्यास होगा। भास्कराचार्यजीके अनुसार यह व्यास ३२′३१″३३‴ होता है। यदि इसको ३२′३०″ या ३२′·५ माना जाय और सूर्यकी कक्षा[३] का मान ४३,३१,५०० योजन लिया जाय तो सूर्यबिम्ब का योजनात्मक मान इस प्रकार प्राप्त होगा :—

कोई कक्षा = ३६०°

= २१,६००′

∴सूर्यकी कक्षा भी २१,६०० कलाके समान है परन्तु योजनोंमें यह ४३,३१,५०० के समान है इस लिए

---

२ आजकल यह काम परकार (dividers) की नोकोंसे किया जा सकता है। आंख उस बिन्दुपर होनी चाहिए जहां कम्पासकी दोनों भुजाएं मिलती हों।

३ भूगोलाध्याय श्लोक ८६

$$२१६००' = ४३,३१,५०० \text{ योजन}$$

$$\therefore ३२'५' = \frac{३२\cdot५ \times ४३३१५००}{२१६००} \text{ योजन}$$

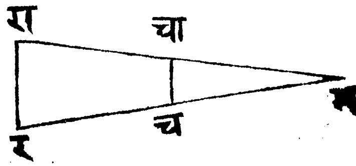
$$= ६५१७ \text{ योजन}$$

सूर्य सिद्धान्तने सूर्यका मध्यम व्यास ६५०० योजन माना है इससे प्रकट होता है कि इस ग्रन्थमें सूर्यका उदयकालिक बिम्ब ३२'३०" से कम लिया गया है जो ठीक भी है क्योंकि वर्तनके कारण उदयकालिक बिम्ब यथार्थसे कुछ बड़ा देख पड़ता है।

इस तरह यह सिद्ध है कि सूर्य या चन्द्र बिम्बोंका योजनात्मक मान कलात्मक मानोंसे ही जाना गया है।

मध्यम व्याससे स्फुट व्यास जाननेका जो नियम बतलाया गया है वह कुछ स्थूल है क्योंकि सूर्य या चन्द्रमाकी स्फुटगतिका परिवर्तन उसी अनुपातसे नहीं होता जिस अनुपातसे इनके कोणात्मक बिम्बोंका परिवर्तन होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १३२-१३३)।

चन्द्रकक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास जाननेके दो नियम बतलाये गये हैं जो वास्तवमें एक ही नियमके दो रूप हैं। चित्र ६५ में यदि रग सूर्यकी कक्षा, और चचा चन्द्रमाकी कक्षाके खंड मान लिये जांय, भ पृथ्वीका केन्द्र हो और



चित्र ६५

यदि रग सूर्य बिम्बके समान मान लिया जाय तो चन्द्रकक्षामें यह बिम्ब चचा के समान होगा। यह स्पष्ट ही है कि

$$\frac{\text{च चा}}{\text{र रा}} = \frac{\text{भ च}}{\text{भ र}} = \frac{\text{चन्द्रकक्षाका व्यासार्ध}}{\text{सूर्यकक्षाका व्यासार्ध}}$$

$$= \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य कक्षा}}$$

क्योंकि दो वृत्तोंकी परिधियोंमें वही अनुपात होता है जो उनके व्यासार्धोंमें होता है।

इसलिए

$$\text{चचा} = \frac{\text{ररा} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य कक्षा}}$$

$$= \frac{\text{सूर्यका स्पष्टव्यास} \times \text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

इस प्रकार चंद्रकक्षामें सूर्यके स्पष्ट व्यासके जाननेका दूसरा नियम सिद्ध होगया। अब यह बतलाना कठिन नहीं है कि पहला इसका रूपांतर किस प्रकार है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हमारे आचार्यों-का मत है कि प्रत्येक ग्रहकी दैनिक योजनात्मक गति समान होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि प्रत्येक ग्रह एक महायुग या कल्पमें जितने योजन चलता है वह सब ग्रहोंके लिए एकसा है। ग्रह एक महायुगमें जितने योजन चलता है उसको यदि ग्रहके महायुगीय भगणसे भाग दे दिया जाय तो ग्रहकी कक्षाका मान योजनोंमें निकल आवेगा, इसको यों भी लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{ग्रहकी महायुगीय गति (योजनोंमें)}}{\text{ग्रहका महायुगीय भगण}} = \text{ग्रहकी कक्षा (योजनोंमें)}$$

यदि ग्रहकी महायुगीय योजनात्मक गतिको म मान लिया जाय और सूर्यके महायुगीय भगणको र तथा चंद्रमा के

महायुगीय भगण को च मान लिया जाय तो उपर्युक्त नियमके अनुसार

$$\frac{म}{र} = \text{सूर्यकी कक्षा}$$

$$\text{और } \frac{म}{च} = \text{चन्द्रकक्षा}$$

यदि दूसरे समीकरणके प्रत्येक पक्षको पहले समीकरणके समपक्ष (corresponding sides) से भाग दे दिया जाय तो

$$\frac{म}{च} \div \frac{म}{र} = \frac{\text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

$$\text{अथवा } \frac{र}{च} = \frac{\text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

इस प्रकार सूर्यके स्फुट व्यासका पहला नियम भी सिद्ध होगया।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि सूर्यका स्फुट व्यास तथा सूर्यकी कक्षाका विस्तार यथार्थमें उतना नहीं है जितना हमारे सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बतलाया गया है। अनेक वेधोंसे यह सिद्ध हो गया है कि सूर्यका लंबन ९ कलासे अधिक नहीं होता इसलिए पृथ्वीसे इसकी दूरी लंबनके सूत्रके अनुसार (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५५७) ९ करोड़ २९ लाख मील है और इसके पिंडका व्यासार्ध ४, ३२, ८९० मील है (देखो पृष्ठ १४४)। यदि योजनका परिमाण ५ मीलके समान समझा जाय (देखो पृष्ठ ८२) तो

$$\text{सूर्यका व्यासार्ध} = \frac{४३२८९०}{५} = ८६५७८ \text{ योजन, और}$$

$$\text{सूर्यकी मध्यम दूरी} = \frac{९,२९,००,०००}{५} = १,८५,८०,००० \text{ योजन}$$

यह परिमाण हमारे सिद्धान्तके परिमाणोंसे कितना भिन्न है यह नीचे की तालिकासे स्पष्ट हो जायगा जहां सब परिमाण योजनोंमें दिये जाते हैं :—

	सूर्य सिद्धान्त	सिद्धान्त शिरोमणि	R. S. Ball's Spherical Astronomy
सूर्य बिंबका व्यास	६५००	६५२२	८७३१४६
सूर्यकी मध्यम दूरी	६८६३७८	६८६३७७	१८५८००००
चंद्र बिंबका व्यास	४८०	४८०	४३०
चंद्रमाकी मध्यम दूरी	५१५६६	५१५६६	४७५००

तीसरे श्लोकके उत्तरार्द्धमें यह भी बतलाया गया है कि चन्द्रमाकी कक्षामें सूर्य बिम्बका जो व्यास योजनोंमें हो उसको १५ से भाग देनेपर इसका परिमाण कलाओंमें आ जायगा। इसका कारण यह है कि चंद्रकक्षाका विस्तार ३२४००० योजन माना गया है जो ३६० अंश या २१६०० कलाके समान भी है इस लिए जब २१६०० कला=३२४००० योजन, तब १ कला= $\frac{३२४०००}{२१६००}$=१५ योजन; जिसका अर्थ यह हुआ कि चंद्रकक्षाका १५ योजन एक कलाके समान होता है।

चंद्रकक्षामें भूछायाके व्यासका परिमाण—

स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यास गुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यास स्फुटार्क श्रवणान्तरम् ॥४॥

मध्येन्दुव्यास गुणितं मध्यार्कव्यास भाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यां तु तमोलिप्तास्तु पूर्ववत् ॥५॥

अनुवाद-(४) चंद्रमाकी स्पष्ट गतिको पृथ्वीके व्याससे गुणा करके गुणनफलको चंद्रमाकी मध्यगतिसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है उसे सूची कहते हैं। सूर्यके स्फुट व्याससे पृथ्वीके व्यासको घटाकर (५) शेषको चंद्रमाके मध्यम व्याससे गुणा करके और गुणनफलको सूर्यके मध्यम व्याससे भाग दे दो। लब्धिको सूचीसे घटा देनेपर जो शेष आवेगा वह चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाका व्यास योजनोंमें आ जायगा। इसको पहिलेकी तरह १५ से भाग दे देनेपर भूछायाका व्यास कलाओंमें ज्ञात हो जायगा।

विज्ञानभाष्य—यहां चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्टगतियोंको-चा और रा अक्षरोंसे सूचित किया जायगा। यदि चंद्रमा और सूर्यके महायुगीय भगणोंको महायुगीय सावन दिनोंसे भाग दे दिया जाय और लब्धिकी कलाएं बनायी जांय तो चंद्रमा और सूर्यकी मध्यम दैनिक गतियां क्रमानुसार ७९०′·५६ और ५९′·१३६२ होती हैं। पृथ्वीका व्यास १६०० योजन माना गया है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ५९)। इन मानोंके आधार-पर उपर्युक्त दो श्लोकोंको संक्षेपमें इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

$$\text{सूची} = \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०·५६}$$

$$\text{सूर्यका स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९·१३६२}$$ (देखो श्लोक २)।

चंद्रकक्षामें भूछायाका योजनात्मक व्यास

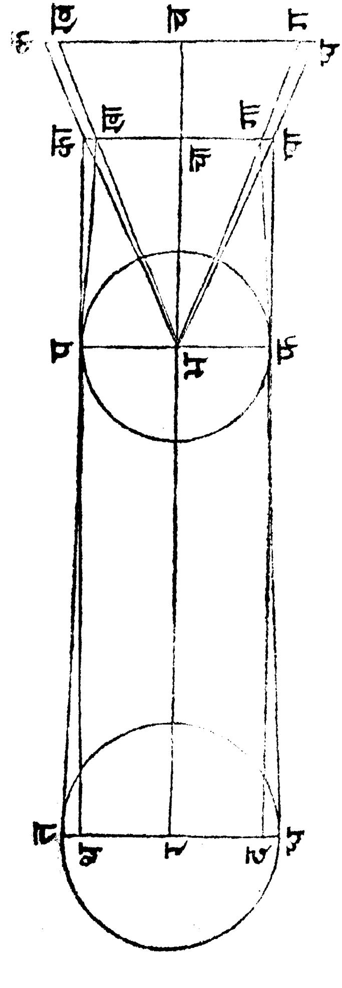
$$= \frac{१६००चा}{७६०.५६} - \left(\frac{६५००रा}{५६.१३६२} - १६००\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षामें भूछायाका कलात्मक व्यास

$$= १०६\frac{२}{३} \times \frac{चा}{७६०.५६} - ३२ \times \frac{रा}{५६.१३६२} + ७.८८$$

जिस समय चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्टगतियां इनकी मध्यम गतियोंके समान होंगी उस समय $\frac{चा}{७६०.५६}$ और $\frac{रा}{५६.१३६२}$ एक-के समान होंगे। ऐसी दशामें भूछायाका कलात्मक व्यास १०६.६७ – ३२ + ७.८८ = ८२.५५

चित्र ६१ की सहायतासे आरंभमें यह बतलाया जा चुका है कि भूभार्ध अर्थात् चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाका अर्धव्यास ४१′५७″ होता है जिससे पृथ्वीकी छायाका व्यास ८४′ के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्तके नियमसे पृथ्वीकी छायाका व्यास जितना आता है वह नवीन रीतिसे निकाले हुए व्यासके प्रायः समान ही होता है यद्यपि इसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध हैं। भारतीय रीतिसे भूछायाके व्यासका जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६.६७, ३२ और ७.८८ के योग वियोगसे सिद्ध होता है। इसी तरह नवीन रीति-से भूभार्द्धका परिमाण भी तीन पदों ५८′१″, १६′१३″ और ६″ के योग वियोगसे व्यक्त किया जा सकता है (देखो ६२१ पृष्ठका उदाहरण)। इन तीन पदोंके दूने क्रमसे ११६′ २″, ३२′ २६″ और १८″ है। इनमें ३२′२६″ भारतीय नियमके दूसरे पदसे बिल्कुल मिलता है, पहला पद यहां ११६′ और



चित्र ४६

वहां १०७ कला है और तीसरा पद यहां १८″ और वहां ८′ के लगभग है इसलिए पहले और तीसरे पदोंका योग ११६′ के लगभग हो जाता है। इससे प्रकट है कि हमारे सिद्धान्त से भूभार्धका जो रूप सिद्ध होता है वह नवीन रूपसे केवल इस बातमें भिन्न है कि सूर्यका आकार और उसकी दूरी हमारे यहां बहुत कम मानी गयी है।

उपपत्ति कल्पना करो कि भ पृथ्वीका केन्द्र, पफ पृथ्वीका व्यास, र सूर्यका केन्द्र, तथ सूर्यका व्यास, च मध्यम चन्द्रमाका केन्द्र, चा स्पष्ट चन्द्रमाका केन्द्र, त प खा और ध फ गा पृथ्वी और सूर्यकी सामान्य स्पर्श रेखाएं, तथा थ प का और द फ घा रेखाएं र भ के सामानान्तर हैं। यह स्पष्ट है कि खा गा स्पष्ट चंद्रमाके तलमें पृथ्वीकी छायाका व्यास है जो भूकेन्द्रसे देखनेपर मध्यम चन्द्रमाकी कक्षामें ख ग के समान होगा। यदि भ का और भ घा बढ़ाये जायं तो मध्यम चन्द्रमाकी कक्षामें क, घ विन्दुओंपर मिलेंगे।

चित्रसे स्पष्ट है कि

भूछायाका व्यास खा गा = का घा − (का खा + गा घा)

= प फ − (का खा + गा घा)

समजातीय त्रिभुज प का खा और प थ त में,

$$\frac{\text{पका}}{\text{पथ}} = \frac{\text{का खा}}{\text{तथ}}$$

इसी तरह $\frac{\text{फ गा}}{\text{फ ध}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}}$

परन्तु पका = फगा और पथ = फध

$$\therefore \frac{\text{का खा}}{\text{तथ}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गाघा}}{\text{त थ} + \text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गाघा}}{\text{त ध} - \text{थद}}$$

$$\therefore \frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} \quad \cdots\cdots\cdots (१)$$

समजातीय त्रिभुज का भ चा और क भ च में

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}}$$

परन्तु भ चा और भ चा पृथ्वीसे स्पष्ट और मध्यम चन्द्रमा की दूरियां हैं और यह बताया गया है कि कोणीय वेग कर्णके वर्गके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है देखो (स्पष्टाधिकार पृष्ठ १३३) इसलिए स्थूल रूपसे यह माना जा सकता है कि कोणीय वेग कर्णके भी प्रतिलोमके अनुसार बदलता है जैसा कि सूर्यसिद्धान्तके नियम से प्रकट होता है।

इसलिए

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{चंद्रमाकी मध्यम गति}}{\text{चंद्रमाकी स्पष्ट गति}} = \frac{\text{म}}{\text{स}}$$

$$\therefore \frac{\text{म}}{\text{स}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}} = \frac{\text{प फ}}{\text{क घ}}$$

$$\therefore \text{क घ} = \frac{\text{प फ} \times \text{स}}{\text{म}} = \frac{\text{भू व्यास} \times \text{स्पष्टगति}}{\text{मध्यमगति}}$$

इसी क घ का नाम श्लोक ४ में सूची रखा गया है।

समजातीय त्रिभुज भ का खा और भ क ख इत्यादिसे सिद्ध हो सकता है कि

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का खा}}{\text{क ख}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{ग घ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}} \quad \cdots (२)$$

समीकरण (१) और (२) में प का और भ चा समान है इसलिए

$$\text{प थ} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} = \text{भ च} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

या $\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$

परन्तु प थ या भ र पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी और भ च पृथ्वीसे चंद्रमाकी मध्यम दूरी है जिनका अनुपात= $\frac{४३३१५००}{३२४०००} = १३\cdot३७$ क्योंकि सू सिद्धान्तके अनुसार ४३३१५०० योजन सूर्यकी कक्षा और ३२४००० योजन चंद्रमाकी कक्षाके विस्तार हैं, तथा $\frac{६५००}{४८०} = १३\cdot५४$, सूर्य और चन्द्रमाके मध्यम व्यासोंका अनुपात है जो १३·३७ के प्रायः समान है। इसलिए यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि

$$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{सूर्यका मध्यम व्यास}}{\text{चंद्रमाका मध्यम व्यास}}$$

$$\therefore \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

$$\therefore \text{क ख} + \text{ग घ} = \left(\text{त ध} - \text{प फ}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

परन्तु $\text{क ख} + \text{ग घ} = \text{क घ} - \text{ख ग}$

$= \text{सूची} - \text{चंद्रकक्षामें भूछाया}$

और $\text{त ध} - \text{प फ} = \text{सूर्यका स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वीका व्यास}$

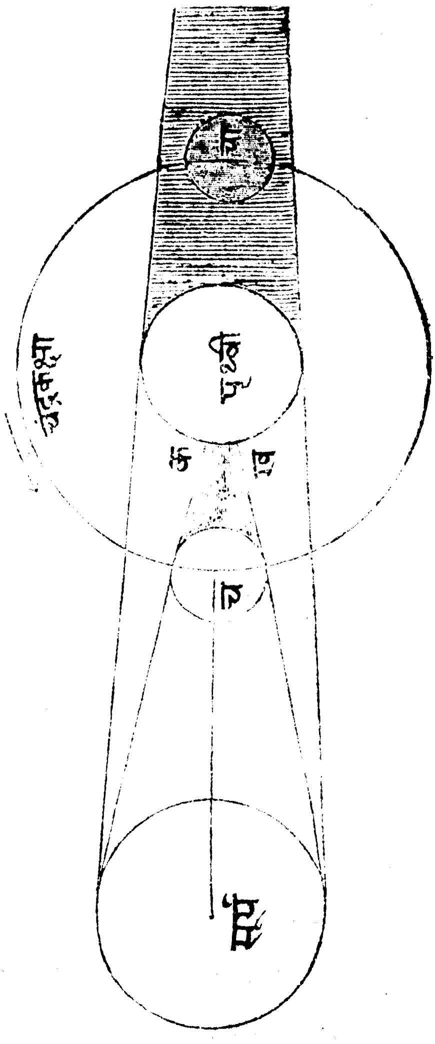
$\therefore \text{सूची} - \text{चंद्रकक्षामें भूछाया}$

$$= \left(\text{सूर्यका स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वीका व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

$\therefore$ चन्द्रकक्षामें भूछाया

$$= \text{सूची} - \left(\text{सूर्यका स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वीका व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यही ४,५ श्लोकोंका तात्पर्य है।



ग्रहण कब सम्भव होता है—

भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपिवा।
शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ॥६॥
तुल्यौ राश्यादिभिः स्यातामभावास्यान्तकालिकौ।
सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ ॥७॥

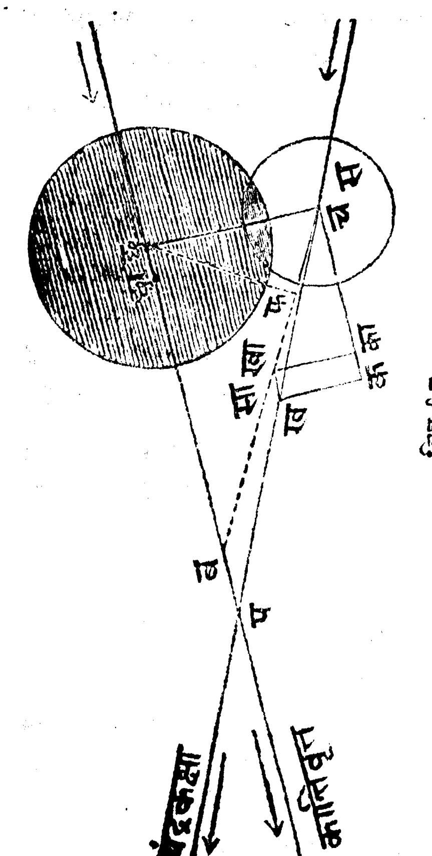
अनुवाद—(६) सूर्यसे ६ राशिके अंतरपर पृथ्वीकी छाया होती है। यदि सूर्यसे इतनी ही दूरीपर अथवा सूर्यके ही समान राशि अंशपर अथवा इनसे कुछ ही कम या अधिक दूरीपर चन्द्रमाका पात हो तो सूर्य और चन्द्रमामें ग्रहण लगता है। (७) सूर्य और चन्द्रमाके राशि अंश कला विकला इत्यादि अमावस्या के अन्तमें समान होते हैं और पूर्णमासीके अंतमें ठीक ६ राशिके अंतरपर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—चित्र ८३ से प्रकट है कि पृथ्वीकी छाया का केन्द्र छ या न सूर्य और पृथ्वीके केन्द्रोंको मिलाने वाली रेखा र प न पर सदैव रहता है इसलिए पृथ्वीकी छाया सूर्यसे सदैव १८०° या ६ राशि आगे रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्यसे १८०° के लगभग आगे रहता है तभी यह पृथ्वीके छायामें प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु जब चन्द्रमा सूर्यसे १८०° आगे रहता है तब पूर्णिमा का अंत होता है इसलिए पूर्णिमाके अंतकालके लगभग चंद्रग्रहण लग सकता है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा सूर्यके सामने आकर उसको ढक लेता है तभी सूर्य ग्रहण लगता है परन्तु यह बात तभी संभव है जब सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश प्रायः समान होते हैं अर्थात् जब अमावास्या होती है इसलिए यह प्रकट है कि चन्द्रग्रहण पूर्णिमाके अंतमें और सूर्यग्रहण अमावास्याके अंतमें लगते हैं। देखो चित्र ८७

अब यह प्रश्न हो सकता है कि प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्याके अंतमें चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण क्यों नहीं लगता। इसका कारण यह है कि चन्द्रमाका कक्षातल क्रान्तिवृत्तके कक्षातलसे भिन्न हैं। इन दोनोंका परम अंतर ५° के लगभग है जिसे चन्द्रमाका परमविक्षेप या परम शर कहते हैं (देखो मध्यमाधिकार पृ० ११२-११३)। परंतु सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बार्ध १६′ के लगभग तथा पृथ्वीकी छायाका व्यासार्ध अथवा भूभार्ध ४२′ के लगभग होता है (देखो पहलेका उदाहरण) इसलिए जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें ऐसी जगह रहता है जो क्रान्तिवृत्तके पास हो और क्रान्तिवृत्तसे जिसका अंतर १६′ + ४२′=५८′के लगभग या इससे भी कम हो तभी ग्रहण हो सकता है। यह स्थिति उसी समय सम्भव है जब अमावास्या या पूर्णमासीके लगभग चन्द्रमा अपनी कक्षा और क्रान्तिवृत्तके मिलन बिन्दुओं अर्थात् पातोंके पास हो। परन्तु चन्द्रमाके पात एक दूसरेसे सदैव १८०° के अंतर होते हैं इसलिए यह प्रकट है कि जब अमावस्या या पूर्णमासीके समय सूर्यके भोगांशके समान ही या इसके लगभग राहु या केतु किसीका भोगांश हो तभी ग्रहण लग सकता है अन्यथा नहीं। यह बात चित्र ६८ से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी :—

क च रेखापर क का, छ छा के समान काट लो और का से क ख के समान और समानान्तर का खा खींचो, च खा को मिलाकर खा की ओर क्रान्तिवृत्तके ब बिन्दुतक खींचो। यही च खा ब चन्द्रमाका आपेक्षिक मार्ग होगा, यदि यह मान लिया जाय कि भूछाया छ बिन्दुपर स्थिर है।

यदि छ से च ब पर छ फ लम्ब डाला जाय तो यही चन्द्रमा और भूछायाके केन्द्रोंकी निकटतम दूरी होगी। यदि



चित्र ६८

पूर्णिमान्त काल में :— छ=पृथ्वीकी छायाका केन्द्र
च=चन्द्रमा का केन्द्र
च छ या श=चन्द्रमाका शर (विक्षेप)
म=भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धोंका योग
प=चंद्रमाका पात
चक या चा=चन्द्रमा की प्रति घड़ी भोगांश गति
छख या शा= ,, ,, शर की गति
छ ला या गा = भूछाया अथवा पृथ्वीकी प्रतिघड़ी भोगांश गति

छ को केन्द्र मानकर म के समान त्रिज्यासे वृत्त खींचा जाय जो च व को दो बिन्दुओं स, सा पर काटे तो यही दो बिन्दु आपेक्षिक मार्गपर चन्द्रमाके स्पर्श और मोक्षकालके स्थान होंगे। यदि इन बिन्दुओंसे चक के समानान्तर रेखाएँ खींचीं

जाँय तो ये चन्द्रमाके यथार्थ मार्गके जिन बिन्दुओंपर पहुँचेगी वही स्पर्श और मोक्षकालके यथार्थ स्थान होंगे।

यदि क च ख कोणको इ और का च खा कोणको ई मान लिया जाय तो

$$स्परे\ इ = \frac{कख}{कच} = \frac{शा}{चा}$$

$$स्परे\ ई = \frac{का\ खा}{का\ च} = \frac{क\ ख}{का च} = \frac{शा}{क\ च - क\ का} = \frac{शा}{चा - द}$$

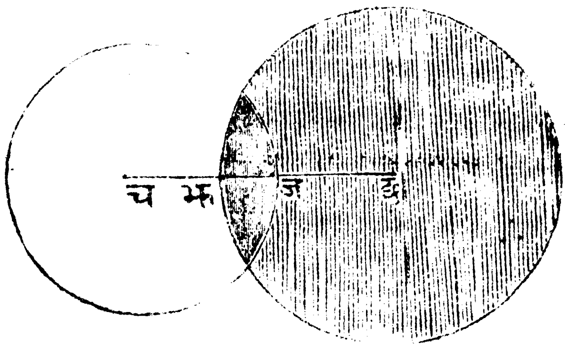
कोण च छ फ और छ च फ का योग समकोणके समान है क्योंकि च ब पर छ फ लम्ब खींचा गया है परन्तु छ च फ और फ च क कोणोंका योग भी समकोणके समान है क्योंकि च क छ प पर लम्ब है और च क, छ प के समानान्तर है। इसलिए कोण च छ फ = कोण फ च क = ई, इसलिए

छ फ = च छ कोज्या ई = श कोज्या ई

यदि श कोज्या ई का मान भूछाया और चंद्रमाके व्यासार्धों के योगसे अधिक होगा तो ग्रहण नहीं लगेगा।

परन्तु यदि श कोज्या ई, म से छोटा होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। यदि यह जानना हो कि खंड ग्रहण लगेगा या सर्व-ग्रास तो दोनोंका अंतर निकालना चाहिये। यदि म − श कोज्या ई का मान चन्द्रमाके व्याससे छोटा हो तो समझना चाहिए कि खंड ग्रहण लगेगा और यदि इसका मान चन्द्रमाके व्याससे बड़ा हो तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा क्योंकि चित्र ४६ से प्रकट है कि म − श कोज्या ई = चन्द्रमाका ग्रसित भाग। इसलिए यदि ग्रसित भाग चन्द्रमाके व्याससे कम होगा तो स्पष्ट है कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लग सकता। परन्तु यदि ग्रसित

भा चन्द्रमाके व्यासले अधिक है तो सर्वग्रास ग्रहण अवश्य लगेगा।



चित्र ६६

चित्र ६६ चन्द्रमा और भूछायाका उस समयका चित्र है जब कि चन्द्रमा भूछायासे निकटतम अन्तरपर रहता है अर्थात् जब चन्द्रमा चित्र ६८ के फ बिन्दुपर रहता है और भूछाया छ पर। यह स्पष्ट है कि छ भ भूछायाका व्यासार्ध और चज चन्द्रमाका व्यासार्ध है। चन्द्रमाका ग्रसित भाग ज भ के समान है। अब देखना है कि ज भ का परिमाण क्या है।

जभ = छ भ − छ ज

= छ भ − (च छ − च ज)

= छ भ + च ज − च छ

= म − श कोज्या ई

यदि म − श कोज्या ई शून्यके समान हो अर्थात् यदि म = श कोज्या ई तो ग्रहण नहीं लगेगा क्योंकि चन्द्रमा भूछायाको स्पर्श करता हुआ निकल जायगा। ऐसी दशा में भूछाया के केन्द्र से पातका अन्तर छ प का परिमाण यों निकलेगा :—

यह प्रकट है कि कोण च प छ = इ, इसलिए

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{च छ}}{\text{छ प}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{च छ}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{श}}{\text{स्परे इ}}$$

परन्तु ऊपर मान लिया गया है कि

$$\text{म} = \text{श कोज्या ई}$$

$$\therefore \text{श} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई} \times \text{स्परे इ}}$$

$$= \text{म छेरे ई कोस्परे इ}$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जब पातसे भूछायाका अंतर म छेरे ई कोस्परे इ के समान या अधिक होगा तब ग्रहण नहीं लगेगा और कम होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। परन्तु ऊपर माना गया है कि

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चन्द्रमाके शरकी गति}}{\text{चन्द्रमाके भोगांशकी गति}}$$

$$\text{स्परे ई} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{\text{चन्द्रमाके शरकी गति}}{\text{सूर्य और चन्द्रमाकी गतियों का अंतर}}$$

और म = भूछाया और चन्द्रमाके व्यासार्धों का योग

इसलिए यह तीनों गुणक चन्द्रमा और सूर्यकी गतियोंपर निर्भर हैं जो अस्थिर हैं इसलिए छ प का मान भी अस्थिर है। यहाँ इ क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के बीच का कोण है इसलिए यह ज्ञात है परन्तु ई अज्ञात है इसलिए पहले ई को ही जानना चाहिए। ऊपरके सम्बन्धसे स्पष्ट है कि

$$\frac{\text{स्परे ई}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{ग}} \div \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{ग}}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{ग}} \times \text{स्परे इ}$$

इ, चा और ग के मध्यम मान क्रमशः ५°६', ७६०'३५" और ५६'८" है। इसलिए

$$\frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{ग}} = \frac{\text{७६०'३५"}}{\text{७६०'३५"} - \text{५६'८"}} = \frac{\text{७६०'३५"}}{\text{७३१'२७"}} = \text{१·०८०८४}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \text{१·०८०८४} \times \text{स्परे ५°६'}$$

$$= \text{१·०८०८४} \times \text{·०९०१}$$

$$= \text{·०९७४}$$

$$\therefore \text{ई} = \text{५°३४'}$$

$$\therefore \text{क प} = \text{म छेरे ई कोस्परे इ}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई स्परे इ}}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ५°३४' स्परे ५°६'}}$$

परन्तु म = भूछाया और चन्द्रमाके व्यासार्धोंका योग

∴ म का मध्यम मान

= भूछायाका मध्यम व्यासार्ध

+ चन्द्रमाका मध्यम व्यासार्ध

भूछायाका मध्यम व्यासार्ध = चन्द्रमाका मध्यम लंबन

+ सूर्यका मध्यम लंबन − सूर्यका मध्यम व्यासार्ध

= ५७'११" + ८"·५ − १६'१"

= ४१'१८"·५

इसका $\frac{१}{५०}$ और बढ़ानेपर भूछायाका मध्यम व्यासार्ध

= ४१'१८"·५ + ४९"·६

$$= ४२'८'' = ४२'·१३५$$

और चन्द्रमाका मध्यम व्यासार्ध $= १५'३५'' = १५'·५८१$

$$\therefore म = ४२'·१३५ + १५'·५८१ = ५७'·७२$$

$$\therefore छ प = \frac{५७'·७२}{कोज्या ५^\circ३४' स्परे ५^\circ९'}$$

$$\therefore लरि(छ प) = लरि ५७'·७२ - लरि कोज्या ५^\circ३४' - लरि स्परे ५^\circ९'$$

$$= १·७६१४ - ९·९९७९ - ८·९५४६$$

$$= २·८०८९$$

$$\therefore छ प = ६४४' = १०^\circ४४'$$

यह चन्द्र ग्रहणकी मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि छ प का महत्तम मान १२°३६' और लघुतम मान ९° है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि छ प १२°३६' से अधिक हो तो चन्द्र ग्रहण असम्भव है और ९° से कम हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा परन्तु यदि छ प ९° से अधिक और १२°३६' से कम हो तो ग्रहण सम्भव हो सकता है, जिसका निश्चय पूर्णिमान्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाके लंबन तथा इनके स्पष्ट बिम्बार्ध से करना चाहिए।

यह पहलेही बतला दिया गया है कि छ प भूछायाके केन्द्रसे पातकी दूरी है परन्तु भूछायाका केन्द्र सूर्यके केन्द्रसे १८०° आगे रहता है और चन्द्रमाके दोनों पातोंका अंतर भी १८०° होता है इसलिए यदि पूर्णिमान्तकालिक सूर्यसे चन्द्रमाके किसी पातका अंतर १२°३६' से अधिक हो तो ग्रहण असम्भव है, ९° से कमहो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा और इन दोनोंके बीचमें हो तो सम्भव है ग्रहण लगे। इसलिए चन्द्र ग्रहणकी महत्तम सीमा १२°३६' और लघुतम सीमा ९° होती है।

सूर्यग्रहणकी महत्तम और लघुतम सीमा—जिस तरह चित्र ६३ से सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा पृथ्वीकी छाया स ह में आ जाता है तब चन्द्र-ग्रहण पड़ता है उसी तरह उसी चित्रसे यह भी सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा अमावस्याके अंतमें पृथ्वीकी छाया बनानेवाली स्पर्श-रेखाओंके सा, हा बिन्दुओंके बीचमें आजाता है तब पृथ्वी पर कहीं न कहीं सूर्य-ग्रहण अवश्य देख पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थितिमें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीके किसी न किसी स्थान पर अवश्य पड़ेगी। जिस प्रकार स ह के व्यासार्धके परिमाणसे चन्द्रग्रहणकी सीमा जानी जा सकती है। उसी प्रकार सा हा के व्यासार्धके परिमाणसे सूर्य-ग्रहणकी सीमा जानी जा सकती है।

∠सा प छा = ∠प न पा + ∠प सा पा

= ∠रि प र + ∠प सा पा

= सूर्यकी त्रिज्या − सूर्यका लंबन

\+ चन्द्रमाका लंबन

∴ ∠सा प छा का मध्यम मान

= १६′१″ − ८″·५ + ५७′११″

= ७३′३″·५

= ७३′·०५८

सूर्य-ग्रहणके संबंधमें भी सूत्र छ प = म छेरे ई कोस्परे इ, काम दे सकता है। यहां म = ∠सा प छा + चन्द्रमाका व्यासार्ध

= ७३′·०५८ + १५′·५८३ = ८८′·६४

∴ छ प = ८८′·६४ / (कोज्या ५°३४′ स्परे ५°९′)

∴ लरि छ प = लरि ८८′·६४ − लरि कोज्या ५°३४′ − लरि स्परे ५°९

= १·९४७६ − ९·९९७९ − ८·९५४६

= २·६६५१

∴ क्ष प = ६८८′·६

= १६°२८′·६

यह सूर्य-ग्रहणकी मध्यम सीमा है । इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि सूर्य-ग्रहणके संबंधमें क्ष प का महत्तम मान १८°·५ और लघुतम मान १५°·३ है । अर्थात् यदि अमावस्याके अंतमें सूर्यसे चंद्रमाके किसी पातका अंतर १५°·३ से कम हो तो समझना चाहिए कि सूर्य ग्रहण अवश्य पड़ेगा और यदि यह अंतर १८°·५ से अधिक है तो सूर्य ग्रहण सम्भव नहीं है । परन्तु यदि यह अंतर इन दोनोंके बीचमें हो अर्थात् १५°·३ से अधिक और १८°·५ से कम हो तो सम्भव है कि ग्रहण लगे जिसका निश्चय अमावस्याके अंतकालके सूर्य, चंद्रमाके लंबन और उनकी स्पष्ट गतियोंके द्वारा करना चाहिये ।

चन्द्र ग्रहण उन सब स्थानोंमें देख पड़ता है जहां ग्रसित चंद्रमाका उदय हो चुकता है । परंतु सूर्य ग्रहणका देखना उन सब स्थानोंसे सम्भव नहीं जहाँ सूर्यका उदय हुआ रहता है क्योंकि चन्द्रमाके लंबन तथा इसकी छायाके बहुत पतली होनेके कारण यह थोड़े ही स्थानोंसे देखा जा सकता है जिसका निश्चय करना सहज नहीं है ।

पर्वान्तकालमें सूर्य, चन्द्रमा और पातको स्पष्ट करनेकी रीति—

गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोन संयुतौ ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥८॥

अनुवाद—(८) जिस समयके सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समयसे पर्वान्तकाल अर्थात् पूर्णमासी या अमा-

वस्याके अंतकालका जो अंतर हो उतने समयकी सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट गतियां जानकर उनको सूर्य और चंद्रमाके स्पष्ट भोगांशोंसे क्रमशः घटाने या जोड़नेसे जो आवें उन्हींको पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्रमा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्तकालसे पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये। परन्तु पातका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्तकालसे पीछे हो तो उतने समयकी पातकी गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पातकी गति उलटी होती है।

विज्ञान भाष्य—जैसे मध्यमाधिकारके ६७वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि किसी समयका मध्यम ग्रह दिया हुआ हो तो किसी अन्य समयका मध्यम ग्रह कैसे जानना चाहिये उसी प्रकार यहाँ बतलाया जाता है कि किसी समयके सूर्य चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट भोगांश ज्ञात हों तो पर्वान्तकालके सूर्य चंद्रमा और राहुके स्पष्ट भोगांश कैसे जानने चाहिएँ। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ग्रहणकी गणना करनेके लिए पूर्णमासी और अमावस्याके अन्तकालोंके सूर्य, चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट स्थानों तथा उनकी गतियोंसे ही काम लिया जाता है जैसा कि ऊपरकी बतलायी गयी रीतियों से स्वयम् प्रकट होता है।

ग्रहण का कारण—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रोविशत्यस्य भवेदसौ ॥९॥

अनुवाद—(९) सूर्यसे नीचे रहनेके कारण चंद्रमा उसको बादलकी तरह ढक लेता है। पूर्वकी ओर भ्रमण करता हुआ चंद्रमा भूछायामें प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमाको भूछाया ढक लेती है। इसलिये सूर्य-ग्रहणमें चंद्रमा सूर्यका छादक होता है और चन्द्रग्रहणमें भूछाया चंद्रमाका छादक होती है।

विज्ञान भाष्य—यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है इसलिए यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

ग्रासका परिमाण—

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः।
योगार्धात्प्रोज्झ्य यच्छेशं तावच्छन्नं तदुच्यते ॥१०॥

अनुवाद—(१०) पर्वान्तकालिक चंद्रमाके विक्षेप अथवा शरको छाद्य और छादकके व्यासार्धोंके योगसे घटा दो, जितना शेष रहे वही ग्रासका परिमाण होगा।

विज्ञान भाष्य—यह चित्र ९९ की व्याख्यासे स्पष्ट है। यह चित्र सूर्य और चंद्रमा दोनोंके लिए समान लागू है। चंद्रग्रहणमें छ छादक और च छाद्य है और सूर्य-ग्रहणमें यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायगा।

सर्वग्रास ग्रहण और खंड ग्रहणकी अवस्था—

यद्ग्राह्यमधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा।
योगार्धादधिके न स्याद्विक्षेपे ग्रास सम्भवः ॥११॥

अनुवाद—(११) यदि छाद्यके बिम्बमानसे ग्रासका परिमाण अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण और कम हो तो खंड ग्रहण लगता है। परन्तु यदि चन्द्रमाका विक्षेप

छाद्य और छादकके व्यासार्धोंके योगसे अधिक हो तो ग्रहण नहीं हो सकता।

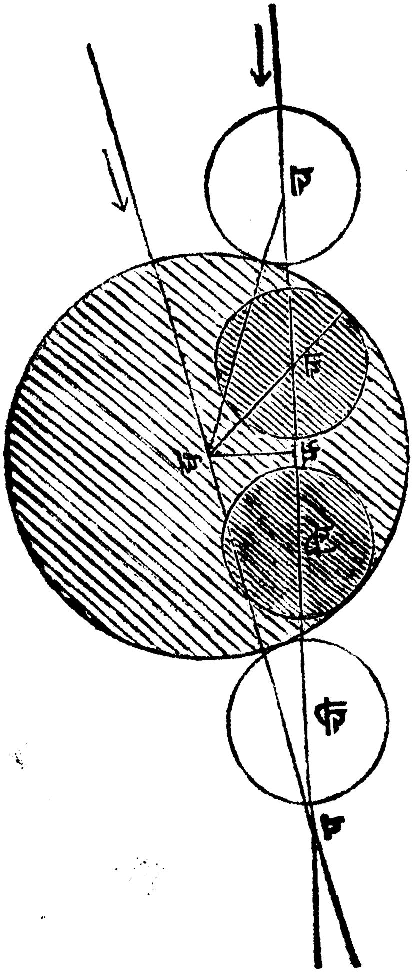
विज्ञान भाष्य—यह भी चित्र ६६ की व्याख्यामें समझा दिया गया है। वहां जो कुछ चंद्रमाके विषयमें कहा गया है वही सूर्यके सम्बन्धमें भी लागू हो सकता है।

स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध जाननेकी रीति

ग्राह्यग्राहकसंयोगवियोगौ दलितौ पृथक्।
विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥१२॥
षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते।
स्यातांस्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः॥१३॥

अनुवाद—(१२) छाद्य और छादकके बिम्बोंको जोड़कर और घटाकर प्रत्येकका आधा करके अलग अलग रखो। प्रत्येक-के वर्गसे चंद्रमाके विक्षेपके वर्गको घटाकर शेषका वर्गमूल निकालो। (१३) प्रत्येकके वर्गमूल को ६० से गुणा करके गुणनफल को सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट गतियोंके अन्तरसे भाग देदो। भाग देने से जो लब्धि आवेगी वह स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध होंगे।

विज्ञान भाष्य—ग्रहण जितने समयतक रहता है उसके आधे समयको स्थित्यर्ध और सर्वग्रास ग्रहण जितने समयतक रहता है उसके आधेको विमर्दार्ध कहते हैं। अथवा स्पर्शकालसे ग्रहण-के मध्यकालतकके समयको स्थित्यर्ध और सम्मीलनकाल-से मध्यकाल तक के समयको विमर्दार्ध कहते हैं। स्थित्यर्ध-का दूना करनेसे जो आता है वह कुल ग्रहण काल है और विमर्दार्धका दूनाकर देनेसे जो आता है वह सर्वग्रास ग्रहण का समय है।



चित्र १०७

चित्र १०० में छप क्रान्तिवृत्त, चप चंद्रकक्षा, प चंद्रमाका पात, छ भूछाया का केन्द्र, च स्पर्शकालके समय चंद्रमाका केन्द्र, चा सम्मीलन-कालके समय चंद्रमाका केन्द्र, चि उन्मीलनके समय चंद्रमाका केन्द्र, ची मोक्षकालके समय चंद्रमाका केन्द्र और फ ग्रहणके मध्यकालके समय चंद्रमाका केन्द्र हैं। यहां सुविधाके लिए भूछायाको स्थिर मान लिया गया है। इसलिए चंद्रमाकी गति अपनी कक्षामें सापेक्ष है जैसा कि चित्र ९८ में चब रेखासे दिखलाया गया है। इस लिए यह सिद्ध है कि चंद्रमा जिस गतिसे च रेखापर जाता हुआ दिखलाया गया है वह चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्ट गतियोंका अंतर है। यदि यह मान लिया जाय कि छपच एक समतल त्रिभुज (plane triangle) है तो कोई हर्ज न होगा। ऐसी दशामें जब कि चफछ कोण समकोण हो और छफ पर्वान्तकालिक चंद्रमा का शर हो तब।

$$चफ = \sqrt{चछ^2 - छफ^2}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{चंद्रबिम्ब + भूभाबिम्ब}{2}\right)^2 - (चंद्रशर)^2}$$

यदि चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गतियोंका अंतर चा—रा हो तो जितनी देर में चंद्रमा इसी गतिसे चफ मार्ग चलेगा वह इस प्रकार ज्ञात होगाः—

जब चंद्रमा चा — रा भाग ६० घड़ियोंमें चलता है तब चफ भाग

$$\frac{60 \times चफ}{चा\text{-}रा}$$ घड़ियोंमें चलेगा।

यदि च फ की जगह इसका ऊपर बतलायी गयी रीतिसे जाना हुआ मान रखा जाय तो स्थित्यर्धकाल यह होगा—

$$\frac{६०}{चा - रा} \times \sqrt{\left[\left(\frac{चंद्रबिम्ब + भूभाबिम्ब}{२}\right)^{२} - (चंद्रशर)^{२}\right]}$$

यदि $\frac{चन्द्रबिम्ब + भूभाबिम्ब}{२}$ को मानैक्यखंड लिखा जाय और इस सूत्रको सरल किया जाय तो यह रूप होगा:—

$$स्थित्यर्ध = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(मानैक्यखंड + शर)(मानैक्यखंड - शर)}}{चन्द्र \text{ और } सूर्यकी \text{ स्पष्ट } दैनिक \text{ गतियोंका } अंतर}$$

इसी प्रकार

$$चाफ = \sqrt{चा\,छ^{२} - छ\,फ^{२}}$$

$$= \sqrt{\left[\left(\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}\right)^{२} - (चन्द्रशर)^{२}\right]}$$

इसलिए विमर्दार्धकाल

$$= \frac{६०}{चा - रा} \times \sqrt{\left[\left(\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}\right)^{२} - \left(चंद्रशर\right)^{२}\right]}$$

यदि $\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}$ को मानान्तरखंड लिखा जाय और इस सूत्रको सरल किया जाय तो

$$विमर्दार्ध = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(मानान्तरखंड + शर)(मानान्तरखंड\ शर)}}{चंद्र \text{ और } सूर्यकी \text{ स्पष्ट } दैनिक \text{ गतियों } का \text{ अंतर}}$$

इनके सरल करनेपर जो समय आवेगा वह घड़ियोंमें होगा। परन्तु वह स्थूल होगा क्योंकि इनकी गणनामें सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिक गतियोंका अंतर तथा पर्वान्त-कालीन चन्द्रशर लिये गये हैं जो स्पर्श या सम्मीलनकालकी स्पष्टगतियों और शरसे बहुत भिन्न होंगे। इसलिए आवश्यक यह है कि पर्वान्तकालके कुछ पहले और पीछेकी प्रत्येक घड़ी या घंटेकी स्पष्ट गतियोंका अंतर और चन्द्र-

शर निकाल कर गणनाकी जाय। यदि ऊपरके नियमसे ही स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल जाना जावे तो चाहिए कि पर्वान्तकालसे इतना पहलेके सूर्य, चन्द्रमा, राहु और चन्द्रशर के स्पष्ट स्थान निकाल कर इनसे फिर स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल जाना जावे। ये पहलेकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होंगे। इसी प्रकार कई बार स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल निकाले जायँ तो अंतमें ऐसा फल मिलेगा जो फिर भिन्न न हो सकेगा। यही शुद्ध स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल होंगे ऐसी क्रियाको असकृतकर्म कहते हैं। इसीकी रीति अगले दो श्लोकोंमें बतलायी गयी है।

असकृत्कर्मसे स्थित्यर्ध और विमर्दार्धकाल जानना—

स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिताः।
लिप्तादि प्रग्रहे शोध्यं मोक्षेदेयं पुनः पुनः ॥१४॥
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथासकृत्।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ॥१५॥

अनुवाद—(१४) सूर्य, चन्द्रमा और पातकी दैनिक गतियों-को स्थित्यर्धकालसे (जो घड़ियोंमें होता है) गुणा करके साठ-से भाग देनेपर यह ज्ञात होता है कि सूर्य चन्द्रमा और पात स्थित्यर्धकालमें कितना चलते हैं। इन परिमाणोंको क्रमशः पर्वान्तकालीन सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंसे घटा देनेपर सूर्य और चन्द्रमाके स्पर्शकालीन भोगांश आजाते हैं और जोड़ देनेपर इनके मोक्षकालीन भोगांश आजाते हैं। (१५) परंतु स्पर्शकालीन पातका भोगांश जाननेके लिए स्थित्यर्ध-कालमें पात जितना चलता है उसको पर्वान्तकालीन पातके

भोगांशमें जोड़ना चाहिए और मोक्षकालीन पातका भोगांश जाननेके लिए उसको पर्वान्तकालीन पातके भोगांशसे घटाना चाहिए क्योंकि पातकी गति उलटी होती है। इस प्रकार स्पर्शकालीन सूर्य चन्द्रमा और पातके भोगांशसे चंद्रमाका शर और सूर्य चन्द्रमाकी स्पष्ट गतियोंको जानकर स्थित्यर्ध और विमर्दार्धकाल फिर निकाले। इसी प्रकार कई बारके असकृत् कर्मसे स्पर्श और मोक्षकालका ज्ञान सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता है। इसी प्रकार सम्मीलन और उन्मीलनकालकी शुद्धता भी जाननी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसकी उपपत्ति पिछले पृष्ठमें बतलायी जा चुकी है इसलिए अधिक लिखनेकी आवश्यता नहीं है।

स्पर्श और मोक्षकाल तथा सम्मीलन और उन्मीलनकाल जाननेकी रीति—

स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत्।
स्थित्यर्धनाडिकाहीने ग्रासो मोक्षस्तुसंयुते ॥१६॥

तद्वदेव विमर्दार्धनाडिकाहीनसंयुते।
निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकलग्रहे ॥१७॥

अनुवाद—(१६) स्पष्ट तिथिके अंतमें अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याके अन्तमें ग्रहणका मध्यकाल होता है। इस समयमें स्थित्यर्धकाल घटा देनेपर स्पर्शकालका समय आता है और जोड़ देनेपर मोक्षकालका समय आता है। (१७) इसी प्रकार ग्रहणके मध्यकालसे विमर्दार्धकाल घटा देनेपर सर्वग्रास ग्रहणके आरम्भकाल अर्थात् सम्मीलन कालका पता लग जाता

है और जोड़ देनेपर उन्मीलन काल अर्थात् सर्वग्रास ग्रहणके अंतकालका पता लग जाता है।

विज्ञान भाष्य—यह स्वयम् इतना स्पष्ट है कि अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

अब यह भी बतला देना आवश्यक है कि अन्य प्रथाके अनुसार ग्रहणका मध्यकाल, स्पर्शकाल, मोक्षकाल, सम्मीलनकाल और उन्मीलनकाल कैसे जाने जाते हैं।

चित्र ९८ में दिखलाया गया है कि पूर्णमासीके अंतमें चंद्रमा और भूछायाके भोगांश समान होते हैं। इसलिए घ घड़ी उपरान्त चन्द्रमा और भूछायाके भोगांशोंका अन्तर घ × (चा − रा) के समान होगा जब कि चा और रा चन्द्रमा और सूर्य अथवा भूछायाकी प्रतिघड़ीकी भोगांश गति हो। यदि चन्द्रमाके शरकी गति प्रतिघड़ी शा हो तो घ घड़ीके उपरान्त इसके शरमें घ × शा के समान परिवर्तन हो जायगा। यदि पूर्णिमान्तकालमें चन्द्रमाका शर श हो तो घ घड़ीके उपरान्त इसका शर श − घ × शा होगा। इसलिए घ घड़ीके उपरान्त चन्द्रमा और भूछायाके केन्द्रोंका अन्तर मा यह होगा:—

$$मा = \sqrt{[घ (चा - रा)]^2 + (श - घ \times शा)^2}$$

क्योंकि चन्द्रमा और भूछायाके भोगांशोंका अन्तर भुज, चंद्रमाका शर कोटि और दोनोंके केन्द्रोंका अंतर कर्णके समान होगा जैसा कि स्पर्शकाल और सम्मीलनकालके समयकी दशा चित्र १०० में दिखलायी गयी है। इस समीकरणके दोनों पक्षोंका वर्ग कर देनेसे

$$मा^2 = [घ (चा—रा)]^2 + (श—घ·शा)^2$$
$$= (चा—रा)^2 घ^2 + श^2 - २ श·शा·घ + घ^2 शा^2$$
$$= [(चा—रा)^2 + शा^2] घ^2 - २ श·शा·घ + श^2$$
$$या\ [(चा—रा)^2 + शा^2] घ^2 - २ श·शा·घ + श^2 - मा^2 = ०$$

यह घ का वर्ग समीकरण है जिससे घ के दो मान ज्ञात होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णिमान्तके पहले और पीछे २ बार चंद्रमा भूछायासे समान अंतरपर आता है। यदि मा के स्थानमें मानैक्यखंडका मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो यह स्पर्शकाल और मोक्षकालके समय होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण नहीं लगेगा, यदि समान हों तो समझना चाहिए कि ग्रहणका आरंभ और अंत एक साथ होगा अर्थात् चंद्रमा भूभा को केवल स्पर्श करता हुआ निकल जायगा परंतु ग्रहण नहीं लगेगा।

यदि मा के स्थान में मानान्तर खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जांय तो सर्वग्रास ग्रहणके आरंभकाल और अंतकाल अथवा सम्मीलन और उन्मीलनकालके समय ज्ञात होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लगेगा और यदि दोनों मान समान हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ और अंत एक साथ ही होगा अर्थात् जैसे ही चंद्रमाका पूरा बिम्ब छायामें आवेगा तैसे ही छायाके बाहर भी होने लगेगा।

इस समीकरणसे घ के दोनों मान नीचे लिखे सूत्रके अनुसार होंगेः—

$$\text{घ} = \frac{२\,\text{श}.\,\text{शा} \pm \sqrt{४\text{श}^{२}.\text{शा}^{२} - ४\left[(\text{चा}-\text{रा})^{२} + \text{शा}^{२}\right]\left[\text{श}^{२} - \text{मा}^{२}\right]}}{२\left[(\text{चा}-\text{रा})^{२} + \text{शा}^{२}\right]}$$

$$= \frac{\text{श}.\text{शा} \pm \sqrt{\text{श}^{२}.\text{शा}^{२} - \left[(\text{चा}-\text{रा})^{२} + \text{शा}^{२}\right]\left[\text{श}^{२} - \text{मा}^{२}\right]}}{(\text{चा}-\text{रा})^{२} + \text{शा}^{२}}$$

घ के इन दोनों मानोंके योगका आधा

$$= \frac{\text{श}.\text{शा}}{(\text{चा}-\text{रा})^{२} + \text{शा}^{२}}$$

यही ग्रहणका मध्यकाल है, अर्थात् पूर्णिमान्तके इतने ही समय उपरान्त ग्रहणका मध्य होता है।

सूर्य, चन्द्रमाके विषुवांश और क्रान्तिसे भी ग्रहणका स्पर्शकाल, सम्मीलनकाल इत्यादि जाननेकी रीति है जो उपर्युक्त रीतिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है परन्तु वह विस्तार भयसे यहां नहीं लिखी जायगी।

यहां यह बतला देना आवश्यक समझ पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्तमें स्पर्शकाल और मोक्षकाल इत्यादिके जाननेका जो नियम दिया गया है उससे सिद्ध होता है कि ग्रहणका मध्यकाल पूर्णिमाके अन्तमें होता है परन्तु ऊपर बतलायी गयी दूसरी रीतिमें ग्रहणका मध्यकाल पूर्णिमान्तके कुछ उपरान्त आता है। दूसरी रीति बिलकुल शुद्ध है और पहली कुछ स्थूल। इसका कारण चित्र ९८ से स्पष्ट हो जाता है। ग्रहणका मध्यकाल उस समय होता है जिस समय चन्द्रमा भूभा से निकटतम अंतर अर्थात् क पर होता है जब कि ब क चन्द्रमाकी कक्षापर लम्ब होता है। ऐसी दशामें चन्द्रमाका शर पूर्णिमान्त कालके शरसे कुछ छोटा होता है और चन्द्रमा भी पूर्णिमान्त कालके स्थान च से कुछ आगे बढ़ा रहता है।

यह जानना कि ग्रासका परिमाण स्पर्शकालसे किस समयपर कितना होता है—

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः ।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः ॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्ध संगुणाः ।
स्फुटस्थित्यर्धसम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः
स्मृताः ॥१९॥
क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत् ।
मानयोगार्धतः प्रोज्भ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत् ।२०।

अनुवाद—(१८) ग्रहणके आरंभ कालसे कुछ घड़ी पीछे परंतु मध्य ग्रहणके पहले ग्रासका परिमाण कितना होता है यह जाननेके लिए इष्ट घड़ीको स्थित्यर्धकालसे घटाकर शेषको चन्द्रमा और सूर्यकी दैनिक स्पष्टगतियोंके अंतरसे गुणा करके गुणनफलको ६० से भाग दे दो। इस भागफलको कोटिकला कहते हैं जब कि दैनिक गतियां कलाओंमें प्रकट की गयी हों। (१९) सूर्यग्रहणका ग्रासमान जाननेके लिए ऊपरकी रीतिसे निकाली गयी कोटिकलाको मध्यस्थित्यर्धसे गुणा करके गुणनफलको स्पष्ट स्थित्यर्धसे भाग देनेपर जो आता है उसे स्पष्ट कोटिकला कहते हैं। (२०) उस समयके चंद्रमाके शरको भुज मानकर इसके वर्गको कोटिकलाके वर्गमें जोड़कर योगफलका वर्गमूल निकालनेसे जो कर्ण आये उसे मानैक्यखंडसे घटानेपर जो आवे वही तात्कालिक ग्रास होता है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमकी उपपत्ति चित्र ९८, ९९ और १०० के सम्बन्धमें अच्छी तरह समझायी गयी है। १६-१७ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें जो सूत्र

मा = $\sqrt{[\text{घ}(\text{चा}-\text{रा})]^२ + (\text{श}-\text{घ}\times\text{शा})^२}$ स्थापित किया गया है वह इसी नियमका दूसरा रूप है। इस सूत्रमें घ पर्वान्तकालसे पहले या पीछेका समय है परन्तु नियममें स्पर्शकालके उपरान्तका इष्टकाल माना गया है इसलिए स्थित्यर्धसे इष्टकाल घटानेका आदेश है ऐसा करनेसे जो आवे उसको घ की जगह रखकर सूत्रको सरल करनेपर मा का जो परिमाण आवेगा उसीको मनैक्य खंडसे घटानेपर तात्कालिक ग्रासका परिमाण जाना जा सकता है। यहां घ (चा—रा) ही कोटिलिप्ता है क्योंकि चा—रा सूर्य और चंद्रमाकी प्रतिघड़ीकी गतियोंका अन्तर है। यदि दैनिक स्पष्ट गतियोंका अंतर दिया हुआ हो तो इसको ६० से भाग देना पड़ता है जैसा कि नियममें बतलाया गया है। श—घ × शा तात्कालिक शर है। और मा भूभा तथा चन्द्रमाके केन्द्रोंका तात्कालिक अंतर है यह अन्तर मानैक्यखंडसे जितना कम होता है वही ग्रासका परिमाण है जिसकी व्याख्या चित्र ९९ के संबंधमें अच्छी तरहकी गयी है। उस चित्र से भिन्नता केवल इतनी है कि उसमें चंद्रमा और भूभा के केन्द्रोंकी निकटतम दूरी ली गयी है जो श × कोज्य ई के समान होती है और यहां वह दूरी ली गई है जो स्पर्शकालसे इष्ट घड़ी उपरान्त होती है।

यदि मानैक्यखंड अर्थात् भूभा और चन्द्रमाके व्यासार्धोंके योगको पहलेकी तरह म अक्षरसे सूचित किया जाय तो स्पर्शकालसे घ घड़ी उपरान्त ग्रासका परिमाण यह होगाः—

$$\text{ग्रास} = \text{म} - \sqrt{\left\{\left[(\text{स्थि}-\text{ष}) \times \frac{\text{चा}-\text{रा}}{६०}\right]^{२} + \text{श}^{२}\right\}}$$

जहाँ स्थि स्थित्यर्धके लिए, श चन्द्रमाके तात्कालिक शर-के लिए और चा − रा सूर्य चंद्रमाके दैनिक गतियोंके अन्तर लिए लिखा गया है। यदि चा − रा प्रति घटीका अन्तर हो तो ६० से भाग देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

सूर्य ग्रहणके संबंधकी बात आगे आनेवाले सूर्य ग्रहणाधिकारमें बतलाई जायगी।

मध्य ग्रहणके उपरान्त परन्तु मोक्षकालसे कुछ घड़ी पहले ग्रासका परिमाण—

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वमिष्टनाडी विशोधयेत्।
स्थित्यर्धान्मौक्षिकाच्छेषं प्राग्वच्छेषं तु मौक्षिके॥२१॥

अनुवाद—(२१) जब यह जानना हो कि मध्य ग्रहणके उपरान्त मोक्षकालसे कुछ घड़ी पहले ग्रासका परिमाण क्या तब है मोक्षकाल संबंधी स्थित्यर्धसे इष्ट घड़ी घटाकर जो शेष बचे उससे ऊपरके १८–२० श्लोकोंमें बतलायी गयी रीतिके अनुसार ग्रासमान निकाले। इससे यह जाना जायगा कि मोक्षकालसे इष्ट घड़ी पहले चंद्रमाका कितना ग्रस्त भाग शेष है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८–२० श्लोकोंमें बतलाये गये नियमके समान है। उससे यह जाना जाता है कि इष्टकालमें कितना भाग ग्रस्त हो जाता है और इससे यह जाना जाता है कि इष्टकालमें कितना ग्रस्त भाग शेष रहता है क्योंकि मध्य ग्रहणके पहले जिस क्रमसे ग्रस्त भागकी वृद्धि होती है,

मध्यग्रहणके उपरान्त ठीक उसके विलोम क्रमसे ग्रस्त भाग की क्षीणता होती है ।

ग्रासका परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल जानना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्नलिप्तिकाः ।
तद्वर्गात्प्रोज्झ्य तत्काल विक्षेपस्य कृतिं पदम् ॥२२॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्ट-स्थित्यर्धे नाहता हृताः ।
मध्येन लिप्तास्तन्नाड्यः स्थितिवद्ग्रासनाडिकाः २३

अनुवाद—(२२) मानैक्यखंडसे ग्रस्त भागकी कलाको घटाकर शेषका वर्ग करो और इसके वर्गसे चन्द्रमाके तात्कालिक शरके वर्गको घटा दो और शेषका वर्गमूल निकालो तो [२३] कोटिलिप्ताका मान ज्ञात होगा । सूर्यग्रहणमें इस कोटिलिप्ताको स्पष्ट स्थित्यर्धसे गुणा करके गुणनफलको मध्यम स्थित्यर्धसे भाग देनेपर जो आता है वह कोटिकला है । इसी कोटिकलासे स्थित्यर्धकाल जाननेकी रीतिसे घड़ी बनावे अर्थात् कोटिकलाको ६० से गुणा करके सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियोंके अन्तरसे भाग दे । जो भागफल आवे उसको स्थित्यर्धकालसे घटा दे तो यह ज्ञात होगा कि स्पर्शकालके उपरान्त कितनी घड़ी बीती है । इसीका नाम ग्रासनाड़िका है ।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकोंमें बतलाये गये नियमका विलोम है । वहां यह बतलाया गया है कि आरम्भकालसे इष्ट घड़ी उपरान्त ग्रासका परिमाण क्या होता है और यहां यह बतलाया गया है कि यदि ग्रासका परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल कैसे जाना जाता है । इसलिए इसकी उपपत्ति भी यही है । इसका रूप यह है:—

कोटिकला = $\sqrt{(\text{म} - \text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$

ग्रासनाडिका = घ = $\text{स्थि} - \frac{६०}{\text{चा} - \text{रा}} \sqrt{(\text{म} - \text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$

वलन जानना—

नतज्याक्षज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्य कार्मुकम् ।
वलनांशाःसौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः ॥ २४ ॥
राशित्रययुताद्ग्राह्यात्क्रान्त्यंशैर्दिक्समैर्युताः ।
भेदेऽन्तराज्ज्या वलना सप्तत्यंगुलभाजिता ॥२५॥

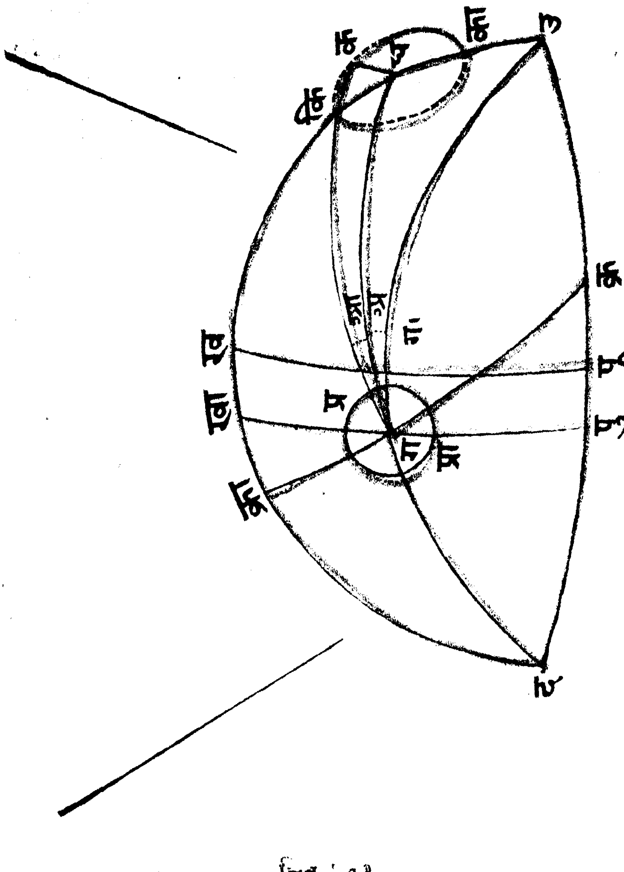
अनुवाद—(२४) छाद्य ग्रहके समप्रोतवृत्तके नतांशकी ज्याको इष्टस्थानके अक्षांशकी ज्यासे गुणा करके गुणनफलको ग्रहके अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्यासे भाग दे दे, और भागफलका धनु बनावे। यही धनु ग्रहका आक्षवलन कहलाता है। यदि ग्रह पूर्वकपालमें हो अर्थात याम्योत्तरवृत्तसे पूर्व हो तो आक्षवलन उत्तरकी ओर होता है और यदि ग्रह पश्चिम कपालमें हो अर्थात याम्योत्तरवृत्तसे पश्चिम हो तो आक्षवलन दक्षिणकी ओर होता है। (२५) ग्रहके सायन भोगांश में ९० अंश जोड़नेसे जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति (स्पष्टाधिकार श्लोक २८ के अनुसार) निकाले अर्थात् उसको परमक्रान्तिज्यासे गुणा करके (अहोरात्रवृत्तकी) त्रिज्यासे भाग दे दे भागफल आयनवलन कहलाता है। यह (क्रान्ति) उत्तर या दक्षिणकी ओर होगी। यदि आक्षवलन और आयनवलन दोनोंकी दिशा एकही हो तो जोड़ दे और भिन्न हो तो घटा दे। ऐसा करनेसे जो कुछ आवे वह स्फुटवलन कहलाता है। इसकी ज्याको ७० से भाग देनेपर वलनका अङ्गुलादि मान ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—यह जाननेके लिये कि ग्रहणका स्पर्श, मोक्ष

इत्यादि छाद्य ग्रहके किस विन्दुसे आरंभ या अंत होता है, स्फुटवलनकी आवश्यकता पड़ती है। छाद्य ग्रहके पूर्व या पच्छिम विन्दुसे जितने कोणपर क्रान्तिवृत्त उत्तर या दक्षिण होता है उसीको स्फुटवलन कहते हैं। ग्रह बिम्बका पूर्व और पच्छिम विन्दु इस प्रकार जाना जाता है—ग्रहके केन्द्रसे क्षितिजके उत्तर-दक्षिण विन्दुओंको जाता हुआ एक महावृत्त खींचते हैं जिसे उस ग्रह का समप्रोतवृत्त (circle of position) कहते हैं। यह समप्रोतवृत्त सममण्डलसे* समकोण बनाता है। सममण्डलके समानान्तर ग्रह बिम्बके केन्द्रसे जो ऊर्ध्व वृत्त खींचा जाता है वह भी समप्रोतवृत्तसे समकोणपर होता है यह ऊर्ध्ववृत्त ग्रह-बिम्बके किनारेके जिन विन्दुओंपर काटता है उनमेंसे जो पूर्वकी ओर होता है उसे ग्रहका पूर्व विन्दु और जो पच्छिमकी ओर होता है उसे ग्रहका पच्छिम बिन्दु कहते हैं। चित्र १०१ से यह सब बातें स्पष्ट होती हैं।

चित्र १०१ से सिद्ध है कि क्रान्तिवृत्त क ग का ग्रह बिम्बके प्राच्य विन्दुसे पु ग क कोणके अंतरपर है। इसी अंतरको स्फुटवलन कहते हैं। यह जाननेके लिए समप्रोत वृत्त उ ग और कदम्बप्रोत वृत्त क ग के बीचका कोण उ ग क जाननेकी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उ ग और क ग क्रमानुसार खा ग पु और क ग क्रा से समकोणपर हैं इसलिए पहले दो के बीचका कोण पिछले दो के बीचके कोणके समान होगा। इसलिए स्फुटवलन उ ग क कोणके समान हुआ जो उ ग ध और ध ग क नामक दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। कोण उ ग ध को आक्षवलन और कोण ध ग क को आयनवलन कहते

* देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३३५



चित्र ६८१

उ भ ख द=इष्ट स्थानका याम्योत्तर वृत्त

उ पू द=इष्ट स्थानका क्षितिजवृत्त (पूर्वार्ध)

उ, द, पू=क्षितिजके उत्तर, दक्षिण और पूर्व बिन्दु

ख=खस्वस्तिक

ख पू=सममण्डल

क क्रा=क्रान्तिवृत्त

ग=छाद्य ग्रहके बिम्बका केन्द्र

ख ग द=ग बिन्दुका समप्रोतवृत्त (circle of position)

ध=उत्तरीय आकाशीय ध्रुव

क=कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव)

क का कि=कदम्ब वृत्त (वह वृत्त जिसपर कदम्ब अहोरात्रमें ध्रुवको परिक्रमा करता हैं)

ख गा=समप्रोत वृत्तका नतांश

का=कदम्बका स्थान जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्तपर होता है

कि=कदम्बका स्थान जब सायन मकर याम्योत्तरवृत्तपर होता है।

ग ध=ग्रहका ध्रुवान्तर

ग क=ग्रहका कदम्बान्तर

कोण ख ग ध=ग्रहका आक्षवलन

कोण ध ग क=ग्रहका आयनवलन

कोण खग क=ग्रहका स्फुटवलन

कोण क ग पू=ग्रहका स्फुटवलन

प्ता प्र ग प्रा पु=ग्रहके केन्द्रसे जाता हुआ सममण्डलका समानान्तर वृत्त

प्रा=ग्रहबिम्बका प्राच्य (पूर्वी) बिन्दु

प्र= " " प्रतीच्य (पश्चिमी बिन्दु)

कहते हैं। जिससे स्पष्ट है कि कोण ख ग क का परिमाण जाननेके लिए आक्षवलन और आयनवलनको जोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि क ग कदम्बप्रोतवृत्त ख ग और ध ग के बीचमें हो तो आक्षवलनसे आयनवलन घटानेपर स्फुटवलन आता है। चित्रमें ग्रह पूर्व कपालमें अर्थात् याम्योत्तर वृत्तके पूर्व दिखलाया गया है। ऐसी दशामें स्फुटवलन प्राच्य बिन्दुसे

उत्तरकी ओर होता है। यदि इसी तरह दूसरा चित्र बनाकर ग्रह पच्छिम कपालमें दिखलाया जाय तो उससे स्पष्ट होगा कि स्फुटवलन ग्रहके प्रतीच्य विन्दुसे दक्खिनकी ओर होता है। इस प्रकार श्लोक २४ के उत्तरार्धकी उत्पत्ति सिद्ध होती है। आक्षवलन का परिमाण गोलीय त्रिभज उ ग ध से इस प्रकार जाना जाता है :—

गोलीय त्रिभुज उ ग ध में,

$$\frac{\text{ज्या (उ ग ध)}}{\text{ज्या (ध उ)}} = \frac{\text{ज्या (ग उ ध)}}{\text{ज्या (ग ध)}} = \frac{\text{ज्या (ख गा)}}{\text{ज्या (ध्रुवान्तर)}}$$

क्योंकि उ ख और उ गा ९०° के समान हैं इसलिए इनके बीचका कोण गा उ ख अथवा ग उ ध ख गा के समान हुआ जो समप्रोतवृत्तका नतांश है। ज्या (ध्रुवान्तर) = ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्या = ग्रहकी द्युज्या* = ग्रह के अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या; ज्या (ध उ) = अक्षांश की ज्या = अक्षज्या

इसलिए

$$\text{ज्या (उ ग ध)} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{ज्या (खगा)}}{\text{ग्रहके अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{ज्या (खगा)}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

इस तरह श्लोक २४ का पूर्वार्ध भी सिद्ध हो गया। यहाँ त्रिज्याका अर्थ ३४३८ नहीं है वरन् अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या है जो ग्रहकी क्रान्तिकोटिज्या के समान होती है और नतज्याका अर्थ ग्रह के नतांश ख ग अथवा नतकाल ख ध ग की ज्या नहीं है वरन् समप्रोतवृत्तका नतांश खगा है। भास्कराचार्यजीने इसका परिमाण जाननेके लिए यह नियम † बतलाया है कि

* देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १०३-१०४। † गणिताध्याय पृष्ठ १८०

स्पर्शकालमें छाद्य ग्रहका जो नतकाल हो उसको ६० से गुणा करके यदि सूर्यग्रहण हो तो दिनार्धमान और चन्द्रग्रहण हो तो रात्र्यर्धमानसे भाग दे दो। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब दिनार्धमान या रात्र्यर्धमानमें छाद्य ग्रह ९०° ऊपर चढ़ता है तो नतकालमें जितना चढ़ेगा वही उसका नतांश है परन्तु यह नियम स्थूल है। जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धांत ने भी छाद्य ग्रहके नतांश ख ग की ज्याके लिएही नतज्या लिखा है न कि ख गा के लिए क्योंकि ख गा का परिमाण जानने के लिए कोई नियम नहीं बतलाया गया है। यह भी संभव है कि नतकाल ख ध ग की ज्या के लिए भी नतज्या लिखा गया हो। परन्तु यह दोनों अर्थ शुद्ध नहीं हैं। इस-लिए मैंने अनुवादमें इसका अर्थ समप्रोतवृत्तके नतांशकी ज्या किया है।

समप्रोतवृत्तका नतांश ख गा अथवा कोण ख उ ग गोलीय त्रिकोणमितिके आधारपर इस प्रकार शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है :—

पहले ग्रह के नतकालसे उसका नतांश ख ग पृष्ठ ४३० में सिद्ध किये गये सूत्र (ख) से जान लेना चाहिए। फिर नतांश-की सहायता से कोण ध ख ग पृष्ठ ४०६ में सिद्ध किये गये सूत्र से जानना चाहिए। जब नतांश ख ग और कोण ध ख ग अथवा उ ख ग ज्ञात हो गये तब गोलीय त्रिभुज उ ख ग के तीन अंग अर्थात् दो भुज उ ख और ख ग तथा इनके बीचका कोण जानकर कोण ख उ ग सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

कोस्पर्श (ख ग) × ज्या (ख उ)

= कोज्या (ख उ) कोज्या (उ ख ग) + कोस्परे (ख उ ग)* ज्या (उ ख ग)

परन्तु यहां ख उ = ९०°, इसलिए ज्या (ख उ) = १ और कोज्या (ख उ) = ०

∴ कोस्परे (ख ग) = कोस्परे (ख उ ग) ज्या (उ ख ग)

$$\therefore \text{कोस्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{कोस्परे(ख ग)}}{\text{ज्या (उ ख ग)}}$$

$$\text{अथवा स्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{ज्या (उ ख ग)}}{\text{कोस्परे (ख ग)}}$$

= ज्या (उ ख ग) स्परे (ख ग)

परन्तु कोण उ ख ग = ९०° + ∠पू ख ग

= ९०° + अ पा†

∴ ज्या(उ ख ग) = ज्या (९०° + अपा) = कोज्या (अपा)

∴ स्परे (ख उ ग) = अपा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

इसलिए सिद्ध होगया कि ग्रहके समप्रोतवृत्तकी नतांश-ज्याको जाननेके लिए ग्रहकी अग्राकी कोटिज्याको ग्रहके नतांश स्पर्शरेखासे गुणा कर देना चाहिये।

इस प्रकार ख उ ग कोण अथवा ख ग धनुका मान जान कर इसकी ज्या को पृष्ठ ६८२ के सूत्र (१) में उत्थापित करनेसे आक्षवलन का मान ज्ञात होगा।

आयनवलन का मान इस प्रकार जाना जा सकता है :—

---

* देखो Todhunter and Leathem's Spherical Trigonometry pp. 26.

† देखो पृष्ठ ४०६

गोलीय त्रिभुज क ग ध में

$$\frac{\text{ज्या}\angle \text{क ग ध}}{\text{ज्या (क ध)}} = \frac{\text{ज्या}\angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

$$\therefore \text{ज्या}\angle \text{क ग ध} = \frac{\text{ज्या (क ध)} \times \text{ज्या}\angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

यहां क ध कदम्बसे ध्रुवका अंतर है जो सूर्यकी परम क्रान्तिके समान होता है। ग ध ध्रुव से ग्रहका अंतर है जिसकी ज्या ग्रहकी क्रान्तिकोटिज्याके समान है और कोण ग क ध, ग के कदम्बप्रोतवृत्त ग क और अयनवृत्त क ध के बीचमें है। पृष्ठ २६३ के चित्र १६ से स्पष्ट है कि दक्षिणायन विन्दु द वसंत संपातसे ९०° आगे और उत्तरायण विन्दु उ वसंत संपातसे २७०° आगे है अर्थात् दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दुओंसे जाता हुआ अयनवृत्त वसंत संपातसे ९०° और २७०° के अन्तरपर क्रान्तिवृत्तको समकोणपर काटता है। इसी चित्रसे यह भी प्रकट है कि ग के कदम्बप्रोतवृत्त प क और अयनवृत्त द ध क के बीचका कोण द क ग या द क प के समान है जो प द धनुके भी समान हुआ। ग्रहका भोगांश व प धनु है। इसलिए व प और प द का योग ९०° के समान हुआ अर्थात् प द की ज्या व प की कोटिज्या के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहके कदम्बप्रोतवृत्त और अयनवृत्तके बीचके कोणकी ज्या ग्रहके भोगांशकी कोटिज्याके समान होती है। इसलिए

$$\text{ज्या}\angle \text{क ग ध} = \frac{\text{परम क्रान्तिज्या} \times \text{ग्रहकी भोगांशकोटिज्या}}{\text{ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्या}} \cdots\cdots\cdots (१)$$

इस प्रकार क ग ध कोणका मान अथवा आयनवलन सिद्ध होता है। २५वें श्लोकके पूर्वार्धमें संक्षेपमें केवल इतना

बतलाया गया है कि ग्रहके भोगांशमें ९०° जोड़नेसे जो कुछ आवे उसकी क्रान्ति निकाले अर्थात् इसकी ज्याको परम क्रान्तिज्यासे गुणा करके ग्रहके अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या से भाग दे दो। परन्तु अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या = क्रान्ति कोटिज्या (देखो पृष्ठ ३०३, ३०४) और ग्रहके भोगांश में ९०° जोड़कर जो आता है उसकी ज्या ग्रहके भोगांशकी कोटिज्याके समान होती है क्योंकि यदि भ भोगांश हो तो

ज्या (भ + ९०°) = कोज्या भ (देखो पृष्ठ १८५—१८६)

जब भोगांश ६ राशिसे कम होता है तो क्रान्ति उत्तर होती है और ६ राशि से अधिक होता है तो क्रान्ति दक्खिन होती है। इसी तरह जब भ + ९०° ६ राशिसे अधिक हो तो ∠ क ग ध को दक्खिन समझना चाहिए और ६ राशिसे कम हो तो उत्तर समझना चाहिए।

आक्षवलन और आयनवलन दोनोंकी दिशाएं एक ही हों तो जोड़नेसे और भिन्न हों तो इनके अंतरसे स्पष्टवलनका परिमाण ज्ञात होता है। यह चित्र १०१ से ही स्पष्ट है।

आक्षवलन और आयनवलनके सूत्रोंसे यह भी निश्चय किया जा सकता है कि इनके मान किस समय सबसे अधिक और किस समय शून्य हो सकते हैं। उदाहरणके लिए आयनवलनके सूत्रको लीजिए। इस समीकरणके दाहिनी ओर ३ गुणक हैं जिनमें परमक्रान्तिज्या अचल है। परन्तु ग्रहकी भोगांश कोटिज्या और क्रान्तिकोटिज्या चल हैं। जिस समय भोगांश शून्य होगा उस समय ग्रह वसंत संपातपर होगा इसलिए इसकी क्रान्ति भी शून्य होगी। ऐसी दशामें इनकी कोटिज्याओंका मान १ होगा। इसलिए आयनवलन परमक्रान्तिके समान अर्थात् २३°२७′ होगा। यही

बात शरद् सम्पातपर भी होगी । यही बात भास्कराचार्यजीने गोलाध्यायके ग्रहणवासनाके ३०वें श्लोकमें लिखी है । इसी प्रकार जब भोगांश ९०° या २७०° होगा तब भोगांश कोटिज्या शून्य होगी परन्तु क्रान्ति कोटिज्या शून्य नहीं होगी क्योंकि क्रान्ति २४° के लगभग होगी इसलिए आयनवलन भी शून्य होगा इत्यादि ।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि स्फुट वलनका परिमाण अंशों या कलाओंमें कैसे जाना जाता है । यदि यह जानना हो कि चित्र खींचते समय अंगुलसे नापकर कैसे काम लिया जाय तो स्फुटवलनकी ज्या को ७० से भाग देनेपर अंगुलोंमें वलनका परिमाण आ जाता है । ऐसा २५ वें श्लोकमें बतलाया गया है । इसकी उपपत्ति यह है कि छाद्य ग्रहके बिम्बका चित्र खींचनेके लिए ४९ अंगुलका व्यासार्ध मानकर वृत्त खींचने की परिपाटी थी । यह १२ अंगुलके शंकुके चौगुनेके लगभग होता है और इस प्रकार एक अंगुल ७० कलाके लगभग होता है क्योंकि त्रिज्याका मान साधारणतः ३४३८ कलाओंका समझा जाता है और ४९ × ७० = ३४३०, जो ३४३८ के बहुत निकट है ।

अंगुलों में बिम्बका मान जानना:—

सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु ।
छिन्द्याद्विक्षेपमानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥२६॥

अनुवाद—(२६) इष्ट समयमें छाद्य ग्रहका जो उन्नतकाल हो उसको दिनमान और दिनार्धमानके योगमें जोड़कर योगफलको दिनार्धमानसे भाग दे दो । इस भागफलसे विक्षेप, छाद्य और छादक ग्रहोंके कलात्मक बिम्बोंको भाग दे देनेसे इनके बिम्बोंके अंगुलात्मक मान ज्ञात हो जायंगे ।

विज्ञान भाष्य—पृष्ठ ५५३ में बतलाया गया है कि वर्तनके कारण उदय अस्त होते हुए सूर्यका आकार बड़ा देख पड़ता है। यही दशा चन्द्रमाकी भी होती है। यह बात हमारे आचार्यों-को भी ज्ञात* थी। यह तो निश्चय ही था कि उदय या अस्त होते हुए सूर्य और चन्द्रमाके यथार्थ पिंडमें कोई अन्तर नहीं पड़ता इसलिये हमारे आचार्योंने यह कल्पना की थी कि उदय या अस्तकालके सूर्य या चन्द्रमाके बिम्बमानको अङ्गुलों-में प्रकट करनेके लिए ३ कलाका अङ्गुल माना जाय और जब यह पिंड ख-स्वस्तिकमें हो तब ४ कलाका अङ्गुल माना जाय↑। ऐसा करनेसे आकारोंमें जिस प्रकारकी भिन्नता देख पड़ती है वैसी ही भिन्नता उनके अङ्गुलात्मक मानोंमें भी हो जायगी। यह तो हुई उदय या अस्त होते हुए बिम्बमानों और ख-स्वस्तिकमें स्थित बिम्बमानोंकी बात। यदि ग्रह ख-स्वस्तिक और क्षितिज दोनोंके बीचमें हो तो उसके बिम्बका अङ्गुला-त्मक मान जाननेके लिए अनुपातसे इस प्रकार काम लेते थे। क्षितिजसे खमध्य अथवा याम्योत्तर वृत्ततक जानेमें अङ्गुलका मान ३ कलासे ४ कला हो जाता है तो उदयकाल या अस्त-कालसे इष्टकाल तक जो उन्नतकाल है उसमें अङ्गुलका मान क्या होगा। परन्तु उदयकालसे याम्योत्तर वृत्त तक जानेमें जितना समय लगता है उसे दिनार्धमान कहते हैं। इसलिए जब दिनार्धमानमें अङ्गुलके मानमें एक कलाका अन्तर पड़ जाता है तब उन्नतकालमें कितना अन्तर पड़ेगा। यह अंतर

---

* देखो गणिताध्याय पृष्ठ १८२, १८३

↑ भास्कराचार्य ने २॥ कला और ३॥ कलाका अंगुल माना है। देखो गणिताध्याय पृष्ठ १८३।

$= \dfrac{\text{उन्नतकाल} \times १ \text{ कला}}{\text{दिनार्धमान}}$ । इसलिए यह प्रकट है कि इष्टकालमें बिम्बका अंगुलात्मक मान जाननेके लिए १ अंगुलका मान २ $+ \dfrac{\text{उन्नतकाल} \times १ \text{ कला}}{\text{दिनार्धमान}}$ लेना चाहिए। इसलिए इष्ट कालमें

$$१ \text{ अंगुल} = २ + \frac{\text{उन्नतकाल} \times १ \text{ कला}}{\text{दिनार्धमान}}$$

$$= \frac{२ \times \text{दिनार्धमान} + \text{उन्नतकाल} \times १}{\text{दिनार्धमान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{२ \text{ दिनार्धमान} + \text{उन्नतकाल}}{\text{दिनार्धमान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{(१ + १) \text{ दिनार्धमान} + \text{उन्नतकाल}}{\text{दिनार्धमान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{\text{दिनमान} + \text{दिनार्धमान} + \text{उन्नतकाल}}{\text{दिनार्धमान}} \text{ कला}$$

इस प्रकार २६वें श्लोककी उपपत्ति सिद्ध हुई। परन्तु यहां यह बतला देना आवश्यक है कि आकाशीय पिंडका आकार उदयसे लेकर याम्योत्तरवृत्ततक एक क्रमसे नहीं घटता इस लिए अनुपातसे ग्रहका आकार जानना शुद्ध नहीं है जैसा ५३१ पृष्ठमें दी हुई वर्तनकी सारणीसे स्वयम् प्रकट होता है।

उदाहरण—संवत् १६८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाके चंद्रग्रहणकी गणनाः—

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिनके सूर्य, चन्द्रमा, और राहुको स्पष्ट करना चाहिए। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि कलियुगसे इस दिन तकका अहर्गण क्या है।

कलियुगके आरंभसे विक्रमी संवत्के आरंभ तक ३०४४ वर्ष
विक्रमके आरंभसे १६८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक १६८१ "
कलियुगादि से " " " ५०२५ "

१ सौर वर्ष = ३६५·२५८७५६ सावन दिन

∴ ५०२५ सौर वर्ष = ५०२५ × ३६५·२५८७५६ सावन दिन
= १८३५४२५·२४८६ "

यह कलियुगके आरम्भसे १६८१ वि० की मध्यम मेष संक्रान्तितकका समय है। स्पष्ट मेष संक्रान्ति २·१७०७ दिन पहले ही हो जाती है। इसलिये इसको घटा देनेपर १६८१ वि० के मेष संक्रान्ति काल तकका समय १८३५४२३.०७८२ सावन दिन हुआ।

अब यह देखना है कि मेष संक्रान्तिके दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास = २६·५३०५८८ सावन दिन

इससे उपर्युक्त सावन दिनोंको भाग देनेपर लब्धि बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्या होगी और शेष ८·४४२२३६ सावन दिन चैत्रकी मध्यम अमावास्यासे मेष संक्रान्तितक-का समय होगा। इसलिए चैत्रकी मध्यम अमावास्यासे ८·४४२२३६ दिन उपरान्त मेष की संक्रान्ति लगी। इससे यह सिद्ध होता है कि इस वर्ष मलमास नहीं लगेगा, क्योंकि जब वैशाख कृष्ण ४ के उपरान्त मेष संक्रान्ति होती है तब वर्षमें कोई महीना मलमासका पड़ता है। इस प्रकार चैत्रकी अमावास्यासे श्रावणी पूर्णिमा तक ४॥ चान्द्रमास होते हैं

१ चान्द्रमास = २९·५३०५८८ दिन
४ " = ११८·१२२३५२ दिन
आधा " = १४·७६५२९४ "
∴ ४॥ " = १३२·८८७६४६ "

इसलिए १९८१ वि० के चैत्रकी मध्यम अमावास्यासे १३२·८८७६४६ दिन उपरान्त श्रावणकी मध्यम पूर्णिमाका अन्त होगा। परन्तु चैत्रकी अमावास्यासे ८·४४२२३६ सावन दिन पर स्पष्ट मेष-संक्रान्ति होती है इसलिए स्पष्ट मेष-संक्रान्ति काल-से १३२·८८७६४६ − ८·४४२२३६ = १२४·४४५४१० दिन उपरान्त श्रावणकी मध्यम पूर्णिमाका अंत होगा।

कलियुगादिसे १९८१की मेष संक्रान्तितक १८३५४२३·०७८२ दिन
मेषसंक्रान्तिसे श्रावणी पूर्णिमातक १२४·४४५४ "

कलियुगादिसे श्रावणी पूर्णिमातक १८३५५४७·५२३६ दिन

इस लिए १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्रि का अहर्गण १८३५५४७ हुआ। इसकी शुद्धताकी परीक्षा करनेके लिए यह जानना चाहिए कि इस अहर्गणसे श्रावणी

पूर्णिमाका वार ठीक आता है कि नहीं। इस लिए इसको ७ से भाग देना चाहिए। सातसे भाग देनेपर २६२२२१ सप्ताह आते हैं और शेष कुछ नहीं बचता। इस लिए सिद्ध होता है कि श्रावणी पूर्णिमा गुरुवारको थी क्योंकि कलियुगका आरंभ सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार गुरुवारकी मध्यरात्रिको हुआ था। इस प्रकार संवत् १६८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा गुरुवारकी मध्यरात्रिका अहर्गण १८३५५४७ हुआ।

इसी अहर्गणसे श्रावणी पूर्णिमाकी अर्ध्यरात्रि कालके सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च, राहु इत्यादिके स्थान त्रैराशिकसे जानने चाहिए। मध्यमाधिकारमें बतलाया गया है कि एक महायुगमें १५७७९१७८२८ सावन दिन होते हैं जिनमें सूर्यके ४३२०००० भगण, चंद्रमाके ५७७५३३३६ भगण, चन्द्रोच्चके ४८८२०३ भगण और राहुके २३२२३८ भगण होते हैं, इस लिए १८३५५४७ दिनोंमें

	भगण	राशि	अंश	कला	
सूर्य के	५०२५	३	२६	५६·७५	हुए
चंद्रमाके	६७१८२	६	२३	३६·२१	”
चंद्रोच्च के	५६७	१०	२८	३४·०२	”
राहु के	२७०	१	२६	६·८	”

सूर्य और चंद्रमाके पूरे भगणोंके छोड़ देनेपर जो शेष रह जाते हैं वही श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्रि कालमें इनके मध्यम स्थान हैं। परन्तु चन्द्रोच्च और राहुके पूरे भगणोंको छोड़ देनेसे जो शेष बचते हैं उनमें कुछ संस्कार करना पड़ता

है क्योंकि कलियुगके* आदिमें चन्द्रोच्च कर्कके आदि बिन्दु-पर और राहु तुलाके आदि बिन्दु पर थे और राहुकी गति उलटी होती है इसलिए श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्रिके समय

चन्द्रोच्चका स्थान ३रा+१०रा२८°३४'·०२=१रा२८°३४'·०२

राहुका स्थान ६रा−१रा २६°६'·८=४रा ३°५३'·२

सूर्य के मन्दोच्च की गति इतनी मन्द है कि इसका स्थान २रा १७°१७'·५२ ही मान लेना चाहिए† ।

अब सूर्य और चंद्रमा को स्पष्टाधिकारके अनुसार स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य का मन्दकेन्द्र =२रा १७°१७'·५२—३रा २९°५९'·७५

=१०रा १७°१७'·७७

=३ पाद +१रा १७°१७'·८

∴ चौथे पादका गम्य भाग=१रा १२° ४२'·२

=४२°४२'·२

सूर्यकी स्फुट मन्द परिधि

=८४०−२० × भुजज्या ४२°४२' / ३४३८

=८४०'−२०' × २३३० / ३४३८

---

* मध्यमाधिकार श्लोक ५७,५८ और पृष्ठ ७७

† स्पष्टाधिकार पृष्ठ २१६

$$=८४०' - १४'$$

$$=८२६'$$

$$\text{भुजफल} = \frac{८२६ \times २३३०}{२१६००} = ८९'\cdot१ = १^\circ २९'\cdot१$$

यही सूर्य का मन्दफल है क्योंकि इसका धनु इसीके समान होगा। यह ऋणात्मक है क्योंकि मन्दकेंद्र तुलादि है।

इस लिए मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य

$$=३^{रा} २९^\circ ५९'\cdot ७५ - १^\circ २९'\cdot१$$

$$=३^{रा} २८^\circ ३०'\cdot ६५$$

$$=११८^\circ ३०'\cdot ६५$$

$$\text{चंद्रमाका मन्दकेन्द्र} = १^{रा} २८^\circ ३४'\cdot ०२ — ९^{रा} २३^\circ ३९'\cdot २१$$

$$=४^{रा} ४^\circ ५४'\cdot ८१$$

$$=१ \text{ पाद} + ३४^\circ ५४'\cdot ८१$$

$$\therefore \text{दूसरे पादका गम्य भाग} = ५५^\circ ५'\cdot २$$

चंद्रमाकी स्फुट मन्द परिधि

$$=३२^\circ - २०' \times \frac{\text{भुजज्या } ५५^\circ ५'\cdot २}{३४३८}$$

$$=३२^\circ - २०' \times \frac{२८१८}{३४३८}$$

$$=३२^\circ - १६' = ३१^\circ ४४' = १९०४'$$

$$\therefore \text{चंद्रमा का भुजफल} = \frac{१९०४ \times २८१८}{२१६००}$$

=२४८'·४=४°८'·४

इसका धनु भी इतना ही होगा।

इसलिए चन्द्रमा का मन्दफल=४°८'·४

यह धनात्मक है क्योंकि चन्द्रमा का मन्दकेन्द्र मजादि ६ राशियों में है। इसलिए मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

=६रा२३°३६'·२+४°८'·४

=६रा२७°४७'·६=६रा२७°४८'

सूर्य और चंद्रमा के स्पष्ट स्थानों से ज्ञात होता है कि चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे नहीं है वरन् कुछ कम है इसलिए पूर्णिमान्तकाल मध्यरात्रि से कुछ पीछे होगा जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर ठीक १८०° होता है। यह जानने के लिए कि पूर्णिमान्तकाल कब होगा हमें सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जाननी चाहियें। हमें यह मालूम है कि

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९'८,"

चन्द्रमा की ” ७९०'३५",

चन्द्रोच्च की ” ६'४१",=६'·७,

और चन्द्रमा की दैनिक केन्द्र गति ७८३'५४" होती है

इसलिए सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति (देखो स्पष्टाधिकार पृ० २३३)

$$=५९'८''-\frac{८२६}{२१६००}\times\frac{१६४\times५९'८''}{२२५}$$

$$=५९'८''-१'३९''$$

$$=५७'२९''=५७'·५$$

चन्द्रमाकी दैनिक गति उपर्युक्त रीतिसे नहीं निकल सकती क्योंकि चन्द्रमाकी गति बहुत तीव्र होती है। इस लिए चन्द्रमाकी दैनिक गति जाननेके लिए पूर्णमासीके उपरान्त शुक्रवारकी मध्यरात्रिका चन्द्रमा स्पष्ट करना अच्छा है।

पूर्णमासीकी अर्धरात्रिका मध्यमचंद्र=९ रा २३°३९'·२१

चंद्रमाकी दैनिक मध्यमगति=१३°१०''५८

∴ प्रतिपदाकी मध्यम रात्रिका चन्द्रमा=१० रा ६°४९'·७९

=१० रा ६°४९'·८ =१० रा ६°५०'

" " का चन्द्रोच्च=१ रा २८°३४' + ६'·७

=१ रा २८°४०'·७

∴ प्रतिपदाकी मध्यरात्रिका चंद्र मन्दकेन्द्र

=१ रा २८°४०'·७—१० रा ६°४९'·८

=३ रा २१°५०'·९

=१ पाद + २१°५१' स्वल्पान्तरसे

∴ दूसरे पादका गम्य भाग=६८°९'

चंद्रमाकी स्फुट परिधि=३२°—२०' × $\frac{\text{भुजज्या ६८°९'}}{\text{३४३८}}$

=३२°—२०' × $\frac{\text{३१९१}}{\text{३४३८}}$

=३२°—१९'

$$=१९०१'$$

$$\therefore \text{भुजफल}=\frac{१९०१ \times ३१९१}{२१६००}=२८१'$$

इसका धनु भी इतनाही होगा।

इसलिए मन्दफल=२८१'=४°४१'

$\therefore$.प्रतिपदाकी मध्यमरात्रिका स्पष्ट चंद्र=१० रा ६°५०' + ४°४१'

=१० रा ११°३१'

और पूर्णिमाकी " " =९ रा २७°४८'

दोनोंका अन्तर = १३°४३'

इस प्रकार चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति १३°४३'=८२३'

सूर्यकी " " ५७'·५

इसलिए १ सावन दिनमें चंद्रमा सूर्यकी अपेक्षा ७६५'·५ अधिक चलता है।

पूर्णिमाकी मध्यरात्रिका चंद्रमा ९ रा २७°४७'·६

" " सूर्य ३ रा २८°३०'·७

दोनोंका अंतर =५ रा २९°१६'·९

यह अंतर ६ राशिसे ४३'·१ कम है। इसलिए जब चंद्रमा सूर्यसे इतना और आगे बढ़ेगा तब पूर्णिमान्त काल होगा। परन्तु ६० घड़ीमें चंद्रमा सूर्यसे ७६५'·५ आगे बढ़ता है। इसलिए ४३'·१ वह $\frac{४३·१ \times ६०}{७६५·५}$ घड़ीमें पूरा करेगा जो ३ घड़ी २३ पल होता है। इसलिए गुरुवारकी मध्यरात्रिसे ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमाका अंत हुआ।

अब पूर्णिमान्त कालके सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति = ५७′ · ५

∴ ३ घड़ी २३ पलकी गति=३′१४″·५=३′·२४

मध्यरात्रिकालिक सूर्य=३ रा २८°३०′·७

∴ पूर्णिमान्तकालिक सूर्य=३ रा २८°३३′·६=११८°३४′

चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति=८२३′

∴ ३ घड़ी २३ पलकी गति=४६′२४″

=४६′·४

मध्यरात्रिकालिक चन्द्रमा=६ रा २७°४७′·६

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रमा=६ रा २८°३४′=२६८°३४′

राहुकी दैनिक गति ३′११″

∴ ३ घड़ी ३ पलकी गति=११″=·२′

मध्यरात्रिकालिक राहु=४ रा ३°५३′·२

राहुकी गति उलटी होती है इसलिए इसमें से ३ घड़ी ३ पलकी गति घटानेसे पूर्णिमान्तकालिक राहु=४ रा ३°५३′=१२३°५३′

राहुसे चन्द्रमा =२६८°३४′ – १२३°५३′=१७४°४१′ आगे है।

$$\therefore \text{चंद्र शरकी ज्या} = \frac{\text{ज्या } १७४°४१' \times \text{ज्या } ४°३०' \ *}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°१९' \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$$

---

* चन्द्रमाका शर इसी प्रकार निकाला जाता है जिस प्रकार सूर्य की क्रान्ति स्पष्टाधिकारके २८ वें श्लोकके अनुसार निकाली जाती है। ४°३०′ सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार चन्द्रमाका परमशर है।

$$= \frac{३१६ \times २७०}{३४३८} = २५'$$

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर=२५'
यह शर क्रान्तिवृत्तिसे उत्तर है क्योंकि राहुसे चंद्रमा ६ राशिसे कम दूर है। (स्पष्टा० श्लोक ७,)

पूर्णिमान्तकालिक राहु =१२३°५३'
" " सूर्य =११८°३४'
दोनों का अंतर = ५°१९'

जो चन्द्रग्रहणकी लघुतम सीमा ९° से कम है । इसलिए चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। (चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ६६०)

चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक १,२ के अनुसार,

सूर्यबिम्बका स्फुट व्यास $= \frac{६५०० \times ५७'२९''}{५8'८''}$ योजन

चंद्र " " " $= \frac{४८० \times ८२३'}{७९०'३५''}$ योजन

$= \frac{४८० \times ८२३}{७९०·५८३} \times \frac{१}{१५}$ कला

$= \frac{३२ \times ८२३}{७९०.५८३}$ कला

=३३·३१ कला।

श्लोक ४, ५ के अनुसार चन्द्रकक्षामें भूछायाका योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times ८२३}{७९०·५८३} - \left(\frac{६५०० \times ५७'२९''}{५8'८''} - १६०० \right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

योजन

इसको १५ से भाग देकर सरल करने पर चंद्रकक्षा में भूछायाका कलात्मक व्यास अथवा भूभाविम्ब $=\text{१०६}\frac{\text{२}}{\text{३}}\times$

$$\frac{\text{८२३}}{\text{७९४०·५८३}}-\text{३२}\times\frac{\text{५७}'\text{२९}''}{\text{५९}'\text{८}''}+\text{७·८७७}$$

$$=\text{१११·१७}-\text{३१·११}+\text{७·८८}$$

$$=\text{८७·९४}$$

चंद्रग्रहणमें भूछाया ही छादक होती है। इसलिए छादक का व्यासार्ध $=\text{८७}'\text{·९४}\div\text{२}=\text{४३}'\text{·९७}$

चन्द्रमाका स्फुट व्यास $=\text{३३}'\text{·३१}$

$\therefore$ छाद्यका व्यासार्ध $=\text{३३}'\text{·३१}\div\text{२}=\text{१६}'\text{·६६}$

$\therefore$ मानैक्यखंड $=\text{४३}'\text{·९७}+\text{१६}'\text{·६६}=\text{६०}'\text{·६३}$

और मानान्तर खंड $\text{४३}'\text{·९७}-\text{१६·६७}=\text{२७}'\text{·३१}$

ग्रासका परिमाण $=\text{६०}'\text{·६३}-\text{२५}'$ (श्लोक १०)

$$=\text{३५·६३}$$

यह चन्द्रबिम्बके व्याससे बड़ा है। इसलिए सर्वग्रास ग्रहण लगेगा (देखो पृ० ६५६ और श्लोक ११)।

पृष्ठ ६६८ के अनुसार,

$$\text{स्थित्यर्ध}=\frac{\text{६० घड़ी}\times\sqrt{\{(\text{६०·६३}+\text{२५})(\text{६०·६३}-\text{२५})\}}}{\text{७६५·५}}$$

$$=\frac{\text{६०}\times\sqrt{\{\text{८५·६३}\times\text{३५·६३}\}}}{\text{७६५·५}}\text{ घड़ी}$$

$$=\frac{\text{६०}\times\text{५५·२३६}}{\text{७६५·५}}\text{ घड़ी}$$

$$=\text{४ घड़ी २० पल}$$

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\{(२७.३१ + २५)(२७.३१ - २५)\}}}{७६५.५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\{५२.३१ \times २.३१\}}}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times १०.९९२}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$$= ५१.७ \text{ पल} = ५२ \text{ पल}$$

यह पहले बतलाया जा चुका है कि गुरुवारकी मध्यरात्रिसे ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमा का अन्त हुआ। इस समयसे स्थित्यर्धकाल घटानेपर ग्रहणका स्पर्श काल होगा और विमर्दार्ध काल घटानेसे सम्मीलन काल आजायगा।

∴ स्पर्शकाल =३ घड़ी २३ पल—४ घड़ी २० पल

= –५७ पल

अर्थात् मध्यरात्रिसे ५७ पल पहले ग्रहणका स्पर्श होगा।

सम्मीलन काल =३ घड़ी २३ पल—५२ पल

=२ घड़ी ३१ पल

अर्थात् मध्यरात्रिके २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ होगा अथवा पूरा चन्द्रबिम्ब छायामें प्रवेश हो जायगा।

इसी प्रकार उन्मीलनकाल =३ घड़ी २३ पल+५२ पल

=४ घड़ी १५ पल,

मध्यरात्रिके उपरान्त

और मोक्षकाल =३ घड़ी २३ पल+४ घड़ी २० पल

=७ घड़ी ४३ पल मध्यरात्रिके उपरान्त

यह समय उज्जैन का मध्यकाल है अर्थात् उज्जैनमें मध्यम

मध्यरात्रिसे ५७ पल पहले ग्रहणका स्पर्श, २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सम्मीलन, ४ घड़ी १५ पल उपरान्त उन्मीलन और ७ घड़ी ४३ पल उपरान्त मोक्ष होंगे। किसी अन्य स्थान में किस समय स्पर्श सम्मीलन इत्यादि होगा। यह जाननेके लिए उस स्थानका देशान्तर काल मध्यमाधिकार श्लोक ६३, ६४के आधार पर जोड़ना चाहिए यदि स्थान उज्जैनसे पूर्व हो और घटाना चाहिए यदि स्थान उज्जैनसे पच्छिम हो। ऐसा करनेसे उस स्थानके मध्यम कालके अनुसार स्पर्शकाल, सम्मीलन काल इत्यादि ज्ञात होंगे। यदि यह जानना हो कि उस स्थानमें सूर्योदयसे कितनी घड़ी पल उपरान्त स्पर्श, सम्मीलन इत्यादि होगा तो मध्यमकालमें काल-समीकरणका संस्कार करके स्पष्ट-काल निकालना होगा और उस दिनकी सूर्यकी क्रान्ति निकाल-कर चरकालका भी संस्कार करना होगा।

इस दिनका काल-समीकरण—

सूर्यका मध्यम भोगांश=प्रायः ४ राशि=१२०°

अयनांश= लगभग २२°४०′

∴ सूर्यका सायन भोगांश= १४२°४०′

इसलिए त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५०८ के सूत्र (८) अथवा ५१२ के सूत्र (क) के अनुसार कालसमीकरण सहज ही निकाला जा सकता है। सूत्र (क) के अनुसार,

कालसमीकरण = ११५·१६५ ज्या (१४२°४०′+७८°२४′)

− १४७·६६५ ज्या (२ × १४२°४०′)

= ११५·२ ज्या (१८०°+४१°४′)

− १४८ ज्या २८५°२०′

$= -$ ११५·२ ज्या ४१°५′

$-$१४८ ज्या (३६०° $-$ ७४°४०′)

$= -$ ११५·२ × ·६५७ + १४८ ज्या ७४°४०′

$= -$११५·२ × ·६५७ + १४८ × ·९६४४

$= -$ ७५·७ + १४२·७ = ६७ असु

$= +$ ११ पल

धनका चिह्न यह प्रकट करता है कि इस दिनके किसी स्पष्टकालमें ११ पल जोड़नेसे जो आता है वही उस समयका मध्यमकाल है। इसलिए इस दिन जब धूप घड़ीके अनुसार रात के १२ बजेंगे तब मध्यम घड़ी में १२ बजकर ११ पल हुआ रहेगा।

प्रातःकाल की सूर्य की क्रान्ति—

मध्यरात्रिके सूर्यका स्पष्ट भोगांश ३ रा२८°३०′·७ अथवा ३ रा २८°३१′ है। परन्तु मध्यम प्रातःकाल ६ बजे माना जाता है इस लिए मध्यम प्रातःकाल के ४५ घड़ी उपरान्त मध्यरात्रि होती है। सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′·५ है। इसलिए ४५ घड़ी में इस की गति ४३′ के लगभग होती है। इस प्रकार उदयकाल में सूर्य का भोगांश ३ रा २८°३१′ $-$ ४३′ = ३ रा २७°४८′, इसमें अयनांश २२°४०′ जोड़ा तो आया ४ रा २०°२८′। यही सूर्य का उदयकालिक सायन भोगांश है। इस लिए पृष्ठ ४५१ के अनुसार सूर्यकी उदयकालिक क्रान्तिज्या

= ज्या ४ रा २०°२८′ × ·३९७९

=ज्या ३९°३२′ × ·३९७९
=·६३६६ × ·३९७९
=·२५२१

∴ सूर्यकी उदयकालिक क्रान्ति=१४°३६′

काशीका अक्षांश २५°२०′ है। इसलिए इस दिन काशीमें उदयकालिक सूर्यकी चरज्या=स्पर्श १४°३६′ × स्पर्श २५°२०′
=·२६०५ × ·४७३४
=·१२३३

∴ चरांश=७°५′
∴ चरकाल=७१ पल

यह धनात्मक है क्योंकि क्रान्ति उत्तर है।

उज्जैनसे काशीका पूर्व देशान्तर १ घड़ी १२ पल ५० वि० (देखो पृ० १०४) अथवा १ घड़ी १३ पल है।

उज्जैनके स्पर्शकालमें काशीका देशान्तर १ घड़ी १३ पल जोड़नेपर काशीकी मध्यरात्रिसे −५७ पल+१ घड़ी १३ पल-पर अर्थात् १६ पलपर काशीमें ग्रहणका स्पर्श देख पड़ेगा।

परन्तु मध्यम मध्यरात्रिसे ११ पल ऊपर स्पष्ट मध्यरात्रि होती है। इसलिए स्पष्ट मध्यरात्रिसे १६ पल − ११ पल=५ पल उपरान्त काशीमें ग्रहणका स्पर्श देख पड़ेगा।

इस दिनका चरकाल+७१ पल=+१ घड़ी ११ पल है। इसलिए सूर्योदयसे १ घड़ी ११ पलपर धूप घड़ीमें ६ बजेगा।

इसलिए सूर्योदयसे प्रातःकालके ६ बजे तक
=१ घड़ी ११ पल

प्रातःकालके ६ बजेसे मध्यरात्रि तक	=४५ घड़ी	० पल
मध्यरात्रिसे स्पर्शकाल तक	=० घड़ी	५ पल
योग	४६	१६

इस प्रकार यह सिद्ध होगया कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार काशीमें चन्द्रग्रहणका स्पर्श सूर्योदयसे ४६ घड़ी १६ पलके उपरान्त होगा।

काशीमें सर्वग्रास ग्रहणका आरम्भकाल इस प्रकार जाना जाता है:—

		घड़ी	पल
उज्जैनकी मध्यम मध्यरात्रिसे सम्मीलन-काल तकका समय		२	३१
काल-समीकरण घटाया*			—११
उज्जैनकी स्पष्ट मध्यरात्रिसे सम्मीलनकाल तकका समय		२	२०
काशीका पूर्व देशान्तर	=	+१	१३
६ बजे प्रातःकालसे मध्यरात्रि तक	=	४५	०
चरकाल	+	१	११
योग		४९	४४

* काल समीकरण यद्यपि धनात्मक है तथापि यहाँ घटाया गया है इसका कारण यह है कि जब स्पष्टकाल ज्ञात रहता है तब उसमें धनात्मक काल-समीकरण जोड़नेसे जो आता है वह मध्यमकाल होता है परन्तु जब मध्यमकाल ज्ञात हो और स्पष्टकाल जानना होता है तब धनात्मक काल-समीकरण मध्यमकालसे घटाना पड़ता है क्योंकि स्पष्टकाल मध्यमकालसे कम होता है।

अर्थात् काशीमें सूर्योदयसे ४८ घड़ी ४४ पल पर सर्वग्रास ग्रहणका आरम्भ होगा और पूरा चन्द्रबिम्ब अन्धकारमय हो जायगा।

स्पर्शकालमें स्थित्यर्धकालका दूना जोड़ देनेसे मोक्षकाल और सम्मीलनकालमें विमर्दार्धका दूना जोड़ देनेसे उन्मीलन-काल ज्ञात हो जायंगे।

स्थित्यर्ध=४ घड़ी २० पल
∴ ग्रहणकी स्थिति = ८ घड़ी ४० पल
स्पर्शकाल ४६ " १६ " सूर्योदय से
∴ मोक्षकाल ५४ घड़ी ५६ " "
विमर्दार्ध = ५० पल
∴ विमर्द अथवा सर्वग्रास ग्रहणकी स्थिति=१ घड़ी ४४ पल
सम्मीलनकाल सूर्योदयसे ४८ " ४४ " पर
∴ उन्मीलनकाल सूर्योदयसे ५१ " २८ " पर

सबका सार

उपर्युक्त गणनाके अनुसार बापूदेव शास्त्रीके पत्राके अनु०

	घ०	पल	घ०	पल
स्पर्श	४६	१६	४६	८
सम्मीलन	४९	४४	४८	३६
मध्य	५०	३६	५०	४०
उन्मीलन	५१	२८	५२	४३
मोक्ष	५४	५६	५५	११

म० म० बापूदेव शास्त्री के पत्रे में ग्रहणकाल के सम्बन्धमें जो समय दिये हैं वे नाविक पञ्चाङ्ग (Nautical almanac) से

बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसलिए ये समय बिल्कुल शुद्ध हैं। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार निकाले हुए समय इनसे बहुत भिन्न हैं। इसलिए अब यह देखना है कि इस भिन्नताका कारण क्या है।

सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ग्रहणके जो मूलाङ्क आये हैं उनकी तुलना ज्योतिर्गणितसे निकाले हुए मूलाङ्कोंसे करने पर देख पड़ता है कि सूर्य और चंद्रमाके भोगांश दोनों रीतियोंके अनुसार प्रायः एकसे हैं परन्तु राहुके भोगांशोंमें बड़ा अन्तर है जिसके कारण चंद्रमाके शरमें महान् अन्तर पड़ जाता है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि यदि राहुका यथाथ भोगांश नवीन रीतिसे जानकर चन्द्रमाका शर जाना जाय और इसी शरसे चन्द्र-ग्रहणकी गणनाकी जाय तो क्या आता है।

ज्योतिर्गणितके अनुसार राहुका भोगांश १२०°४'·५ होता है। इस ग्रन्थके अनुसार इस वर्षका अयनांश २२°४७' होता है परन्तु सूर्यसिद्धान्तके अनुसार १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति जिस समय हुई थी उस समय अयनांश २२°३७'-३८"·१ था (देखो पृ०३७१)। दो वर्ष में अयनांश की वृद्धि

=५८"·६६३३४४ × २ + ·०००१११ × ३²

=११७"·३२६७ + ·००१

=११७"·३२७७

=१' ५७"·३३

१६८१ वि० की मेष संक्रान्ति से १२४ दिन बाद श्रावणकी पूर्णिमा हुई इसलिए १२४ दिनमें अयनांशकी वृद्धि १६"·६३ होगी। इसलिए श्रावणी पूर्णिमाके दिन अयनांश = २२°३७'-३८"·१ + १' ५७"·३ + १६"·६

= २२° ३९' ५५"

= २२°४०' स्वल्पान्तर से

इससे प्रकट है कि ज्योतिर्गणितका मेषविन्दु सूर्यसिद्धान्तके मेषबिन्दुसे इस वर्ष ७' आगे था। इसलिए जब ज्योतिर्गणितके अनुसार राहुका भोगांश १२०°४·'५ है तब सूर्यसिद्धानके मेष-बिन्दुसे स्पष्ट राहु का भोगांश १२०°११'·५ होगा राहु के इसी। भोगांशसे चन्द्रमाका शर जानकर ग्रहणकाल जाननेसे यह पता चलेगा कि केवल राहु की गति में संशोधन कर देने से सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाला हुआ ग्रहणकाल यथार्थता से कितना भिन्न है।

पूर्णिमान्तकाल का स्पष्ट चंद्रमा सूर्यसिद्धान्तानुसार २९८°३४'

,, राहु दृग्गणितानुसार १२०°११'·५

,, राहुसे चंद्रमाका अन्तर १७८°२२'.५

दृग्गणित अथवा ज्योतिर्गणित के अनुसार चन्द्रमा का परमशर ५°९' होता है न कि ४°३०' जैसा कि सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है। इसलिए चन्द्रमा की पूर्णिमान्तकालिक

$$\text{शरज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९' \times \text{ज्या} १७८°२२'·५}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या} ५°९' \times \text{ज्या } १°३७'.५}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times ९७·५}{३४३८}$$

$$= ८'·७६$$

इसलिए पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर भी ८'·७६ ही हुआ चन्द्रशर के इसी मान को मानैक्यखंड और मानान्तरखंड के

साथ रखकर गणना करनेसे पहलेकी तरह

ग्रास का परिमाण = ६०''·६३ − ८''·७६ = ५१''·८७

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{\text{६० घड़ी} \times \sqrt{\left\{\left(\text{६०·६३} + \text{८·७६}\right)\left(\text{६०·६३} - \text{८·७६}\right)\right\}}}{\text{७६५·५}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\left\{\text{६९·३९} \times \text{५१·८७}\right\}}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \text{५९·९९}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

= ४ घड़ी ४२ पल

इसलिए ग्रहण स्थिति काल = ९ घड़ी २४ पल

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{\text{६० घड़ी} \times \sqrt{\left\{\left(\text{२७·३१} + \text{८·७६}\right)\left(\text{२७·३१} - \text{८·७६}\right)\right\}}}{\text{७६५·५}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\left\{\text{३६·०७} \times \text{१८·५५}\right\}}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \text{२५·८६७}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

= २ घड़ी १·६५ पल

इसलिए विमर्द अथवा सर्वग्रास स्थिति काल = ४ घड़ी ३ पलके लगभग

	घ.	पल	
पूर्णिमान्त काल =	३	२३	मध्यरात्रि के उपरान्त
स्थित्यर्ध घटाया −	४	४२	
स्पर्श काल	−१	१९	

ऋण चिह्न प्रकट करता है कि १ घड़ी १९ पल मध्यरात्रिसे पहलेका समय है।

पहले लिखे हुए सब संस्कार संक्षेपमें यों लिखे जाते हैं:—

	घड़ी	पल	
स्पर्श काल	−१	१९	
काशीका देशान्तर	+१	१३	
काल समीकरण	−०	११	
चरकाल	+१	११	
मध्यम प्रातःकालसे मध्यम मध्यरात्रितक	+४५	०	
काशीके सूर्योदयसे स्पर्शकालका आरंभ	४५	५४	पर होगा।
पूर्णिमान्त काल	३	२३	मध्यरात्रिके उपरान्त
विमर्दार्ध	−२	१·७	
सम्मीलन काल	१	२१·३	मध्यरात्रिके उपरान्त
काशीका देशान्तर	+१	१३	
काल समीकरण	−०	११	
चरकाल	+१	११	
प्रातःकालसे मध्य रात्रितक	४५	०	

काशीके सूर्योदयके सर्वग्रासका आरंभ	४८ ३४·१	पर होगा।
विमर्द काल	४ ३·४	

∴ काशीके सूर्योदयसे उन्मीलन ५२ ३७·७ पर होगा

इसी प्रकार स्पर्शकालमें ग्रहण स्थितिकाल जोड़नेसे काशीके सूर्योदयसे ५५ घड़ी १८ पलपर ग्रहणका मोक्ष होगा।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्तके राहु-के भोगांशकी जगह राहुका यथार्थ भोगांश प्रयोग करनेसे सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ और अंत यथार्थताके बहुत निकट होजाता है। इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त-में राहुका भगण काल बहुत अशुद्ध है। इसकी अपेक्षा ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यके अनुसार राहुकी गणना बहुत शुद्ध है और यथार्थताके बहुत निकट है।

यह पहले बतलाया गया है कि ग्रहणकी गणना करनेके लिए सूर्य और चन्द्रमाके लंबन, बिम्ब, दूरी, इत्यादिकी जानकारी जितनी सूक्ष्म हो ग्रहण-काल उतना ही शुद्ध आते हैं। यह भी दिखलाया गया है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार सूर्य और चन्द्रमाकी जो गति बिम्बमान इत्यादि निकलते हैं वह स्थूल हैं। यदि इन सबका विचार दृग्गणितके अनुसार किया जाय तो ग्रहण के प्रत्यक्षकाल और गणितसिद्ध कालमें कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। इसलिये कमसे कम ग्रहणकाल-का शुद्ध समय जाननेके लिए अपने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें ऐसे संशोधनोंका समावेश करना चाहिए जो दृग्गणितसे सिद्ध होते हैं। ऐसे संशोधनोंकी पूरी जानकारी करानेके लिये यह आवश्यक है कि हमारे यहां एक वेधशाला ऐसी हो जिससे

अर्वाचीन ज्योतिषका पठन पाठन सुगमतापूर्वक हो सके। मेरी समझमें यह अधर्म है कि हम अपने पंचांगोंमें ग्रहण, शृङ्गोन्नति, ग्रहोदय, ग्रहास्त, इत्यादिकी गणना करनेके लिए पाश्चात्य देशोंमें बने हुए नाविक पंचांगोंके आश्रित हों परन्तु इनके सिद्धान्तोंके पठन पाठनका स्वतन्त्र प्रबन्ध न करें।

अब संक्षेपमें यह दिखलाया जायगा कि ज्योतिर्गणितके अनुसार इस ग्रहणके मूलाङ्क क्या हैं:—

पूर्णिमान्तकालिक मूलाङ्क :—

स्पष्ट रवि ११८°५६'·२३

स्पष्ट चन्द्र २९८°५६'·२३

रवि दिन गति ५७'·६

चन्द्रदिन गति १४°८'·१

राहु १२०°४'·५

रवि लम्बन ०'.१५

चंद्र परमलम्बन ५९'·३

चन्द्र बिम्ब ३२'·४

भूभा बिम्ब ८७'·०

मानैक्य खंड ५९'·६

मानान्तर खंड २७'·२

अयनांश २२°४७'

चन्द्र शर उत्तर ६'·९

प्रातःकालकी सूर्य क्रान्ति १४°११'·१

यह पहले बतलाया गया है कि अयनांशोंमें भिन्नता क्यों है। इस भिन्नताके कारण रवि राहु और चन्द्रमाके भोगांशोंमें

भी ७' का अन्तर हो जायगा। इन मूलाङ्कोंसे यदि ग्रहणकी गणना की जाय तो नाविक पञ्चांगमें दिये हुए समय से २ या ३ पलका अन्तर रह जाता है। इसका कारण यह है कि ऊपर सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियाँ ही ली गयी हैं जबकि सूक्ष्म गणनाके लिये इनका प्रत्येक घड़ीकी गति स्पर्श, सम्मीलन, उन्मीलन कालोंकी, जानकर काम लेना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमाकेशरकी भी गणना करनी चाहिए जैसा कि चित्र ६८ के सम्बन्धमें बतलाया गया है। ऐसा करनेसे गणनाका विस्तार बहुत हो जायगा इसलिए वह नहीं दिखलाया जाता।

स्पर्शकाल और मोक्षकालके स्फुट वलनोंकी गणना—

स्फुट वलनके लिए आक्षवलन और आयनवलनका जानना आवश्यक है। आक्षवलनके लिए चन्द्रमाकी तात्कालिक क्रान्ति और नतकाल जानना चाहिए।

क्रान्तिकी गणना—

ऊपर बतलाया गया है कि स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल है जिसमें चन्द्रमा १°४'२८" अथवा १°४'·५ चलता है क्योंकि चन्द्रमाकी दैनिक गति ८२३' है।

पूर्णिमान्त कालिक चंद्र भोगांश २६८°३४'

स्थित्यर्धमें चंद्रमाकी गति १°४'·५

∴ स्पर्शकालिक चंद्र भोगांश २६७°२६'·५

और मोक्षकालिक चंद्र भोगांश २६६°३८'·५

राहुका भोगांश दोनों कालोंमें १२०°११'·५

∴ स्पर्शकालमें राहुसे चंद्रमाका अन्तर १७७°१८'

मोक्षकालमें राहुसे चन्द्रमाका अन्तर १७६°२७'

$$\text{स्पर्शकालिक चंद्र शरज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°६' \text{ ज्या } १७७°१८'}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \text{ ज्या } २^\circ ४२'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०६ \times १६२}{३४}$$

$$= १४'\cdot ६$$

∴ स्पर्शकालिक चंद्रशर=१४'·६

$$\text{मोक्षकालिक चंद्रशरज्या} = \frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \text{ ज्या } १७६^\circ २७'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०६ \times २२}{३४३८} = २'$$

∴ मोक्षकालिक चंद्रशर=२'

स्पर्शकालिक चंद्रभोगांश=२९७°२६'·५

अयनांश = २२°४०'

स्पर्शकालिक चंद्र सायन भोगांश = ३२०°६'·५

इसी प्रकार मोक्षकालिक चंद्र सायन भोगांश=३२२°१८'·५

स्पर्शकालिक चंद्र मध्यम क्रान्तिज्या=ज्या २३°२७' ज्या ३२०°६'·५

$$= \cdot ३६७६ \times \cdot ६४०५$$

$$= \cdot २५४६$$

∴ मध्यम क्रान्ति=१४°४६' दक्षिण

चंद्रशर=०°१४'·६ उत्तर

∴ स्पर्शकालके चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति=१४°३१'·४ दक्षिण

यह स्पष्टाधिकार श्लोक ५८ के अनुसार है। यदि शुद्ध गणना करनी हो तो पृ० २६५ में बतलायी गयी रीतिसे काम लेना चाहिए जो विस्तार भयसे यहां छोड़ दी जाती है।

इसी प्रकार मोक्षकालिक चंद्र मध्यम क्रान्ति=१४°५' दक्षिण

शर = २' उत्तर

∴ ,, चन्द्र स्पष्ट क्रान्ति= १४°२' दक्षिण

नतकालकी गणना—

चन्द्रमाका नतकाल जाननेके लिए पहले सूर्यका नतकाल जानना पड़ता है। मध्याह्न कालमें सूर्य याम्योत्तरवृत्तपर रहता है और मध्यरात्रि कालमें भी वह क्षितिजके नीचे याम्योत्तर वृत्तपर रहता है इसलिए पृथ्वीकी छायाका केन्द्र मध्यरात्रिकालमें ठीक याम्योत्तर वृत्तपर रहता है क्योंकि पृथ्वीकी छायाका केन्द्र सूर्यसे ठीक १८०° पर रहता है। इसलिए मध्यरात्रि कालमें पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नतकाल शून्य होता है। यदि यह जान लिया जाय कि स्पर्शकाल मध्यरात्रिसे कितना पहले या पीछे है तो यह सहजही जाना जा सकता है कि स्पर्शकालमें पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नतकाल कितना पूर्व या पश्चिम है। चन्द्रग्रहणके समय चन्द्रमा पृथ्वीकी छायाके बहुत पास रहता है और यह मालूम ही रहता है कि चंद्रमा पृथ्वीकी छायासे कितने अंतरपर है इस लिए चंद्रमाका नतकाल सहज ही जाना जा सकता है।

		घड़ी	पल
उदयकालिक सूर्यका चरकाल	=	१	११
मध्यम प्रातःकालसे मध्यरात्रितक	=	४५	०
सूर्योदयसे मध्यरात्रितक	=	४६	११
सूर्योदयसे स्पर्श कालका समय	=	४५	५४
मध्य रात्रिसे पहले स्पर्शकालका समय	=	०	१७

इसलिए जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके अनुसार स्पर्शकालके समय पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नतकाल १७ पल=१०२ असु है अर्थात् स्पर्शके आरंभके उपरान्त १७ पलपर पृथ्वीकी छायाका केन्द्र ठीक याम्योत्तर वृत्तपर आ जावेगा।

		घड़ी	पल
सूर्योदयसे मोक्षका समय	=	५५	१८
" मध्यरात्रिका समय	=	४६	११
मध्यारात्रिके उपरान्त मोक्षका समय	=	९	७

इसलिए मोक्षकालिक पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नत-काल ९ घड़ी ७ पल या ५४७ पल या ३२८२ असु है।

अब यह देखना है कि स्पर्शकालके समय भूभाकेन्द्र का भोगांश क्या है:—

पूर्णिमान्त कालिक सूर्यका भोगांश	=	११८°३४′
स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पलमें सूर्यकी गति	=	४′·५
∴ स्पर्श कालिक सूर्यका भोगांश	=	११८°२९′·५
सूर्यसे भूभाकेन्द्रका अंतर	=	१८०°०
∴ स्पर्श कालिक भूमाकेन्द्र का भोगांश	=	२९८°२९′·५
चंद्रमाका भोगांश	=	२९७°२९′·५
∴ स्पर्श के समय भूभाकेन्द्रसे चंद्रमाका अंतर	=	१°

इसको विषुवकालमें बदलनेके लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक ५९ से काम लेना चाहिए। चंद्रमा सायन कुम्भ राशि-में है जिसके लंकाके उदयासु १७९४ * हैं (देखो पृष्ठ ४६२) इसलिये १° के उदयासु १७९४ + ३०=५९·८=६०

स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्रका पूर्व नतकाल	=	१०२ असु
भूभाकेन्द्रसे चन्द्रमाका अंतर पश्चिमकी ओर	=	६० असु
स्पर्शकालिक चंद्रमाका नतकाल	=	४२ असु
	=	४२′
पूर्णिमान्त कालिक सूर्य का भोगांश	=	११८°३४′

---

* नतकाल जाननेके लिये लंकाके उदयासुओंसे काम लेना चाहिये क्योंकि मध्यलग्नका विचार लंकाके उदयासुओंसे ही किया जाता है, देखो पृष्ठ ४८३-४८४

स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पलमें सूर्यकी गति = ४'·५

∴ मोक्षकालिक सूर्यका भोगांश = ११८°३८'·५

सूर्यसे भूभाकेन्द्र का अंतर = १८०°

∴ मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश = २९८°३८'·५

" चंद्रमाका भोगांश = २९९°३८'·५

" भूभाकेन्द्रसे चंद्रमाका अंतर पूर्वकी ओर } १°

इसके उदयासु भी पूर्ववत् ६० असु होंगे।

मोक्ष कालिक भूभाकेन्द्र का पच्छिम नतकाल = ३२८२ असु

भूभाकेन्द्रसे चंद्रमाका अंतर पूर्वकी ओर = ६० असु

∴ मोक्षकालिक चंद्रमाका नतकाल = ३२२२ असु

= ३२२२'

= ५३°४२'

चंद्रमाकी स्पर्शकालीन चरज्या = स्परे २५°२०' × स्परे १४°३१'·४

= ·४७३४ × ·२५९०

= ·१२२६

∴ स्पर्शकालीन चरांश = ७°२'

पृष्ठ ४३१ के समीकरण (ग) के अनुसार,

नतांश कोटिज्या=(कोज्या ५२'−ज्या ७°२') कोज्या २५°२०' कोज्या १४°३१'·४

= (·९९९९−·१२२६) × ·९०३८ × ·९८०६

= ·८७७३ × ·९०३८ × ·९६८

= ·७६७५

∴ स्पर्शकालीन नतांश=३९°५३'

पृष्ठ ४०७ के अनुसार,

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४^\circ ३१.'४}{\text{ज्या } ३९^\circ ५३' \times \text{कोज्या } २५^\circ २०'}$$

$$+ \text{कोस्परे } ३९^\circ ५३' \times \text{स्परे } २५^\circ २०'$$

$$= \frac{\cdot २५०८}{\cdot ६४१२ \times \cdot ९०३८} + १\cdot १९६७ \times \cdot ४७३४$$

$$= \cdot ४३२८ + \cdot ५६६५$$

$$= \cdot ९९९३$$

$\therefore$ अग्रा = ८७°५४'

$\therefore$ पूर्वविन्दुसे चंद्रमा का दिगंश = ८७°५४' दक्षिण

और उत्तर विन्दुसे " = ९०° + ८७°५४'

= १७७°५४' दक्षिण

$\therefore$ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

= कोज्या ८७°५४' × स्परे ३९°५३'

= ·०३६६ × ·८३५६

= ·०३०६

समप्रोतवृत्त का नतांश = १°४५'

$$\text{ज्या(आक्षवलन} = \frac{\text{ज्या } २५^\circ २०' \text{ ज्या } १^\circ ४५'}{\text{कोज्या } १४^\circ ३१'}$$

$$= \frac{\cdot ०१३१}{\cdot ९६८} = \cdot ०१३५$$

$\therefore$ आक्षवलन = ०°४६' उत्तर

स्पर्शकालीन चंद्रमाका भोगांश	२९७°२९'·५
अयनांश	२२°४०·५
स्पर्शकालीन चन्द्रमाका सायन भोगांश	३२०°९·५

इसमें ९०° जोड़नेसे चंद्रमाका सायन भोगांश ५०°९'·५

होता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी। इसलिए आयनवलन भी उत्तर होगा।

∴ पृष्ठ ६८४ के सूत्र (२) के अनुसार

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३^\circ २७' \times \text{कोज्या } ३२०^\circ ६'\cdot५}{\text{कोज्या } १४^\circ ३१'\cdot५}$$

$$= \frac{\cdot३९७९ \times \cdot७६७९}{\text{कोज्या } १४^\circ ३१'\cdot५}$$

$$= \cdot३१५७$$

∴ आयनवलन $=१८^\circ २४'$ उत्तर

∴ स्पर्शकालीन स्फुटवलन $=१८^\circ २४' + ०^\circ ४६'$

$=१९^\circ १०'$ उत्तर

चंद्रमाकी मोक्षकालीन चरज्या $=$ स्परे $२५^\circ २०'$ स्परे $१४^\circ २'$

$= \cdot४७३४ \times \cdot२४९९$

$= \cdot११८३$

∴ मोक्षकालीन चरांश $=६^\circ ४८'$

∴ मोक्षकालीन नतांश कोटिज्या

$=$(कोज्या $५३^\circ ४२'$ $-$ ज्या $६^\circ ४८'$) कोज्या $२५^\circ २०'$ कोज्या $१४^\circ २'$

$=(\cdot५९२० - \cdot११८३) \times \cdot९०३८ \times \cdot९७०२$

$= \cdot४७३७ \times \cdot९०३८ \times \cdot९७०२$

$= \cdot४१५४$

∴ मोक्षकालीन नतांश $=६५^\circ २७'$

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४^\circ २'}{\text{ज्या } ६५^\circ २७' \text{ कोज्या} २५^\circ २०'} + \text{कोस्परे } ६५^\circ २७'$$

$\times$ स्परे $२५^\circ २०'$

$$= \frac{\cdot २४२५}{\cdot ९०९६ \times \cdot ९०३८} + \cdot ४५६८ \times \cdot ४७३४$$

$= \cdot २९५० + \cdot २१६३$

$= \cdot ५११३$

∴ अग्रा $= ३०^\circ ४५'$

∴ पच्छिम विन्दुसे चंद्रमाका मोक्षकालीन दिगंश $= ३०^\circ ४५'$ दक्षिण

∴ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

$=$ कोज्या $३०^\circ ४५'$ स्परे $६५^\circ २७'$

$= .८५९५ \times २ \cdot १८९३$

$= १ \cdot ८८१७$

∴ समप्रोतवृत्तका नतांश $= ६२^\circ १'$

$$\therefore \text{ज्या (आक्षवलन)} = \frac{\text{ज्या } २५^\circ २०' \text{ ज्या } ६२^\circ १'}{\text{कोज्या } १४^\circ २'}$$

$$= \frac{\cdot ४२७९ \times \cdot ८८३०}{.९७०२}$$

$$= \frac{\cdot ३७७८}{\cdot ९७०२} = .३८९४$$

∴ आक्षवलन $= २२^\circ ५५'$ दक्षिण

मोक्षकालीन चंद्रमाका भोगांश $= २९९^\circ ३८' \cdot ५$

अयनांश $= \quad २२^\circ ४०'$

चंद्रमाका सायन भोगांश $= ३२२^\circ १८' \cdot ५$

इसमें ९०° जोड़नेसे सायन भोगांश $५२^\circ १८' \cdot ५$ होगा जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है ।

इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३^\circ२७' \text{ कोज्या } ३२२^\circ१८'\cdot५}{\text{कोज्या } १४^\circ२'}$$

$$= \frac{\cdot३९७९ \times \text{कोज्या } ३७^\circ४१'\cdot५}{\cdot९७०२}$$

$$= \frac{\cdot३९७९ \times \cdot७९१३}{\cdot९७०२}$$

$$= \frac{\cdot३१४९}{\cdot९७०२}$$

$$= \cdot३२४६$$

$\therefore$ आयनवलन $= १८^\circ५६'$ उत्तर

$\therefore$ स्फुटवलन $= -२२^\circ५५' + १८^\circ५६'$

$= ३^\circ५९'$ दक्षिण

इसी प्रकार सम्मीलन, मध्य और उन्मीलन कालोंके स्फुटवलन जाने जा सकते हैं।

स्फुटवलनों और ग्रह बिम्बोंके अंगुलात्मक मान जाननेका जो नियम २६वें श्लोकमें बतलाया गया है उसकी आवश्यकता परिलेखाधिकारमें पड़ेगी इसलिए वहीं इसका उदाहरण भी दिया जायगा।

इस प्रकार चन्द्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अधिकारका विज्ञानभाष्य समाप्त हुआ।

सूर्यग्रहणाधिकार

नामक पांचवां अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

[श्लोक १—किस समय सूर्यके लंबन और नति शून्य होते हैं। श्लोक २-८-लंबन जाननेके नियम। श्लोक ९-लंबन का संस्कार देकर असकृत्कर्मसे अमावास्यान्त काल निश्चय करना। श्लोक १०-११-नति जानने के नियम। श्लोक १२-नति और चन्द्रमाके शरके योग या अन्तर-से नति-संस्कृत-शर जाना जाता है। श्लोक १३-नति-संस्कृत-शर से स्थिति, विमर्द इत्यादि जानना चाहिए। श्लोक १४-१७-स्पर्श और मोक्ष-कालके लंबनको जानकर असकृत्कर्मसे फिर स्पर्श और मोक्षकालकी गणना करनी चाहिए।]

लंबन और नतिका अभाव कब होता है—

मध्यलग्न समे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।
अक्षोदङ्मध्यभक्रान्तिसाम्ये नावनतेरपि ॥१॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य त्रिभोन लग्नपर होता है तब उसमें भोगांश-लंबनका अभाव होता है। जब किसी स्थान-का उत्तर अक्षांश और त्रिभोनलग्नकी उत्तर क्रान्ति समान होते हैं अर्थात् जब सूर्य ख-स्वस्तिकपर रहता है तब उसमें नति अर्थात् शर-लंबनका अभाव होता है।

विज्ञानभाष्य—इस श्लोकके मध्यलग्नका अनुवाद त्रिभोन लग्न किया गया है यद्यपि पृष्ठ ४८३-४८४ में बतलाया गया है कि मध्यलग्न वित्रिभलग्न अथवा त्रिभोनलग्न से भिन्न होता है। परन्तु यहाँ आचार्यने त्रिभोनलग्न को मध्य

लग्न इसलिए लिख दिया कि यह उदय और अस्त लग्नोंके मध्यमें होता है, यद्यपि एक ही शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें संदिग्ध होता है। यदि मध्यलग्नका वह अर्थ लिया जाय जो त्रिप्रश्नाधिकारके श्लोक ४८ में माना गया है तो भाव अशुद्ध ठहरता है इसलिये यहाँ मध्य-लग्नका अर्थ त्रिभोनलग्न ही है। यदि सूर्य या कोई ग्रह त्रिभोन लग्न-पर हो तो भोगांश-लंबन शून्य होता है। इसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकारमें विस्तारपूर्वक बतलायी गयी है (देखो पृ० ५६१)। शर-लंबनके सम्बन्धमें भी वहीं बतलाया जा चुका है।

देशकालविशेषेण यथावनतिसम्भवः ।
लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ॥२॥

अनुवाद—(२) पहले श्लोकमें बतलायी गई स्थितिसे भिन्न दशामें देशकालानुसार जैसी नति होती है और जब सूर्य वित्रिभ लग्न से पूर्व या पश्चिम होता है तब उसमें जैसा भोगांश-लंबन होता है उसकी चर्चा यहाँ की जाती है।

लग्नं पर्वान्तनाडीनां कुर्यात्स्वैरुदयासुभिः ।
तज्ज्यान्त्यापक्रमज्याघ्नी लम्बज्याप्तोदयाभिधा ॥३॥

तदा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्यसंज्ञं यथोदितम् ।
तत्क्रान्त्यक्षांश संयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥४॥

शेषं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्या साभिधीयते ।
मध्योदयज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलं ॥५॥

मध्यज्या वर्गं विशिलष्टं दृक्क्षेपः शेषतः पदम् ।

तत् त्रिज्यावर्ग विश्लेषान्मूलं शंकुः स दृग्गतिः ॥६॥

अनुवाद—(३) पर्वान्तकाल अर्थात् अमावस्याके अंतकालका लग्न इष्ट स्थानके (राशि के) उदयासुओं से जान कर उसकी ज्याको परमक्रान्तिज्यासे गुणा करके गुणनफलको इष्ट स्थानकी लम्बज्या या अक्षांश-कोटिज्यासे भाग देनेपर जो लब्धि आती है उसे उदय या उदयज्या कहते हैं। (४) पर्वान्त काल में लङ्काके उदयासुओंसे पहले कहे हुएके अनुसार मध्यलग्न अथवा दशम लग्न जानकर उसकी क्रान्तिको इष्ट स्थानके अक्षांशमें जोड़ दे यदि दोनोंकी दिशायें एक ही हों। यदि दिशाएं भिन्न हों तो क्रान्ति और अक्षांशका अन्तर निकाले। (५) जोड़ने या घटानेसे जो कुछ आवे वही मध्य लग्नका नतांश है। इसीकी ज्याको मध्यज्या कहते हैं। मध्यज्या को उदयज्या से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे और लब्धि का वर्ग करे (६) और वर्गफलको मध्यज्याके वर्गसे घटा दे और शेषका वर्गमूल निकाले। वर्गमूल निकालनेसे जो आता है वही दृक्क्षेप कहलाता है। दृक्क्षेपके वर्गको त्रिज्याके वर्गसे घटा कर वर्गमूल निकालने से जो आता है वही शंकु या दृग्गति है।

विज्ञानभाष्य—इन चार श्लोकोंमें जो क्रिया बतलायी गई है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५६२–५६४ में अच्छी तरह बतलायी गयी है। उसी स्थानके चित्र ७६ से प्रकट होता है कि मध्यलग्नकी क्रान्ति और इष्ट स्थान के अक्षांशको कब जोड़ना चाहिये और कब घटाना चाहिये।

इनकी स्थिरायोंके जाननेकी रीति वही है जो पृष्ठ ३९०-३९१ में बतलायी गयी है।

यहाँ लग्नका अर्थ त्रिभोन लग्न समझना चाहिये।

नतांश बाहुकोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेप दृग्गति।
एकज्या वर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गति जीवया ॥७॥
मध्यलग्नार्क विश्लेषज्या छेदेन विभाजिता।
रवीन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक् पश्चाद् घटिकादिकम् ॥८॥

(७) स्थूल रूपसे दशम लग्नके नतांशकी ज्याको दृक्क्षेप और कोटिज्याको दृग्गति कह सकते हैं। एक राशि-की ज्याके वर्गको दृग्गति रूपी जीवासे भाग देनेपर जो आता है उसे छेद कहते हैं। (८) त्रिभोन लग्नसे सूर्य जितना दूर रहता है उसे विश्लेष या विश्लेषांश कहते हैं। इस की ज्याको छेदसे भाग देने पर सूर्य या चन्द्रमाका पूर्व या पश्चिम लंबन घड़ियोंमें आ जाता है। यदि सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व है तो पूर्व लंबन और पश्चिम है तो पश्चिम लंबन होता है।

विज्ञानभाष्य—दृक्क्षेप और दृग्गतिके शुद्ध रूप तो वही हैं जो ६ वें श्लोकमें बतलाये गये हैं। परन्तु उनके जानने की रीति लम्बी है इसलिये ७ वें श्लोकके पूर्वार्धमें छोटी रीति बतलायी गयी है जो स्थूल है। इस छोटी रीतिमें मध्यलग्नके नतांशको ही त्रिभोनलग्नका नतांश मान लिया गया है। क्योंकि इन दोनोंमें बहुत कम अंतर रहता है। परन्तु इससे स्थूलता अवश्य आजाती है।

केन्द्र और त्रिशलेषांशमें सूर्य और चन्द्रमाका भोगांश लंबन जाननेकी जो रीति यहां बतलायी गयी है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५६४ और पृष्ठ ५८४-५८५में बतलायी गई है।

मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात्प्रविशोधयेत्।
धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरी भवेत् ॥९॥

अनुवाद—(९) त्रिभोनलग्नके भोगांशमें सूर्यका भोगांश अधिक हो तो सूर्य त्रिभोनलग्नसे पूर्व रहता है इसलिए सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लंबनोंके अंतरको अमावास्याके अंतकालसे घटाना चाहिए। परन्तु यदि त्रिभोनलग्नके भोगांशसे सूर्यका भोगांश कम हो तो सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लंबनोंके अंतरको अमावास्याके अंतकालमें जोड़ना चाहिए। अमावास्याके अंतकालमें भोगांश लंबनका इस प्रकार संस्कार करनेपर जो समय आता है वह भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावास्याका अंतकाल होता है। इस कालमें सूर्य और चन्द्रमाके लंबनोंके अंतरको पूर्वोक्त रीतिसे फिर निकाले और ऊपरके लंबन संस्कृत-अमावास्यान्त कालमें जोड़े, घटावे। इससे जो समय आवे उसका फिर लंबन निकाले और इसका भी संस्कार करे। इस प्रकारका असकृत्कर्म तबतक करे जबतक कि समय स्थिर न हो जाय अर्थात् जब लंबनका पुनः पुनः संस्कार करनेपर अमावास्यान्त काल वही आवे जो पहले आया था तब यह काम बन्द कर देना चाहिए। ऐसा करनेसे ग्रहणका मध्यकाल ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—असकृत्कर्मसे गणना अधिक शुद्ध हो जाती है जैसा पहले बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३६५)। जिस

समय पूर्वकी ओर जाते हुए चन्द्रमाका भोगांश सूर्यके भोगांशके समान हो जाता है उसी समय अमावास्याका अंत होता है। इसको गणितसिद्ध अमावस्यान्त कहते हैं। जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे पूर्वकी ओर होता है तब चन्द्रमा लंबनके कारण पूर्वकी ओर लटक कर अमावास्याके पहले ही सूर्यके सन्मुख हो जाता है इसलिए जितना दोनोंका सापेक्ष लंबन होता है उतना ही पहले स्पष्ट अमावास्याका अंत होता है इसी कारण श्लोकके पूर्वार्धमें गणितसिद्ध अमान्त कालसे लंबन घटानेको कहा गया है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे पश्चिम होता है तब चन्द्रमा गणितसिद्ध अमावास्यान्त कालमें भी सूर्यके सन्मुख नहीं देख पड़ता क्योंकि लंबनके कारण कुछ नीचे पश्चिमकी ओर लटक पड़ता है। इसलिए इस समय जितना लंबन होता है उतना ही पीछे स्पष्ट अमावास्यान्त काल होता है इसीलिए वह लंबन जोड़नेसे स्पष्ट अमावास्या होती है।

दृक्क्षेपः शीततिग्मांश्वोर्मध्यभुक्त्यन्तराहतः ।
तिथिघ्न त्रिज्यया भक्तो लब्धं सावनतिर्भवेत् ॥१०॥

दृक्क्षेपात्सप्तसिद्ध्यङ्कैर्हृतादवनतिः फलम् ।
अथवा त्रिज्यया भक्तात्सप्तसप्तक संगुणात् ॥११॥

मध्यज्यादिग्वशात्सा च विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥
सेन्दुविक्षेपदिक्साम्ये युक्ता विश्लेषितान्यथा ॥१२॥

अनुवाद—(१०) चन्द्रमा और सूर्यकी मध्यम दैनिक गतियोंके अंतरको दृक्क्षेपसे गुणा करके गुणनफलको

पंद्रह गुणित-त्रिज्यासे भाग दे दो। ऐसा करनेसे जो लब्धि आवेगी वही अवनति या नति या शरलम्बन है। (११) अथवा दृक्क्षेपको सत्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है वह नति होती है अथवा दृक्क्षेपको ४९ से गुणा करके गुणनफलको त्रिज्यासे भाग देनेपर जो लब्धि आती है वह नति है। (१२) नति मध्यज्याकी दिशाके अनुसार उत्तर या दक्षिण दिशामें होती है, अर्थात् यदि मध्यज्याकी दिशा ख-स्वस्तिकसे दक्षिण है तो नतिकी दिशा भी दक्षिण होगी और यदि मध्यज्याकी दिशा ख-स्वस्तिकसे उत्तर है तो नतिकी दिशा उत्तर होगी। यदि चन्द्रमाके शर और नतिकी दिशायें एक ही हैं तो इनको जोड़ना चाहिये और भिन्न हों तो घटाना चाहिए। ऐसा करनेसे जो आवे वह नति संस्कृत-चन्द्र-शर या विक्षेप है।

विज्ञानभाष्य—१० और ११ श्लोकों का सार यह है:—

$$\text{नति} = \frac{(\text{चन्द्रमाकी दैनिक गति}-\text{सूर्यकी दैनिक गति}) \times \text{दृक्क्षेप}}{१५ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$\frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४९}{\text{त्रिज्या}}$$

यहां यह ध्यानमें रखना चाहिए कि त्रिज्या ३४३८ कलाके समान होती है। यदि दृक्क्षेप अर्थात त्रिभोनलग्नके नतांशकी ज्या भारतीय रीतिसे लिखी जायगी तभी त्रिज्यासे भाग देने-की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु यदि दृक्क्षेपका मान आज-कलकी प्रथानुसार दशमलव भिन्नमें हो तो ३४३८ की जगह त्रिज्याका मान १ हो जायगा।

त्रिप्रश्नाधिकारके पृष्ठ ५८९ में नतिका मान यह सिद्ध किया गया है :—

भु=लि ज्याअ के उपर श-लि कोज्या अ। ज्या श कोज्या व

यहां शरलंबनके लिए भु, ग्रहके परमलम्बनके लिए लि, त्रिभोनलग्नके नतांशके लिए अ और ग्रहके शरके लिए श तथा त्रिप्रश्नांशके लिए व माने गये हैं।

सूर्य ग्रहणके समय चन्द्रमाका शर अथवा श बहुत कम होता है। यदि इसको बहुत छोटा मान लिया जाय तो ज्या श को शून्य और कोज्या श को आजकलकी प्रथाके अनुसार १ मानना पड़ेगा। ऐसी दशामें

भु = लि ज्या अ

होगा। अर्थात् परमलंबनको त्रिभोनलग्नके नतांशकी ज्या या दृक्क्षेपसे गुणा करनेपर जो आता है वही नति है। श्लोक १० में यही बात बतलायी गयी है। सूर्यग्रहणके समय सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी नतियोंका ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इन नतियोंके अंतरके समान ही चन्द्रमाकी सापेक्ष नति होती है इसलिए सूर्य और चन्द्रमाकी गतियोंके अंतरसे दृक्क्षेपको गुणा करनेको कहा गया है। पृष्ठ ५८६ में यह बतलाया गया है कि ग्रहका परमलंबन उसकी दैनिक गतिका पन्द्रहवां भाग होता है इस लिए चन्द्रमाका सापेक्ष परमलंबन सूर्य और चन्द्रमाकी गतियोंका पन्द्रहवां भाग माना गया है इस प्रकार दसवें श्लोककी उपपत्ति सिद्ध होती है। अब स्पष्ट है कि इस प्रकार जो नति निकलती है वह स्थूल है। शुद्धता पूर्वक नतिका मान जाननेके लिए वह सूत्र काममें लाना चाहिए जो पृष्ठ ५८. में सिद्ध किया गया है।

११ वें श्लोक में नति जानने की जो दूसरी रीतियां बतलायी गयी हैं वह पहली ही रीतिके दो रूप हैं। चन्द्रमा और

सूर्य की मध्यम दैनिक गतियोंका अंतर =७९०'.६ − ५९'.१= ७३१'.५। इस लिए इसका १५वां भाग=४८'.७७=४९ स्थूल रूपसे। यदि इस मानको पहले सूत्रमें उत्थापित किया जाय तो

$$\text{नति} = \frac{४९ \times \text{दृक्क्षेप}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{४९ \times \text{दृक्क्षेप}}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{\frac{३४३८}{४९}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७० \frac{८}{४९}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०}$$

तथा स्थितिविमर्दार्धं ग्रासाग्रंतु यथोदितम् ॥
प्रमाणं वलनाभीष्टग्रासादि हिमरश्मिवत् ॥१३॥

अनुवाद—(१३) नति संस्कृत चन्द्रशरसे चन्द्रग्रहणाधिकारमें बतलाई गई रीतिके अनुसार स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध, ग्रास, प्रमाण, वलन, अभीष्ट ग्रास इत्यादि अर्थात् सम्मीलन, उन्मीलन, मोक्षकाल इत्यादि जानना चाहिए। इससे जो स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध आवेंगे वे मध्यम स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध कहलाते हैं।

विज्ञान भाष्य—लंबन और नतिकी क्रियाके बाद सूर्यग्रहणकी गणना उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार चन्द्र ग्रहणकी गणना बतलाई गयी है। क्योंकि जैसे चन्द्रग्रहणमें भूछाया

छादक और चन्द्रमा छाद्य होता है, वैसे ही सूर्यग्रहणमें चन्द्रमा छादक और सूर्य छाद्य होता है। छाद्य और छादकका जैसा संबंध चन्द्रग्रहणमें होता है वैसा ही सूर्यग्रहणमें भी होता है।

स्थित्यर्धोनाधिकात् प्राग्वत् तिथ्यन्ताल्लम्बनं पुनः ।
ग्राससोक्षोद्भवं साध्यं तन्मध्यहरिजान्तरम् ॥१४॥
प्राक्कपालेऽधिकं मध्याद्भवेत्प्राग्ग्रहणं यदि ।
मौक्षिकं लम्बनं हीनं पश्चार्धे तु विपर्ययः ॥१५॥
तदा मोक्षस्थितौ देयं प्रग्रहेऽथ यथा ।
हरिजान्तरकं शोध्यं यत्र तस्माद्विपर्ययः ॥१६॥
एतदुक्तं कपाले स्वे तद्भेदे लम्बनैकता ।
स्वे स्वे स्थितिदले योज्या विमर्दार्धेऽपि चोक्तवत् ॥१७॥

अनुवाद—(१४) श्लोक ९ के अनुसार लम्बनकर्मसे जो अमावस्यान्तकाल आवे उसमें १३ वें श्लोकके अनुसार जो स्थित्यर्ध आवे उसको घटाकर स्पर्शकाल और जोड़कर मोक्षकाल जाने। फिर स्पर्शकाल और मोक्षकालके भोगांश लम्बन जानकर ग्रहणके मध्यकालके भोगांश-लम्बनसे अंतर निकाले।

(१५) यदि ग्रहण पूर्व कपालमें हो अर्थात् यदि ग्रहण कालमें सूर्यका भोगांश त्रिभोन लग्नके भोगांशसे अधिक हो तो स्पर्शकालका लंबन मध्यकालके लंबनसे अधिक होगा और मोक्षकालका लम्बन मध्यकालके लम्बनसे कम होगा। परन्तु यदि ग्रहण पश्चिम कपालमें हो अर्थात् ग्रहण-कालमें सूर्यका भोगांश त्रिभोनलग्नके भोगांशसे कम हो तो

लंबनका परिमाण उलटे क्रमसे होगा अर्थात् स्पर्श कालका लंबन मध्यकालके लंबनसे कम होगा और मोक्ष काल कालंबन मध्यकालके लंबनसे अधिक होगा।

(१६) दोनों दशाओंमें अर्थात् चाहे स्पर्श और मोक्ष पूर्व कपालमें हो चाहे पश्चिम कपालमें, १४ वें श्लोकके अनुसार निकाले हुए लंबनोंके अंतरको मोक्ष-स्थित्यर्ध और स्पर्श-स्थित्यर्धमें जोड़कर स्पष्ट स्थित्यर्ध जानना चाहिये। परन्तु यदि १५ वें श्लोकमें कहे हुए नियमके विपरीत दशा हो अर्थात् यदि पूर्व कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे कम हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे अधिक हो अथवा पश्चिमकपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक हो और मोक्ष कालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे कम हो तो १४ वें श्लोकके अनुसार प्राप्त अन्तरको स्पर्श या मोक्ष स्थित्यर्धसे घटाना चाहिये तब स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है।

(१७) जब स्पर्श, मध्य और मोक्ष तीनों एक ही कपाल में हों तभी उपर्युक्त लंबनोंका अन्तर निकाल कर उपर्युक्त क्रिया करनी चाहिए। यदि स्पर्श एक कपालमें हो और मध्य दूसरे कपालमें अथवा मध्य एक कपालमें हो और मोक्ष दूसरे कपालमें तब स्पर्श और मध्यकालके लंबनोंको अथवा मध्य और मोक्ष कालके लंबनोंको जोड़कर अपने अपने स्थित्यर्धमें जोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार स्पष्ट स्थित्यर्ध विमर्दार्ध भी जानना चाहिये।

इति सूर्यग्रहणाधिकार नामक पाँचवें अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ६वें श्लोकके अनुसार आप

पूर्ण अमान्तकालमें अथवा ग्रहण के मध्यकालमें सूर्य और चन्द्रमाके जो लंबन आते हैं वे स्पर्शकाल और मोक्षकाल के लंबन से भिन्न होते हैं क्योंकि स्पर्श और मोक्षके समय सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमाकी सरल रेखाके कारण इनके नतांश भिन्न होते हैं और त्रिप्रश्नाधिकारमें दिखलाया गया है कि लंबन नतांशपर निर्भर होता है अर्थात् यदि नतांश अधिक हो तो लंबन भी अधिक होता है और नतांश कम हो तो लंबन भी कम होता है (पृष्ठ ५५७)। इसलिये १४वें श्लोकमें स्पर्शकाल और मोक्षकालके लंबन जाननेकी आवश्यकता बतलायी गयी है और मध्यकालके लंबनसे अन्तर जाननेका बतलाया गया है। यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्वकपाल में हों अर्थात् त्रिभोनलग्नपर आनके पहले ही ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष हो जाय तो यह स्पष्ट है कि स्पर्शके समय सूर्य या चन्द्रमाका नतांश मध्यकालके सूर्य या चन्द्रमाके नतांशसे अधिक होगा और मोक्षके समय कम होगा क्योंकि त्रिभोनलग्न ही क्षितिजके ऊपर क्रान्तिवृत्तका सबसे ऊँचा बिन्दु है और सूर्य या चन्द्रमा उदय होने पर क्रमशः ऊपर चढ़ते जाते हैं अर्थात् इनका नतांश कम होता जाता है इसलिये स्पर्शकालका नतांश मध्यकालके नतांशसे अधिक और मोक्षकालका नतांश मध्यकाल के नतांश से कम होता है। परन्तु यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पश्चिम कपालमें हों तो स्पर्शके समय सूर्यका नतांश मध्यमकालीन नतांशसे कम होगा और मोक्ष कालीन नतांश मध्यमकालीन नतांश से अधिक होगा क्योंकि पश्चिम कपालमें सूर्य या चन्द्रमा नीचे झुकते जाते हैं इसलिये इनका नतांश बढ़ता जाता है।

स्पर्शकाल और मध्यकालके लंबनोंका जो अन्तर होता है उसको पूर्वकपालके मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे स्पष्ट स्पर्श-स्थित्यर्ध आता है क्योंकि पहिले जो स्थित्यर्ध निकाला जाता है वह मध्यकालके लंबनके अनुसार होता है परन्तु स्पर्शकालमें लंबन कुछ अधिक होता है इसलिये इसके कारण चन्द्रमाके कुछ और नीचे अर्थात् पूर्वकी ओर लटक पड़नेसे स्पर्श कुछ और पहले देख पड़ता है अर्थात स्थित्यर्धका मान बढ़ जाता है। परन्तु मध्यकालकी अपेक्षा मोक्षकालमें (पूर्व कपालमें होनेके कारण) लंबन कम रहता है इसलिए इन दोनोंमें जो अंतर होता है उसको भी मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे मोक्षकालीन स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है क्योंकि जब मोक्षकालीन लंबन कम होता है तब चन्द्रमा पूर्वकी ओर उतना नहीं लटकता जितना मध्यकालमें लटकता है इसलिए सूर्यके सम्मुख देरतक रहता है और मोक्षकालिक स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है।

पश्चिम कपालमें लंबनके कारण चन्द्रमा पश्चिमकी ओर लटक पड़ता है जिससे उसको सूर्यके सम्मुख आनेमें कुछ विलम्ब हो जाता है क्योंकि चन्द्रमाकी गति सदैव पूर्वकी ओर होती है और लंबनके कारण जान पड़ता है मानों वह पश्चिमकी ओर भी जारहा है। इसी कारण ग्रहणका मध्य-काल गणितसिद्ध अमावास्यान्त कालसे कुछ पीछे होता है। परन्तु चन्द्रमा का स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांशसे कम होता है क्योंकि जिस समय ग्रहणका स्पर्श होता है उससे कुछ देर पीछे ग्रहणका मध्य होता है और इतनी देरमें

नक्षत्रोंकी दैनिक गतिके कारण अथवा प्राचीनोंके मतसे प्रवह वायुकी गतिके कारण सूर्य चन्द्रमा सभी नीचे हो जाते हैं। इस लिए पश्चिम कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे नतांशके कम होनेके कारण कम होता है जिसका प्रभाव यह होता है कि ग्रहणके स्पर्श करनेमें इतना विलम्ब नहीं लगता जितना ग्रहणके मध्यकालमें विलम्ब लगता है अर्थात् स्पर्शके समय लंबनके कम होनेसे स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध बढ़ जाता है। इसी प्रकार मोक्षके समय चन्द्रमाका नतांश मध्यकालिक नतांशसे अधिक हो जानेके कारण मोक्ष-कालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे अधिक होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि चन्द्रमा देरतक सूर्यके सन्मुख रहता है क्योंकि मोक्षके समय चन्द्रमा सूर्यसे ऊपर देख पड़ता है परन्तु अधिक लंबनके कारण यह ऊपर न जाकर नीचे ही लटका रहता है जिससे मोक्षकालमें भी कुछ विलम्ब हो जाता है अर्थात् स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्व कपालमें हों चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पश्चिम कपालमें हों, प्रत्येक दशामें ग्रहणका समय कुछ बढ़ जाता है अर्थात् स्पर्श कुछ पहले और मोक्ष कुछ देरमें होता है। इस लिए स्पर्श और मध्यकाल तथा मध्य और मोक्षकालके लंबनोंमें जो अंतर होता है उसको मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होता है। स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्धको ग्रहणके मध्यकालमें घटानेसे प्रत्यक्ष स्पर्शकाल तथा मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्धको ग्रहणके मध्यकालमें जोड़नेसे प्रत्यक्ष मोक्षकाल होता है।

यहाँ तक तो १६ वें श्लोकके पूर्वार्द्धकी व्याख्या हुई। इसके उत्तरार्धका अर्थ समझमें नहीं आता क्योंकि इसमें जिस दशाकी संभावना की गई है वह प्रकृतिके विरुद्ध है। पूर्व कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव अधिक रहेगा क्योंकि स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांशसे सदैव अधिक होता है और इसी तर्कसे मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव कम रहता है। इसी प्रकार पश्चिम कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव कम रहेगा और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव अधिक रहता है। हाँ, यदि ग्रस्तोदय या ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो और बात है। परन्तु ऐसी दशामें विशेष रीतिसे गणना करनी पड़ेगी और किसी स्थानके लिए केवल यह जानना आवश्यक होगा कि ग्रस्तोदय ग्रहणमें मोक्ष कब होता है और ग्रस्तास्त ग्रहणमें स्पर्श कब होता है। पहली दशामें यही विचारना होगा कि सूर्योदयके समय सूर्यका कितना भाग ग्रस्त रहता है और यह ग्रस्त भाग कितनी देरमें निकलके बाहर हो जायगा। इस क्रियाके लिए चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १८, १९, और २० की सहायता लेनी पड़ेगी। दूसरी दशामें अर्थात् ग्रस्तास्त ग्रहणमें यह विचारना होगा कि सूर्यास्तके समय सूर्यका कितना भाग ग्रस्त रहता है और इसके कितने पहले ग्रहणका स्पर्श हुआ। इस क्रियाके लिए भी उन्हीं श्लोकोंकी सहायता लेनी पड़ेगी।

अबतक जो कुछ कहा गया है वह उस दशाके लिये है जब स्पर्श और मोक्ष एक ही कपालमें हों। यदि स्पर्श एक

कपालमें हो और मध्य दूसरे कपालमें अथवा मध्य एक कपालमें हो और मोक्ष दूसरे कपालमें तब स्पर्श और मध्यकालके लंबनोंका अथवा मध्य और मोक्षकालके लंबनोंको जोड़नेसे जो आवे उसे मध्य स्थित्यर्धमें जोड़ना चाहिए क्योंकि ऐसी दशामें ग्रहणकाल बहुत बढ़ जायगा। मान लो कि स्पर्श पूर्व कपालमें और मध्य पच्छिम कपालमें हुआ। यह स्पष्ट है कि ऐसी दशामें ग्रहणका मध्यकाल पच्छिम लंबनके कारण कुछ देरमें होगा अर्थात् चन्द्रमा पश्चिम हट जानेके कारण सूर्य के सम्मुख कुछ देरमें आवेगा। परन्तु स्पर्शके समय चन्द्रमाका लम्बन पूर्वकी ओर होगा इसलिये स्पर्श कुछ पहले ही हो जायगा। पहले कारणसे ग्रहणका मध्यकाल कुछ पीछे हट जायगा और दूसरे कारणसे स्पर्श काल कुछ पहले हो जायगा इसलिये स्पर्शसे मध्यकालतकका समय दोनों कारणोंसे बढ़ जायगा। ऐसी दशामें स्पर्श और मध्यकालिक लंबनोंके योगको मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे ही स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होगा परन्तु मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये दोनों लंबनोंका अन्तर ही मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा क्योंकि मध्यकाल और मोक्षकाल दोनों पच्छिम कपालमें होंगे केवल स्पर्श ही पूर्व कपालमें होगा। परन्तु यदि स्पर्श और मध्य दोनों पूर्वकपालमें हों और मोक्ष पच्छिम कपालमें हो तो स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये लंबनोंके अन्तर को मध्य स्थित्यर्धमें जोड़ना होगा और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध जाननेके लिये लबनोंके योगको मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़ना होगा।

यहांतक जो रीति स्पर्श और मोक्ष काल जाननेके लिए बतलायी गयी है उसी रीतिसे सम्मीलन और उन्मीलन कालोंको भी जानना चाहिए।

उदाहरण—काशी के लिये संवत् १९८२ वि० के माघ कृष्ण अमावस्याके सूर्य ग्रहण की गणना—

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिनके सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च और राहुको स्पष्ट करना चाहिये। इसलिये कलियुगके आरंभसे इस दिनतकका अहर्गण जानना आवश्यक है।

कलियुगसे १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा तक १८३५५४७·५२३६ दिन होते हैं। सम्वत् १९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्तकालसे १९८२ के माघके अमावस्यान्तकालतक १७॥ चान्द्र मास होते हैं क्योंकि इस बीचमें कोई मलमास नहीं है। एक चांद्रमास २९·५३०५८८ सावन दिनोंके समान होता है। इसलिये

१९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त तक		१८३५५४७·५२३६	दिन
१७ चांद्र मास	=	५०२·०२	दिन
आधा चांद्रमास	=	१४·७६५३	दिन

∴ कलियुगसे १९८२ की माघी अमावस्या तक १८३६०६४·३०८९

∴ इस दिनकी मध्यरात्रि तकका अहर्गण=१८३६०६४

इसको ७ से भाग देनेपर शेष ६ बचता है। कलियुग का आरम्भ गुरुवारकी मध्यरात्रि में हुआ था इसलिये जिस समयका अहर्गण ऊपर आया है वह बुधवारकी मध्यरात्रिका है। परन्तु १९८२ वि० की स्पष्ट माघी अमावस्या गुरुवारको थी इसलिये उपर्युक्त अहर्गण पूर्णिमान्त गणना से माघ

की चतुर्दशी और अमान्त गणनासे पौषकी चतुर्दशीकी मध्यरात्रिका है। इस अमावस्याका अंत गुरुवारके मध्यान्ह-के लगभग हुआ है। इसलिये चतुर्दशी और अमावस्या दोनों-की मध्यरात्रिकाल के चन्द्र, सूर्य इत्यादिको स्पष्ट करना चाहिए। जिस प्रकार पृष्ठ ६६२ में इन ग्रहोंकी स्थिति जानी गयी हैं उसी प्रकार यहां भी करने से माघ कृष्ण १४ की अर्द्धरात्रिकालमें मध्यम स्थिति यह आती हैं (यदि पूरे भगण न लिखे जाय):—

सूर्य	= ८	राशि	२६	अंश	३३·१४४	कला
चन्द्रमा	= ८	"	२५	"	४९·६५३	"
चन्द्रोच्च	= ०	"	२६	"	९·११६	"
राहु	= २	"	२३	"	३०·३८९	"

यहां चन्द्रोच्चकी स्थितिमें ३ राशि जोड़ना और राहुकी स्थितिको ६ राशिसे घटाना चाहिए (देखो पृष्ठ ६६३)।

इसलिये १९८२ वि० के माघ कृष्ण १४ बुधवार की मध्यरात्रि कालमें उज्जैनमें

सूर्यका मध्यम स्थान	=	८रा	२९°	३३'·१४४
चन्द्रमा का "	=	८	२५	४९'·६५३
चन्द्रोच्च का "	=	३	२६	९'·११६
राहु का "	=	३	६	२९'·६११

सूर्यका मन्दकेन्द्र=सूर्यका मन्दोच्च—सूर्यका मध्यम स्थान

$= २ रा \quad १७°१७'·५२ — ८रा\ २९°३३'·१४$

$= ५ रा \quad १७°४४'.३८$

$= १ \text{ पाद } + २ रा\ १७°४४'·३८$

∴ दूसरे पादका गम्य भाग = १२°१५'·६२=७३५'·६२

सूर्य की स्फुट मन्द परिधि $= ८४०' - २०' \times \frac{\text{भुजज्या } ७३५'\cdot६}{३४३८}$

$= ८४०' - २०' \times \frac{७३०}{३४३८}$

$= ८४०' - ४' = ८३६'$

$\therefore$ भुजफल $= \frac{८३६ \times ७३०}{२१६००}$

$= २८'\cdot२५४$

यही सूर्यका मन्दफल है। यह धनात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र ग्रजादि है (देखो पृष्ठ २२८)। इसलिये बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य = ८ रा २९°३३'·१४४ + २८'·२५४

= ९ रा ०°१'·३९८

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति* $= ५९'८'' + \frac{८३६ \times २१९ \times ५९'८}{२१६०० \quad \times २२५}$

$= ५९'८'' + २'१३''.६$

$= ६१'२१''.६ = ६१'.३६$

चन्द्रमाका मंद केन्द्र = चन्द्र मन्दोच्च − मध्यम चन्द्र।

= ३ रा २६°९'.११६ − ८रा २५°४९'.६५३

= ७ रा ०°१९'.४६३

= २ पाद + १ रा ०° १९'.४६३

= २ पाद + ३०°१९''४६३

$\therefore$ तीसरे पादका गत भाग = ३०° १९'·४६

= १८१९'·५

---

* देखो पृष्ठ २३३

चन्द्रमाकी स्फुट मन्द-परिधि $=३२^\circ - २०' \times \frac{\text{भुजज्या १८१९·५}}{३४३८}$

$=३२^\circ - २०' \times \frac{१७३५·५५}{३४३८}$

$=३२^\circ - १०'$

$=३१^\circ ५०' \quad = १९१०'$

∴ भुजफल $=१९१० \times \frac{१७३५·५५}{२१६००}$

$=१५३'·४६८$

$=२^\circ ३३'·४६८$

यही चंद्रमाका मन्दफल है। यह ऋणात्मक है क्योंकि चंद्र-केंद्र तुलादि है। इसलिये बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट चंद्रमा $=$८ रा २५°४९'·६५३ $-$ २°३३'·४६८

$=$८ रा २३°१६'·१८५

स्पष्ट सूर्य और चंद्रमा से प्रकट है कि बुधवारकी मध्य रात्रिको चंद्रमा सूर्य से ७ अंशके लगभग पच्छिम है इस लिये अमावस्या अगले दिन होगी। यह जानने के लिये कि अमावस्या कब होगी, चंद्रमाकी स्पष्ट गति जाननी चाहिये।

चतुर्दशीकी मध्यरात्रिका मध्यम चन्द्र $=$८रा२५° ४९'·६५३

दैनिक मध्यमगति $=$१३°१०'·५८३

अमावस्याकी मध्यरात्रिका मध्यम चंद्र $=$९रा ९°०'·२३६

चतुर्दशीकी मध्यरात्रिका चंद्रोच्च $=$३रा २६°९'·११६

एक दिनकी गति ६'·६८३

अमावस्याकी मध्यरात्रिका चंद्रोच्च$=$३रा २६°१५'·७९९

∴ अमावस्याकी मध्यरात्रिका चंद्र मन्दकेन्द्र

= ३रा २६°१५' ७९९ — ९रा ९°०'.२३६

= ६रा १७°१५'.५६३

= २ पाद + १७°१५'.६

∴ तीसरे पादका गत भाग = १७°१५'.६ = १०३५'.६

∴ चन्द्रमाकी स्फुटमन्दपरिधि = ३२° − २०' × $\frac{\text{भुजज्या१०३५.६}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − २०' × $\frac{\text{१०१९.६}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − ६'

= १९१४'

∴ भुजफल = १९१४ × $\frac{\text{१०१९.६}}{\text{२१६००}}$ = ९०'.३४८ = १°३०'.३४८

∴ मन्दफल = १°३०'.३४८

∴ अमावस्याकी मध्यरात्रिका स्पष्ट चन्द्रमा

= ९रा ९°०.२३६ − १°३०.३४८

९रा ७°२९'.८८८

∴ चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिकगति = ९रा ७°२९'.८८८ − ८रा २३°१६.१८५

= १४°१३'.७०३ = ८५३'.७०३

सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति = ६१'.३६

चन्द्रमा और सूर्यकी दैनिक गतियोंका अन्तर = १३°१२'.३४३

= ७९२'.३४३

मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य = ९रा०°१'.३९८

" " चन्द्रमा = ८रा २३°१६'.१८५

दोनों का अन्तर = ६°४५'.२१३ = ४०५'.२१३

सूर्य और चंद्रमामें ७६२'.३४३ का अन्तर ६० घड़ियोंमें होता है इसलिये ४०५''२१३ का अन्तर $\frac{४०५.२१३ \times ६०}{७६२.३४३}$ घड़ियोंमें होगा जो ३० घड़ी ४१·१ पल के समान है। इसलिये उज्जैनमें माघी अमावस्याका अन्त बुधवारकी मध्य रात्रिसे ३० घड़ी ४१.१ पल उपरान्त अथवा गुरुवारके मध्यम ६ बजे प्रातःकालसे १५ घड़ी ४१.१ पलपर हुआ।

काशी उज्जैनसे १ घड़ी १२·८ पल पूर्व है (देखो पृष्ठ ३६९) इसलिये काशीमें गुरुवारके मध्यम ६ बजे प्रातःकालसे १६ घड़ी ५३.९ पलपर अमावस्याका अन्त हुआ।

अब अमावस्यान्तकालिक सूर्य, चन्द्रमा और राहुको स्पष्ट करना चाहिये।

६० घड़ीमें सूर्यकी स्पष्ट गति=६१'.३६
∴ ३० " " =३०'.६८
३० पलमें सूर्य की गति=३०''·६८=.५११३ कला
१० पलमें सूर्य की गति =.१७०४ "
१ " " =.०१७० "
.१ " " =.००१७ "
∴ ३० घड़ी ४१.१ पलमें सूर्य की गति =३१·'३८०

बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य=९$^{रा}$ ०° १'.३९८
∴ अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य=९$^{रा}$ ०°३२'.७७८
६० घड़ीमें चंद्रमाकी स्पष्ट गति = १४°१३'.७०३
३० " " = ७°६'.८५१५
३० पलमें " = ७'.११४२
१० " " = २.३७१४

१	"	"	=	·२३७१
.१	"	"	=	.०२३७
३० घड़ी ४१.१ पलमें	"		=	७°१६'·५६८

बुधवारकी मध्य रात्रिका स्पष्ट चंद्रमा = ८$^{रा}$ २३°१६'·१८५

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट चंद्रमा = ६$^{रा}$ ०°३२'·७८३

६० घड़ीमें राहुकी गति			= ३'११" = ३'.१८३३
३०	"	"	= १.५९१६
३० पलमें		"	= .०२६५
१०	"	"	= .००८८
१	"	"	= .०००९

∴ ३० घड़ी ४१ पलमें राहुकी गति = १'.६२८

बुधवारकी मध्यरात्रिका राहु = ३$^{रा}$ ६°२९'.६११.

∴ अमावस्यान्तकालिक राहु = ३$^{रा}$ ६°२८'.०

सूर्यबिम्बका स्फुट व्यास = $\frac{६५०० \times ६१.३६}{५९.१३३}$ योजन*

चन्द्रबिम्बका स्फुट व्यास = $\frac{४८० \times ८५३.७०३}{७९०.५८३}$ योजन

चन्द्रकक्षामें सूर्यबिम्बका स्फुट व्यास

$$\frac{६५०० \times ६१.३६}{५९.१३३} \times \frac{४३२००००}{५७७५३३३६} \text{ योजन*}$$

$$= \frac{६५०० \times ६१.३६ \times ४३२००००}{५९.१३३ \times ५७७५३३३६ \times १५}$$

$= ३३'.६३४$

* देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २

$\therefore$ ज्या ५८४°५८′ = ज्या (१८०° + ४४°५८) = − ज्या ४४° ५८′ = − .७०६७

चन्द्रमाका स्फुट व्यास कलाओंमें

$$= \frac{४८० \times ८५३.७०३}{७६०.५८३} \times \frac{१}{१५}$$

$$= ३४'.५५५$$

काशीमें सूर्योदय का समय—

पहले यह जानना आवश्यक है कि काशीमें सूर्योदयकालमें सूर्यकी क्रान्ति क्या थी। यह प्रकट ही है कि सूर्योदयकालमें सूर्यका निरयन भोगांश स्थूलतः ९रा०°१५′ के लगभग है अर्थात् सूर्य मकर राशिके आदि विन्दुसे १५′ के लगभग पूर्व है इसलिए इसकी क्रान्ति पृष्ठ ४७०की सारणीके अनुसार २१°३२′.७ से कुछ ही कम होगी और दक्षिण होगी। काशीमें इसका चरांश १०°४७′ के लगभग होगा और चरकाल १ घड़ी ४७.८ पलपर होगा। इसलिए काशीमें स्पष्ट सूर्योदय ६ बजकर १ घड़ी ४७.८ पल पर होगा।

कालसमीकरण—इस दिनका मध्यम सायन भोगांश जाननेके लिए मध्यरात्रिके मध्यम सूर्यमें १५′ जोड़ देनेसे प्रातःकालिक मध्यम निरयन भोगांश होता है ८रा २९° ४८′ के लगभग। इसमें यदि अयनांश २२°४१′ जोड़ा जाय तो मध्यम सायन भोगांश होता है ९रा२२°२९′ = २९२°२९′, इसलिए

काल समीकरण = २३′.१७ ज्या २९२°२९′

+ ११२′.८३ कोज्या २९२°२९′

— १४८′ ज्या २ × २९२°२९′

= २३′.१७ (— ज्या ६७°३१′)

+ ११२′.८३ कोज्या ६७° ३१′

$-$ १४८ ज्या ५८४°५८′ *

$= -$२३′१·७ × ·९२४०

$+$ ११२′·८३ × ·३८२४

$-$१४८′ ($-$·७०९७)

$= -$२१·४ + ४३·२ + १०४·६

$=$ १२६·४ असु

$= +$२१·१ पल

काशीमें सूर्योदयका स्पष्टकाल=६ बजकर १ घड़ी ४७·८पल

कालसमीकरण = +२१·१ पल

∴ काशीमें सूर्योदयका मध्यमकाल = ६ बजकर २ घड़ी ८·९ पल

परन्तु अमावस्यान्तका मध्यमकाल= ६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

∴ सूर्योदयसे अमावस्यान्त तकका समय=१४ घड़ी ४५ पल

अर्थात् सूर्योदयसे १४ घड़ी ४५ पलपर काशीमें अमावस्याका अन्त हुआ।

अब यदि अमावस्यान्तकालिक सूर्यसे १४ घड़ी ४५ पलकी सूर्यकी गति घटा दी जाय तो सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य ज्ञात हो जायगा जिससे सूर्यकी उदयकालिक क्रान्ति, चर इत्यादि शुद्धता पूर्वक जाने जा सकते हैं।

सूर्यकी ६० घड़ीकी गति=६१′·३६

∴ १५ " " = १५′·३४

और १५ पलकी " = ०′·२५६

---

* ५८४° ५८′=३६०° + १८०° + ४४°५८′

∴ १४ घड़ी ४५ पल की गति = १५′·०८४

अमावस्यान्त कालिक स्पष्ट सूर्य=९रा०°३२′·७७८

∴ काशीके सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य = ९रा ०°१७′·६९४

= ९रा०°१७′·७ के लगभग

इस समयका अयनांश = २२°४१′ के लगभग (पृष्ठ ६७३)

∴ काशीके सूर्योदयके सूर्यका सायन भागांश

= ९रा२२°५८′·७=९ रा २२°५९′

$$\text{सूर्यकी क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या ९रा २२ ५९′} \times \cdot३९७९}{१}$$

(देखो पृष्ठ ४५१)

= −ज्या ६७°१′ × ·३९७९

= − ·९२०६ × ·३९७९ = − ·३६६३

∴ दक्षिण क्रान्ति=२१°२९′

काशीकी उदयकालिक चरज्या=स्परे २१°२९′स्परे २५°२०′

=·३९३६ × ·४७३४=·१८६३

चरांश=१०°४४′

∴ चरकाल=६४४ असु =१०७·३पल=१ घड़ी ४७·३पल

इसलिये काशीमें स्पष्ट सूर्योदय=६बजकर १ घड़ी ४७·३ पल पर हुआ।

काल-समीकरण =२१·१″

∴ काशीमें सूर्योदयका मध्यमकाल=६ बजकर २ घड़ी ८·४पल

परन्तु अमावस्यान्तकाल=६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

∴ सूर्योदयसे अमावस्यान्त कालतकका समय

=१४ घड़ी ४५·५ पल

सूर्योदयसे मध्याह्नका समय=१५ घड़ी—चरकाल

=१३ घड़ी १२·७ प

∴ अमावस्यान्तका नतकाल (पश्चिम)=१ घड़ी ३२·८ पल

अमावस्यान्तकालका उदय लग्न त्रिभोन लग्न, और मध्यलग्न, सूर्य सिद्धान्तानुसारः —

सायन राशियोंके काशीके उदयासु (पृष्ठ ४६२ की तरह)

मेष	१३४५	असु	मीन
वृष	१५२५	”	कुम्भ
मिथुन	१८२१	”	मकर
कर्क	२०४१	”	धनु
सिंह	२०६३	”	वृश्चिक
कन्या	२००५	”	तुला

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य=९रा०° ३२′·८

अयनांश= २२° ४१′

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य=९रा२३° १३′·८

=९रा२३° १४′

मकर राशिके भोग्यांश=६°४६′=४०६′

काशीमें मकर राशिके उदयासु=१८२१

१८०० : ४०६ :: १८२१ : मकरके भोग्यासु

$$\text{मकरके भोग्यासु} = \frac{४०६ \times १८२१}{१८००} = ४११$$

सूर्योदयसे अमावस्यान्त तकका समय = १४ घड़ी ४५·५ पल

= ८८५·५ पल

= ५३१३ असु

मकरके भोग्यासु = ४११

∴ मध्य लग्नकी क्रान्तिज्या = ज्या ३०२°२′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ५७°५८′ × ज्या २३°२७′

= − ·८४७७ × ·३९७९

= − ·३३७३

∴ दक्षिण क्रान्ति = १९°४३′

काशीका उत्तर अक्षांश = २५° २०′

∴ मध्य लग्नका नतांश = ४५° ३′

पृष्ठ ५९४ के प्रथम समीकरणके अनुसार,

त्रिभोन लग्नकी नतांश ज्या = कोज्या १७°३९′ × ज्या ४५°३′

= ·९५२९ × ·७०७७

अथवा दृक्क्षेप = ·६७४४

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश = ४२°२४′

दृग्गति = त्रिभोन लग्नकी उन्नतांशज्या

= ज्या (९०° − ४२°२४′)

= ज्या ४७°३६′

= ·७३८५

यहाँ ज्या और कोटिज्याकी दशमलव सारणीके अनुसार जिसमें त्रिज्या १ मानी गयी है दृग्गतिकी गणनाकी गयी है। यदि यह सारणी न हो तो पृष्ठ ५९४ में जो रीति बतलायी गई है उसीसे काम लेना चाहिये। यदि लघुरिक्थ सारणीसे काम लिया जाय तो और भी सुविधा होगी। त्रिभोन लग्नका नतांश जाननेकी भी सारणी बनायी जा सकती है जिससे सुगमतापूर्वक काम लिया जा सकता है। पृष्ठ ४८२ में तथा और स्थानोंमें बतलाया गया है कि किसी

राशिके प्रत्येक अंश समान कालमें उदय नहीं होते इसलिये यदि अनुपातसे काम लिया जायगा तो राशिके उदय-विन्दु का ज्ञान स्थूल रहेगा। ऐसी दशामें ऊपर बतलायी गयी रीतिसे जो त्रिभोन लग्न आवगा उसमें भी स्थूलता रहेगी क्योंकि क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दुसे ९० अंश घटानेपर त्रिभोन लग्न आता है। इसलिये आवश्यक है कि सूर्यग्रहण-की गणनाके लिये क्रान्तिवृत्तके उदय-विन्दु अथवा उदय लग्नका ज्ञान शुद्धता पूर्वक किया जाय। इसी विचारसे नीचे की रीति लिखी जाती है।

विषुवकाल—जिस क्षण वसंत-सम्पात-विन्दु या सायन मेष किसी स्थानके पूर्वक्षितिजपर आता है उस क्षणसे किसी इष्ट कालतकके समयको विषुवकाल कहते हैं। पृष्ठ ४६७ ४६८ में बतलाया गया है कि प्रयागमें अयन भागके उदयासु कैसे जाने जाते हैं। वहां अयन भागके उदयासु १००५ बतलाये गये हैं। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रयागमें जिस समय निरयन मेषका आदि विन्दु क्षितिज वृत्त पर आता है उस समय विषुवकाल १००५ असुके समान होता है। इसी प्रकार जिस समय प्रयागमें निर-यन वृषका आदि विन्दु पूर्व क्षितिजपर आता है उस समय विषुवकाल २४७० असुके समान होता है। इससे प्रकट है कि यदि यह जानना हो कि किसी स्थानमें किस समय विषुवकाल क्या होता है तो पहले उस समयका उदयलग्न जानना चाहिये फिर उदय लग्नका विषुवांश और चरांश जानकर दोनोंका अन्तर निकालना चाहिये। यही अन्तर उस समयका विषुवकाल होता है।

इसी प्रकार यदि किसी समयका विषुवकाल ज्ञात हो तो इस समयका उदयलग्न भी जाना जा सकता है। परन्तु ऊपरकी विलोम रीतिसे यह काम उतना सुगम नहीं है। इसलिये विषुवकालसे उदयलग्न और उदय लग्नसे विषुव काल सीधे ही जाननेकी रीतियाँ यहाँ लिखी जाती हैं:—

उदयकालकी अग्रा—नवीन रीति सेः—

चित्र ६१ से स्पष्ट है कि गोलीय त्रिभुज काव पू में,

$$\frac{\text{ज्यापूका}}{\text{ज्या}\angle\text{का वपू}} = \frac{\text{ज्या वका}}{\text{ज्या}\angle\text{व पूका}}$$

यहाँ पूका उदय लग्न का की अग्रा है, ∠ का वपू परम क्रान्ति है, वका उदय लग्नका सायन भोगांश है और ∠ व पू का = १८०° − ∠व पू द = १८०° − इष्ट स्थानका लंबांश

$$\therefore \text{ज्या} \angle \text{ व पू का} = \text{ज्या} (१८०^\circ - \text{लम्बांश})$$

$$= \text{ज्या लम्बांश}$$

$$= \text{कोटिज्या अक्षांश}$$

$$\therefore \text{ ज्या पूका} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या सायन भोगांश}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$

यह भी उदयकालिक अग्रा जाननेका एक सूत्र है जो पृष्ठ ३६२ के सूत्र और पृष्ठ ४०१ के सूत्र (३) के मेलसे भी प्राप्त हो सकता है। इसी सूत्रसे सूर्यकी उदयकालिक अग्रा इस प्रकार जानी जा सकती है—

माघी अमावस्याके सूर्योदयके सूर्यका सायन भोगांश

$= ९।२२^\circ ५९'$

$= २९२^\circ ५९'$

काशीका अक्षांश $= २५^\circ २०'$

$$ज्या\ पूका = \frac{ज्या\ २३^\circ २७' \times ज्या\ २९२^\circ ५९'}{कोज्या\ २५^\circ २०'}$$

परन्तु ज्या २९२°५९' = − ज्या (३६०° − २९२°५९')
= − ज्या ६७°१'

ऋणात्मक चिन्ह यह प्रकट करता है कि उदयकालिक अग्रा पूका पूर्व बिन्दुसे दक्षिण है। इसलिये

$$ज्यापूका = \frac{ज्या\ २३^\circ २७' \times ज्या\ ६७^\circ १'}{कोज्या\ २५^\circ २०'}$$

लरिज्या पूका = लरिज्या २३°२७' + लरिज्या ६७°१' − लरिकोज्या २५°२०'

= ९·५९९९९ + ९·९६४१ − ९·९५६१
= ९·६०७९

∴ पूका = २३°५५'

इसीको ज्या सूर्योदय कालकी उदयज्या या अग्राज्या भी कहलाती है। इसीकी सहायतासे सूर्योदयका विषुवकाल जानना चाहिये।

सूर्योदयका विषुवकाल—यदि गोलीय त्रिभुजके कोणोंको अ, इ, उ, अक्षरोंसे और इनके सामनेके भुजोंको क्रमशः अ, ई, ऊ, अक्षरोंसे प्रकट किया जाय तो गोलीय त्रिकोणमिति* से प्रकट है कि

$$स्परे \frac{ऊ}{२} = \frac{ज्या \frac{१}{२} (अ + इ)}{ज्या \frac{१}{२} (अ - इ)} \times स्परे (आ - ई)$$

---

* देखो Todhunter और Leathem की Spherical Tirgonometry पृष्ठ ७५

सूर्यका सायन भोगांश २९२°५९' अथवा १८०° + ११२°५९। है जिसका यह अर्थ है कि शरद संपात विन्दु से सूर्य ११२°५९ पूर्व है। विषुवसंपातके उदयकालसे शरद सम्पातके उदयकाल-तक ३० घड़ी होती है। इसलिए शरद संपात का विषुवकाल ३० घड़ी या १८०° होता है। इसलिये यदि यह मालूम हो जाय कि शरद सम्पातसे ११२°५९' का उदय काशीमें कितनी देरमें होता है तो इस विन्दुका भी विषुवकाल जाना जा सकता है। ऐसी दशामें चित्र ६२ के गोलीय त्रिभुज श का पू॰ का भुज श का ११२°५९', पूका २३°५५', ∠श पू का=काशीका लम्बांश=९०°-२५°२०'=६४°४०', श पू=श·का का विषुवकाल। इसलिए गोलीय त्रिकोणमितिके ऊपर दिये हुए सूत्रके अनुसार,

$$\text{स्परे}\frac{\text{श पू}}{२}=\frac{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}(\angle\text{ श पू का}+\angle\text{ पू श का})}{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}(\angle\text{ श पू का}-\angle\text{ पू श का})}\times \text{स्परे}\ \frac{१}{२}(\text{श का}-\text{पू का})$$

$$=\frac{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}(६४°४०'+२३°२७')}{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}(६४°४०'-२३°२७')}\times \text{स्परे}\frac{१}{२}(११२°५९'-२३°५५')$$

$$=\frac{\text{ज्या } ४४°३'\cdot५}{\text{ज्या } २०°३६'\cdot५}\text{स्परे } ४४°३२'$$

$$\therefore \text{ लरि स्परे}\frac{\text{श पू}}{२}=\text{लरि ज्या } ४४°३'\cdot५-\text{लरिज्या } २०°३६'\cdot५+\text{लरि स्परे } ४४°३२'$$

$$=९\cdot८४२३-९\cdot५४६५+९\cdot९९२९$$

$$=१०\cdot२८८७$$

$$\therefore \frac{\text{श पू}}{२}=६२°४७'$$

$$\therefore \text{ श पू}=१२५°३४'$$

=२० घड़ी ५५·७ पल

अमावस्यान्तका विषुवकाल :—जिस क्षण शरद्-सम्पात बिंदु पूर्व क्षितिजपर आवेगा उससे २० घड़ी ५५·७ पल उपरान्त सूर्य क्षितिजपर आवेगा जब इसका सायन भोगांश शरद्-सम्पातसे ११२°५९′ होगा* । परन्तु वसंत-सम्पातसे शरद्-सम्पातका विषुवकाल ३० घड़ी होता है इसलिए माघी अमावस्याके सूर्योदयके समय विषुवकाल ५० घड़ी ५५·७ पल है । यह नाक्षत्र मानमें है । परन्तु सूर्योदयसे अमावस्यान्त-कालका समय १४ घड़ी ४५ पल है । यह सावन मानमें है जो नाक्षत्र मानके १४ घड़ी ४७·५ पलके लगभग है । (देखो पृष्ठ ४७६) । इसलिए,

सूर्योदयके समय विषुवकाल =५० घड़ी ५५·७ पल
सूर्योदयसे अमावस्यान्तका नाक्षत्रकाल=१४ " ४७·५ पल

∴ अमावस्यान्तके समय विषुवकाल=६५ घड़ी ४३·२ पल
= ५ घड़ी ४३·२ पल
=३४°१८′

विषुवकालसे उदयलग्न और अग्रा जानना :—अब यह जानना है कि जब विषुवकाल ३४°१८′ है तब उदय-लग्नका सायन भोगांश क्या है । यह चित्र ६० की सहायतासे सहज ही जाना जा सकता है जहां वपू=३४°१८′, ∠का व पू=परम-क्रान्ति=२३°२७′ और ∠व पू का=१८०°—∠व पू द=१८०°—लम्बांश=१८०°–६४°४०′=११५°२०′

यदि गोलीय त्रिभुजके तीन कोण अ, इ, उ अक्षरोंसे और इनके सामनेके भुज क्रमशः आ, ई, ऊ अक्षरोंसे प्रकट

---

*यह बात उस रीतिसे भी जानी जा सकती है जो पृष्ठ ४६३—४६५ में बतलायी गयी है ।

किये जांय तो गोलीय त्रिकोणमिति के दो सूत्र† इस प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं:—

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{आ}+\text{ई}) = \frac{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}-\text{इ})}{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}+\text{इ})} \times \text{स्परे}\ \frac{\text{ऊ}}{2}$$

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{आ}-\text{ई}) = \frac{\text{ज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}-\text{इ})}{\text{ज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}+\text{इ})} \times \text{स्परे}\ \frac{\text{ऊ}}{2}$$

इन दोनों सूत्रोंके सहारेसे आ और ई दोनोंके मान जाने जा सकते हैं। इस प्रकार चित्र ६० के गोलीय त्रिभुज व पू का से

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{व का}+\text{का पू}) = \frac{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\angle\text{वपूका}-\angle\text{कावपू})}{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\angle\text{वपूका}+\angle\text{कावपू})} \times \text{स्परे}\ \frac{\text{वपू}}{2}$$

$$= \frac{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(११५^\circ २०' - २३^\circ २७')}{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(११५^\circ २०' + २३^\circ २७')} \times \text{स्परे}\ \frac{३४^\circ १९'}{2}$$

$$= \frac{\text{कोज्या}\ ४५^\circ ५६'.५}{\text{कोज्या}\ ६९^\circ २३'.५} \times \text{स्परे}\ १७^\circ ९'.५$$

$$\therefore \text{लघि स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{व का}+\text{का पू}) = \text{लघि कोज्या}\ ४५^\circ ५६'.५ + \text{लघि स्परे}\ १७^\circ ९'.५ - \text{लघि कोज्या}\ ६९^\circ २३'.५$$

† देखो Todhunter और Leathem की Spherical Trigonometry पृष्ठ ७४

$$=९.८४२१+९.४८९६-९.५४६५$$
$$=९.७८५४$$

$$\therefore \frac{\text{घ का} + \text{का पू}}{२} = ३१°२३'$$

$$\therefore \text{घ का} + \text{का पू} = ६२°४६' \text{..................} (१)$$

इसी तरह, दूसरे सूत्रसे,

$$\text{स्परे } \tfrac{१}{२} (\text{घ का} - \text{का पू}) = \frac{\text{ज्या } ४५°५६'.५}{\text{ज्या } ६९°२३'.५} \times \text{स्परे } १७°९'.५$$

$$\therefore \text{लरि स्परे } \frac{\text{घ का} - \text{कापू}}{२} = \text{लरि ज्या } ४५°५६'.५$$

$$+ \text{लरि स्परे } १७°९'.५ - \text{लरि ज्या } ६९°२३'.५$$
$$= ९.८५३५ + ९.४८९६ - ९.९७१३$$
$$= ९.३७४८$$

$$\therefore \frac{\text{घ का} - \text{कापू}}{२} = १३°२०'$$

$$\therefore \text{घ का} - \text{कापू} = २६°४०' \text{............} (२)$$

समीकरण (१) और (२) को जोड़नेसे,

$$२ \text{ घ का} = ८९°२६'$$
$$\therefore \text{घ का} = ४४°४३'$$

और समीकरण (२)को समीकरण (१) से घटानेपर,

$$२ \text{ कापू} = ३६°६'$$
$$\therefore \text{कापू} = १८°३'$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ऊपरके दो सूत्रोंकी सहायतासे यदि विषुवकाल ज्ञात हो तो किसी समयका उदय लग्न और अग्रा दोनों सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए,

अमावस्यान्तकालका सायन उदय लग्न $=४४^\circ४३'$
और उदयन लग्नकी उत्तर अग्रा$=१८^\circ३'$

पृष्ठ ७५० में सायन लग्न $४३^\circ३१'$ और पृष्ठ ७५१ में उदय लग्नकी अग्रा $१७^\circ३६'$ आयी है जो नवीन रीतिसे प्राप्त अंकों-से बहुत भिन्न हैं। इसका कारण यही है कि वहां उदय लग्न अनुपातके द्वारा जाना गया है जो स्थूल है।

जब सायन लग्न $४४^\circ४३'$ है तब त्रिभोन लग्न

$$=४४^\circ४३'-९०^\circ$$

$$=३६०^\circ+४४^\circ४३'-९०^\circ$$

$\therefore$ अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न$=३१४^\circ४३'$

अमान्तकालका मध्यलग्न जानना—अमान्तकालमें जो विषुव-काल आया है उससे १५ घड़ी अथवा ९०° कम उसी समयके मध्य लग्नका विषुवकाल होगा क्योंकि विषुवद्वृत्तका जो विंदु यामोत्तर-वृत्तपर होता है वही मध्य लग्नका विषुवकाल और विषुवद्वृत्तका जो विन्दु पूर्व क्षितिजपर होता है वही उदय लग्नका विषुवकाल होता है। परन्तु विषुवद्वृत्तके इन दोनों विंदुओंका अन्तर १५ घड़ी या ९०° के समान होता है।

चित्र ६३ में यदि व पू को $३४^\circ१९'$, व का को $४४^\circ४३'$ तथा यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तके सामान्य विन्दुको च मान लिया जाय तो च व म गोलीय त्रिभुज के व म का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

च व$=$च पू$-$व पू$=९०^\circ-३४^\circ१९'=५५^\circ४१'$

$\angle$च व म$=२३^\circ२७'$

और ∠ व च म = ९०°। क्योंकि यह विषुवद्वृत्त और याम्योत्तरवृत्तके बीचका कोण है, इसलिए नेपियरके पहले नियम के अनुसार (देखो पृष्ठ १८४),

कोज्या २३°२७' = स्परे ५५°४१' × कोस्परे वम

$$= \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{स्परे वम}}$$

$$\therefore \text{ स्परे वम} = \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{कोज्या } २३°२७'}$$

∴ लरि स्परे व म = लरि स्परे ५५°४१' − लरि कोज्या २३°२७'

= १०·१६५८ − ९·९६२५ = १०·२०३३

∴ व म = ५७°५७'

∴ सायन मध्यलग्न = ३६०° − ५७°५७'

= ३०२°३'

यह ७५१ पृष्ठमें आये हुए सायन मध्यलग्नसे केवल १' बड़ा है। इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार जो मध्यलग्न आया है वह बिलकुल ठीक है। इसका कारण यह है कि मध्य लग्न और सूर्य बहुत पास हैं यदि मध्यलग्नसे सूर्य दूर होता तो इसमें भी अन्तर पड़ता।

त्रिभोनलग्नका नतांश जानना—

मध्य लग्नका नतांश सूर्य-सिद्धान्तकी रीतिसे ४५°३' आया है (देखो पृष्ठ ७५२)। यह रीति बिलकुल शुद्ध है। इससे त्रिभोन लग्नकी नतांशज्या या दृक्क्षेप जाननेकी जो विधि पृष्ठ ५९३ − ९४में बतलायी गयी है उसके अनुसार त्रिभोन लग्नका नतांश ४२°१८' होता है यदि उदय लग्नकी अग्रा नवीन रीति से १८°३' मानी जाय। परन्तु यह बहुत स्थूल है। इसलिये

गोलीय त्रिभुज म ख वि (चित्र ६३) से ख वि का मान सीधे ही निकालना उचित होगा। यहाँ खवि वित्रिभ लग्न या त्रिभोन लग्नका नतांश है, म ख मध्य लग्नका नतांश है और म वि मध्य लग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर है जो ३१४°४३'−३०२°३' अथवा १२°४०' के समान है और ∠मविख = ९०°, इसलिए नेपियरके दूसरे नियमके अनुसार,

कोज्या मख=कोज्या ख वि × कोज्या मवि

$$\therefore \text{ कोज्या खवि}=\frac{\text{कोज्या मख}}{\text{कोज्या मवि}}=\frac{\text{कोज्या ४५°३'}}{\text{कोज्या १२°४०'}}$$

∴ लरि कोज्या ख वि=लरि कोज्या ४५°३'−लरि कोज्या १२°४०'

=१·८४९१−१·९८९३=१·८५९८

∴ खवि = ४३°३६'

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश= ४३°३६'

यह जाननेकी दूसरी रीति भी है जो उसी गोलीय त्रिभुज के ∠मविख और मख की सहायतासे नेपियरके दूसरे नियमपर आश्रित है। दोनो रीतियोंसे त्रिभोन लग्नका नतांश अभिन्न होता है। इसलिए सूर्यसिद्धान्तके पृष्ठ ५९३-५९४ में बतलायी गयी रीतिको अपेक्षा यही मान्य होनी चाहिए।

दृक्क्षेप=त्रिभोन लग्नको नतांशज्या=ज्या ४३°३६' =·६८९६

दृग्गति= त्रिभोन लग्नकी उन्नतांश ज्या=कोज्या ४३°३६' =·७२४२

$$\text{छेद}=\frac{१}{४\ \text{दृग्गति}}=\frac{१}{४\times ·७२४२}$$

अमान्त कालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३' (पृष्ठ ७६०)

अमान्त कालिक सायन सूर्य = २६३°१४' (पृष्ठ ७४९)

∴ अमान्तकालिक विश्लेषांश = २१°२९'

∴ सूर्य या चन्द्रमाका लंबन = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ४ × ·७२४२ × ज्या २१°२९'

= ४ × ·७२४२ × ·३६६२

= १·०६०८ घड़ी

= १ घड़ी ३·६५ पल

यह पच्छिम लम्बन है क्योंकि त्रिभोन लग्नसे सूर्य पच्छिम है। इसलिए इसको अमावस्यान्त कालमें जोड़नेपर भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावास्यान्त काल आवेगा।

सूर्योदयसे अमावास्यान्तका समय	= १४ घड़ी ४५ पल
पच्छिम भोगांश लंबन	= १ घड़ी ३·६ पल

∴ सूर्योदयसे लंबन-संस्कृत-अमावास्यान्तकाल

= १५ घड़ी ४८·६ पल

अर्थात् लंबनके कारण चन्द्रमा सूर्यके सामने सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर आवेगा। यह भी बिलकुल शुद्ध नहीं है, इस लिए असकृत्कर्म करना आवश्यक है अर्थात् अब यह देखना चाहिए कि सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर क्या लंबन होता है। इस कालके लिए इस समयका उदय लग्न, त्रिभोन लग्न, मध्य लग्न इत्यादि जानना चाहिए जिसके लिए वही क्रिया फिर दुहरानी पड़ेगी जो पृष्ठ ७५७से अब तक दिखलाई गई है।

१५ घड़ी ४८·६ पल (सावन) = १५ घड़ी ५१·१ पल (नाक्षत्र)
सूर्योदयका विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल (पृष्ठ ७१७)
∴ लंबन-संस्कृत-अमावास्यान्तके समय विषुवकाल

= ६ घड़ी ४६·८ पल

= ४०° ४१' के लगभग

पृष्ठ ७५८के समीकरणोंमें ३४° १९को जगह ४०° ४१' रख कर सरल करनेसे इस समयकी उदय लग्न और अग्राआजायगी क्योंकि और गुणक सामान्य हैं। इसलिए

लरि स्परे½ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५° ५६'·५ + लरि स्परे २०° २०'·५ − लरि कोज्या ६९° २३'·५

= ९·८४२२ + ९·५६९१ − ९·५४६४

= ९·८६४९

$$\therefore \frac{\text{व का + कापू}}{२} = ३६° १४'$$

∴ व का + कापू = ७२° २८' ....(३)

लरि स्परे ½ (व का — का पू) = लरिज्या ४५° ५६'·५ + लरि स्परे २०° २०'·५ − लरि ज्या ६९° २३'·५

= ९·८५६५ + ९·५६९१ − ९·९७१३

= ९·४५४३

$$\therefore \frac{\text{व का − का पू}}{२} = १५° ५३'$$

∴ व का − का पू = ३१° ४६'............(४)

समीकरण (३) और (४) से,

व का = ५२° ७'

का पू = २०° २१'

∴ सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर उदय लग्न ५२°७′ और अग्रा २०°२१′ है।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न =५२°७′ − ९०°=३२२°७′

और विषुवकाल = ४०°४१′

∴ पृष्ठ ७६० की तरह च व = ९०° − ४०°४१′=४९°१९′

$$\therefore \text{स्परे व म} = \frac{\text{स्परे } ४९°१९'}{\text{कोज्या } २३°२७'}$$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ४९°१९′ − लरि कोज्या २३°२७′

=१०·०६५७ − ९·९६२५ = १०·१०३२

∴ व म = ५१°४५′

∴ सायन मध्य लग्न=३६०° −५१°४५′= ३०८°१५′

मध्य लग्नकी क्रान्तिज्या = ज्या ३०८°१५′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ५१°४५′ × ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्ति ज्या=९·८९५० + ९·५९९९=९·४९४९

∴ मध्यलग्नकी दक्षिण क्रान्ति = १८°१३′

काशीका उत्तर अक्षांश = २५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश = ४३°३३′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर=३२२°७′ − ३०८°१५′=१३°५२

$$\therefore \text{त्रिभोन लग्नके नतांशकी कोटिज्या} = \frac{\text{कोज्या } ४३°३३'}{\text{कोज्या } १३°५२'}$$

∴ लरि नतांश कोज्या=लरि कोज्या ४३°३३′ − लरि कोज्या १३°५२′

= ९·८६०२ − ९·९८७२=९·८७३०

त्रिभोन लग्नका नतांश = ४१°४३′

सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति = ६१′·३७

∴ सूर्यकी एक घड़ीकी गति = १′·०२३

सूर्यकी ३ पलकी गति = ·०५१

∴ सूर्यकी एक घड़ी ३ पलकी गति = १′·०७

अमान्तकालिक सायन सूर्य = २८३°१४′

∴ लम्बन संस्कृत अमान्तकालिक सूर्य = २८३°१५′

त्रिभोन लग्न = ३२२°७′

सायन सूर्य = २८३°१५′

∴ विश्लेषांश = २८°५२′

दृग्गति=त्रिभोन लग्नकी नतांश कोटिज्या

=कोज्या ४१°४३′

$$\therefore \text{छेद} = \frac{१}{४\ \text{दृग्गति}} = \frac{१}{४\ \text{कोज्या}४१°४३′}$$

$$\therefore \text{सूर्य का लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

= ४ कोज्या ४१°४३′ ज्या २८°५२′

= ४ × ·७४६४ × ·४८२८ घड़ी

= १.४४२ घड़ी

= १ घड़ी २६·५ पल

सूर्योदयसे अमावस्यान्तका समय = १४ घड़ी ४५ पल

सूर्यका लंबन = १ घड़ी २६·५ पल

∴ द्वितीय लंबन संस्कृत अमावस्यान्तकाल

= १६ घड़ी ११·५पल

इस समयका त्रिभोन लग्न जानकर फिर लंबन जानना चाहिये:—

१६ घड़ी ११·५ पल (सावन) = १६ घड़ी १४·२ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदयका विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल

∴ द्वितीय लंबन-संस्कृत-अमान्त-कालका विषुवकाल

= ७ घड़ी ९·९ पल

=४३° के लगभग

∴ लरि स्पर्रे ½ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५°५६′·५ + लरि स्परे २१°३०′ − लरि कोज्या ६९°२३′·५

= ९·८४२२ + ९·५९५४ − ९·५४६४

= ९·८९१२

∴ $\frac{\text{वका + कापू}}{२}$ = ३७°५४′

∴ व का + का पू = ७५°४८′

लरि स्परे ½ (व का − का पू) = लरिज्या ४५°५६′·५ + लरि स्परे २१°३०′ − लरि ज्या ६९°२३′·५

= ९·८५६५ + ९·५९५४ − ९·९७१३

= ९·४८०६

∴ $\frac{\text{व का — का पू}}{२}$ = १६°४९′·५

∴ व का − का पू = ३३°३९′

∴ व का = ५४°४३′·५

और का पू = २१°४′·५

∴ सूर्योदयसे १६ घड़ी ११·५ पलपर उदय लग्न ५४° ४३′·५ और अग्रा २१°४′·५

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ५४°४३′·५ − ९०° = ३२४° ४३′·५

और इस समय विषुवकाल $=४३^\circ$

$\therefore$ चव $=९०^\circ-४३^\circ=४७^\circ$

$\therefore$ स्परे व म $=\dfrac{\text{स्परे } ४७^\circ}{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}$

$\therefore$ लरि स्परे वम = लरि स्परे ४७° − लरिकोज्या $२३^\circ २७'$

= १०.०३०३ − ९.९६२५=१०.०६७८

$\therefore$ वम = $४९^\circ २७'$

$\therefore$ सायन मध्यलग्न = $३६०^\circ - ४९^\circ २७' = ३१०^\circ ३३'$

$\therefore$ मध्यलग्नकी क्रान्तिज्या= ज्या $३१०^\circ ३३' \times$ ज्या$२३^\circ २७'$

$= -$ज्या $४९^\circ २७' \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

लरि क्रान्तिज्या = ९.८८०७ + ९.५९९९=९.४८०६

$\therefore$ क्रान्ति$=१७^\circ ३६'$ दक्षिण

काशीका अक्षांश = $२५^\circ २०'$

मध्यलग्नका नतांश$=४२^\circ ५६'$

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर = $३२४^\circ ४३'.५ - ३१०^\circ ३३' = १४^\circ १०'.५$

$\therefore$ त्रिभोन लग्नकी नतांश कोटिज्या$=\dfrac{\text{कोज्या } ४२^\circ ५६'}{\text{कोज्या } १४^\circ १०'.५}$

$\therefore$ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या $४२^\circ ५६'$ − लरि कोज्या $१४^\circ १०'.५$

= ९.८६४६ − ९.९८६५=९.८७८१

$\therefore$ त्रिभोन लग्नका नतांश$=४०^\circ ५७'$

सूर्यकी १ घड़ीकी गति = १.'०२३

सूर्यकी २० पलकी गति = .३४१

५ " = ·०८५
१ " = ·०१७
·५ " = ·००६

∴ १ घड़ी २८·५ पल की गति= १′·५
अमान्त कालिक सायन सूर्य = २९३°१४′

१ घड़ी २८·५ पलकी गति = १′·५
द्वितीय लंबन संस्कृत अमान्तकालका सूर्य =२९३°१५′·५
त्रिभोन लग्न = ३२४°४३′·५

∴ विश्लेषांश = ३१°२८′
दृग्गति = त्रिभोन लग्न की नतांश कोटिज्या=कोज्या ४०°५७′

$$\therefore \text{छेद} = \frac{१}{४\text{दृग्गति}} = \frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४०°५७′}$$

$$\therefore \text{लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

= ४ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ३१°२८′
= ४ × ·७५५३ × ·५२२०
= १ घड़ी ३४·६ पल

सूर्योदयसे अमान्तकाल तकका समय = १४ घड़ी ४५ पल
तीसरी बारका लंबन = १ घड़ी ३४·६ पल

∴ तृतीय-लंबन-संस्कृत-अमान्तकाल = १६ घड़ी १९·६ पल

इस प्रकार पहले लंबनसे अमावस्यान्तकाल १५ घड़ी ४८·६ पलपर, दूसरे लंबनसे १६ घड़ी ११·५ पलपर और तीसरे लंबनसे १६ घड़ी १९·६ पल पर होता है। इससे प्रकट है कि पिछले अमावस्यान्तकालोंमें केवल ८ पलका अन्तर है। यदि दो तीन वार और संस्कार किया जाय तो अन्तर

शून्य हो जायगा। उस दशामें जो अमावस्यान्तकाल आवेगा वही शुद्ध अमावस्यान्त होगा। अनुमानसे जान पड़ता है कि जो अमावस्यान्तकाल तीसरी बार आया है उससे शुद्ध अमावस्यान्त केवल दो या तीन पल अधिक होगा। इसलिए दो तीन पलके लिए दो तीन बार और संस्कार करनेमें झंझटके सिवा विशेष लाभ नहीं है। इसलिए मान लिया जाता है कि लंबन-संस्कृत-शुद्ध-अमावस्यान्त काल सूर्योदयसे १६ घड़ी २० पलपर है। यही सूर्य ग्रहणका मध्यकाल समझना चाहिए। यहांतक ९ वें श्लोकतककी क्रिया समाप्त हुई।

नति—

१० वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमाके मध्यगतियोंके अंतरको दृक्क्षेपसे गुणा करना चाहिए। परन्तु मेरी समझमें यदि स्पष्ट गतियोंके अंतरसे गुणा किया जाय तो अधिक शुद्धता होगी।

सूर्य और चंद्रमाकी दैनिक गतियोंका अंतर=७९२′·३४३

(देखो पृष्ठ ६४३)

दृक्क्षेप अथवा त्रिभोनलग्नकी नतांशज्या=ज्या ४०°५७′

$$\therefore \text{ नति} = \frac{७९२'·३४३ \times \text{ज्या}४०°५७'}{१५} = \frac{७९२'·४३ \times ·६५५४}{१५} = ३४'·६२$$

यहां त्रिज्यासे भाग देनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि ज्याका मान दशमलव भिन्नमें लिया गया है। यह दक्षिण है क्योंकि मध्यलग्नका नतांश दक्षिण है।

चंद्रमाकी ६० घड़ीकी गति=१४°१३′·७

चन्द्रमाकी १ घड़ीकी गति = १४'१३"·७

" ३० पल " = ७' ६".६

" ५ " " = १ ११"·१

∴ चन्द्रमाकी १ घड़ी ३५ पलकी गति=२२'३१·७"=२२'·५

गणित-सिद्ध अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा=९^रा^०°३२'·८

∴ लंबन संस्कृत अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा=९^रा^०°५५'·३

" " राहु =३^रा^६°२८'·०

राहुसे चंद्रमाका अन्तर =५^रा^२४°२७'·३

=१७४°२७'·३

∴ चन्द्रशरकीज्या = $\frac{\text{ज्या } १७४°२७'·३ \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$

= $\frac{\text{ज्या } ५°३२'·७ \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$

= $\frac{३३२·७ \times २७०}{३४३८}$

=२६'·१३

यह उत्तर शर है क्योंकि राहुसे चंद्रमा आगे है परन्तु ६ राशिसे कम दूर है।

∴ नति संस्कृत चंद्रशर=—३४'·६२+२६'·१३=—८'·४९

अर्थात् नति संस्कृत दक्षिण चन्द्रशर=८'·४९

चंद्रकक्षामें सूर्य बिम्बका स्फुट व्यास=३३'·६३४

चंद्रमाका स्फुट व्यास =३४'·५५५

छाद्य अथवा सूर्यका व्यासार्ध =१६'·८१७

छादक अथवा चन्द्रमाका व्यासार्ध =१७'·२७८

∴ मानैक्यखंड $= ३४'\cdot१०$

और मानान्तर खंड $= ०'\cdot४६$

ग्रासका परिमाण=मानैक्यखंड − नति संस्कृत चंद्रशर

$= ३४'\cdot१ — ८'\cdot४६$

$= २५'.६१$

यह चन्द्रबिम्बके व्याससे छोटा है इस लिए सर्वग्रास ग्रहण न लगेगा वरन् खंड ग्रहण लगेगा। (देखो पृष्ठ ६५६ और श्लोक ११ चं० ग्र०)

पृष्ठ ६६८ के अनुसार

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(३४\cdot१ + ८\cdot४६)(३४\cdot१ - ८\cdot४६)}}{७६२\cdot३४३}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{४२\cdot५६ \times २५\cdot६१}}{७६२\cdot३४३}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{१०९०\cdot७३}}{७६२\cdot३४३}$$

$$= \frac{६० \times ३३\cdot०२६}{७६२\cdot३४३}$$

$$= \frac{१९८१५६०}{७९२३४} \text{ घड़ी}$$

$= २$ घड़ी $३०\cdot०६$ पल

$= २$ घड़ी ३० पल

∴ स्पर्शकाल=१६ घड़ी २० पल—२ घड़ी ३० पल

=१३ घड़ी ५० पल

अर्थात् काशीमें सूर्योदयसे १३ घड़ी ५० पलपर ग्रहणका स्पर्श होगा। परन्तु यह स्थूल है। सूक्ष्म गणना करनेके लिए इस समयका भी लंबन और नति फिर निकाल कर स्थित्यर्ध

इत्यादि जानना चाहिए जैसा कि श्लोक १४—१७ में बतलाया गया है।

१३ घड़ी ५० पल (सावन)=१३ घड़ी ५२·३ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदयका विषुवकाल=५० घड़ी ५५·७ पल

∴ स्पर्शकालके समय विषुवकाल=४ घड़ी ४८ पल

= २८°४८′

∴ लरि स्परे ½ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५° ५६′·५ + लरि स्परे १४°२४′ — लरि कोज्या ६६°२३′·५

= ९·८४२२ + ९·४०९५—९·५४६४

= ९·७०५३

∴ स्परे ½(व का + का पू)=२६°५४′

∴ व का + का पू = ५३°४८′

लरि स्परे ½ (व का — का पू) =९·८५६५ + ९·४०९५ — ९·९११३

=९·२९४७

∴ ½ (व का — का पू) =११°९′

∴ व का — का पू =२२°१८′

∴ व का =३८°३′

और का पू = १५°४५′

∴ सूर्योदयसे १३ घड़ी ५० पलपर उदय लग्न ३८°३′ और अग्रा १५°४५′ है।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ३८°३′ — ९०° = ३०८°३′

और " विषुवकाल = २८°४८′

पृष्ठ ७६० की तरह च व =९०° — २८°४८′=६१°१२′

$$∴ \text{स्परे व म} = \frac{\text{स्परे ६१°१८′}}{\text{कोज्या २३°२७′}}$$

∴ लरि स्पर्श व म = लरि स्पर्श ६१°१२′ − लरि कोज्या २३°२७′

= १०·२५९८ − ९·९६२५ = १०·२९७३

∴ व म = ६३°१४′

∴ सायन मध्य लग्न = ३६०° − ६३°१४′ = २९६°४६′

मध्य लग्न की क्रान्ति ज्या = ज्या २९६°४६′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ६३°१४′ × ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्तिज्या = ९·९५०८ + ९·५९९९ = ९·५५०७

∴ मध्यलग्नकी दक्षिण क्रान्ति = २०°४९′

काशीका उत्तर अक्षांश = २५°२०′

∴ मध्य लग्नका नतांश = ४६°९′

मध्यलग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर = ३०८°३′ − २९६°४६′ = ११°१७′

∴ त्रिभोन लग्नके नतांशकी कोटिज्या = $\frac{\text{कोज्या ४६°९′}}{\text{कोज्या ११°१७′}}$

∴ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४६°९′ − लरि कोज्या ११°१७′ = ९·८४०६ − ९·९९१५ = ९·८४९१

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश = ४५°३′

दृग्गति = त्रिभोनलग्नकी नतांश कोटिज्या = कोज्या ४५°३′

∴ छेद = $\frac{१}{\text{४ कोज्या ४५°३′}}$

सूर्योदयसे १४ घड़ी ४५·२ पलपर स्पष्ट सायन सूर्य

= ९रा २२°१४′

५५ पलकी सूर्यकी गति = १′

∴ १३ घड़ी ५० पल पर अथवा स्पर्श कालिक सूर्य

= ९रा २३°१३′

= २९३° १३'

त्रिभोन लग्न = ३०८° ३'

विश्लेषांश = १४° ५०'

लंबन = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ज्या १४°५०' × ४ × कोज्या ४५° ३'

= ४ × ·२५६० × ·७०६५

= ·७२३५ घड़ी

= ४३·४ पल = ४३ पल

मध्य ग्रहणकालका लंबन = १ घड़ी ३५ पल

∴ दोनोंका अन्तर = ५२ पल

इसलिए १६ वें श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध = प्रथम स्थित्यर्ध + ५२ पल

= २ घड़ी ३० पल + ५२ पल

= ३ घड़ी २२ पल

इसलिए सूर्योदयसे स्पर्शकाल तकका समय

= सूर्योदयसे मध्यग्रहणका समय — ३ घड़ी २२ पल

= १६ घड़ी २० पल – ३ घड़ी २२ पल

= १२ घड़ी ५८ पल

∴ काशीमें सूर्योदयसे १२ घड़ी ५८ पलपर ग्रहणका स्पर्श होगा।

इसी प्रकार स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी जान लेना चाहिये।

इस गणनासे स्पष्ट है कि काशीमें सूर्यग्रहणका स्पर्श और मोक्ष दोनों देख पड़ेगा। परन्तु यह बात काशीमें एकत्र

हुए किसी मनुष्यको नहीं देख पड़ी जैसा कि लोगोंका अनुभव है। इसका कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार जो मूलाङ्क आये हैं वे बहुत स्थूल हैं। इसी कारण यद्यपि लग्नके नतांश इत्यादि के जाननेकी रीति बिल्कुल बदल दी गयी है तो भी सूक्ष्मता नहीं आ सकी। इन मूलाङ्कोंमें सबसे बड़ी अशुद्धि राहुके मूलाङ्कमें है जैसा कि चन्द्रग्रहणाधिकारमें बतलाया गया है।

राहु का मूलाङ्क शुद्ध लेनेपर क्या दशा होती है ?

१६२६ ई० के नाविक पञ्चांगके अनुसार ११ जनवरी सोमवारको ग्रीनिच के मध्यम मध्याह्नकालमें सायन राहुका स्थान ११५°·७५०५ था। इस समय काशीमें मध्याह्नोपरान्त १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल हुआ था (देखो पृष्ठ ३७०), जो मध्यम प्रातःकालसे २८ घड़ी ५०·५ पल होता है। इस समयसे माघी अमावस्याके अन्ततक अर्थात् गुरुवारके मध्यम प्रातःकालके १६ घड़ी ५४ पलतक २ दिन ४८ घड़ी ३·५ पल होता है। इतने समयमें राहुकी गति इस प्रकार निकली:—

१ दिनकी गति	=	०°·०५२९५
२ ”	=	०°·१०५९०
३० घड़ीकी गति	=	०°·०२६४८
१५ ”	=	०·०१३२४
३ ”	=	०·००२६५
३ पल की गति	=	०·००००४
योग	=	०·१५८३

यह घटानेपर सायन राहुका स्थान हुआ, ११५°·६०२२

= ११५°३६'·१

परन्तु अयनांश = २२°४१'

∴ राहुका निरयन भोगांश (अमावस्यान्त कालमें)

= ९२°५५'

चन्द्रमाका निरयन " = २७०°३३'

∴ राहुसे चन्द्रमाका अन्तर = १७७°३८'

यदि चन्द्रमाका परमशर ४°३०' की जगह ५°८'४२" माना जाय (देखो पृ० ११३) तो

चन्द्रशर ज्या = ज्या १७७°३८' × ज्या ५°८'४२"

= ज्या २°२२' × ज्या ५°८'४२"

= ·०४१३ × ·०८९७

= ·००३७

चन्द्रशर = १२'४०" उत्तर = १२'·६७ उत्तर

नति = ३४·६२ दक्षिण

∴ नति संस्कृत चंद्रशर = २१'·९५ दक्षिण

∴ ग्रासका परिमाण = मानैक्य खंड—नति संस्कृत चन्द्रशर

= ३४'·१ − २१'·९५

= १२'·१५

इस प्रकार यहाँ भी सिद्ध होता है कि यदि राहुका भोगांश ठीक ठीक लिया जाय तो भी ग्रासका परिमाण १२'·१५ होता है अर्थात् ग्रहणका स्पर्श और मोक्ष काशीमें देखा जा सकता है परन्तु यह भी अनुभवमें नहीं आया। इसलिए अब यह देखना है कि यदि सूर्य और चन्द्रमाके लंबन, नति और स्फुट व्यास इत्यादि दृग्गणितके अनुसार और नवीन रीतियोंसे निकाले जायँ तो क्या अन्तर पड़ता है।

नाविक पंचांगके अनुसार:—

अमावस्यान्त कालमें चन्द्रमाका क्षितिज लंबन = ६१'१२" = ६१'·२

चंद्रमाका उत्तर शर = ७′३६″=७′·६

" " व्यासार्ध = १६′४०″·६=१६′·६८

सूर्य का व्यासार्द्ध = १६′१७″·२=१६′·२६

त्रिभोन लग्न और मध्यलग्न वही माने जाते हैं जो पहले निकाले गये हैं। (पृष्ठ ७६७—७६८)

पृष्ठ ५८६ के सूत्र (च) के अनुसार

भु=क्षि ज्या त्रा कोज्या श—क्षि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

जहां त्रा त्रिभोन लग्नका नतांश, क्षि चन्द्रमाका क्षितिज लंबन, श चन्द्रमाका शर, व विश्लेषांश और भु नति है।

∴ नति=६१′·२ ज्या ४०°५७′ कोज्या ७′·६—६१′·२ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ७′·६ × कोज्या ३१°२८′

= ६१′·२ × ·६५५४ × ·९९९९ — ६१′·२ × ·७५५३ × ·००२२ × ·८५२९

= ६१′·२(·६५५४ × ·९९९९ — ·७५५३ × ·८५२९ × ·००२२)

= ६१·२(·६५५३३४९—·००१४१७२)

= ४०·०२

चन्द्रशर उत्तर = ७′·६

∴ नति संस्कृत चन्द्रशर = ३२′·४२

मानैक्यखंड=१६′·६८+१६′·२९=३२′·९७

∴ ग्रासका परिमाण=३२′·९७—३२′·४२ = ०′·५५

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यदि राहु, चन्द्रमा और सूर्य के व्यास, लंबन और नति नवीन गणनानुसार लिये जायँ तो ग्रास १ कलासे भी कम होता है जो उद्योग करनेपर भी नहीं देखा जा सकता है। यही बात अनुभवसे भी सिद्ध होती है। इसलिए ग्रहणकी गणनाके लिए हमें अपने सिद्धान्त ग्रंथोंमें दृग्गणितके अनुसार सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है।

इति सूर्य-ग्रहणाधिकारका विज्ञानभाष्य समाप्त।

परिलेखाधिकार नामक छठा अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—परिलेखका प्रयोजन । श्लोक २—१२—स्पर्श, मोक्ष और मध्यकालके ग्रहणोंका परिलेख खींचनेकी रीति । श्लोक १३—कितना भाग ग्रस्त होनेपर ग्रहण देखना संभव है । श्लोक १४–१६—ग्राहकका मार्ग खींचनेकी रीति । श्लोक १७—१९—किसी इष्टकालमें ग्रहणका परिलेख खींचनेकी रीति । श्लोक २०—२१—सर्वग्रास ग्रहणके आरंभ कालका परिलेख खींचनेकी रीति । श्लोक २२—सर्वग्रास ग्रहणके अंतकालका परिलेख खींचनेकी रीति । श्लोक २३—किस प्रकारके चंद्र ग्रहणमें चन्द्रमाका रंग काला, भूरा, इत्यादि होता है । श्लोक २४—परिलेख खींचनेकी रीति किसको बतलानी चाहिए ।]

इस अध्यायका नाम किसी किसी प्रतिमें छेद्यकाधिकार भी है । दोनोंका अर्थ एक है । छेद्यककी तुलनामें परिलेख सरल है, इसलिए यहां परिलेखाधिकार ही लिखा गया है ।

प्रयोजन—

> न छेद्यकमृते यस्माद्भेदा ग्रहणयोः स्फुटाः ।
> ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥१॥

अनुवाद—(१) छेद्यक, परिलेख या चित्रके बिना सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणोंके भेदका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता कि बिम्बकी किस दिशासे ग्रहणका आरंभ, किस दिशासे मोक्ष तथा कितना ग्रास होगा । इसलिए छेद्यक बनानेका उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ ।

परिलेख खींचनेकी रीति—

सुसाधितायामवनौ विन्दुं कृत्वा ततो लिखेत् ।
सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ॥२॥
ग्राह्यग्राहकयोगार्धसम्मितेन द्वितीयकम् ।
मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ॥३॥
याम्योत्तरा प्राच्यपरा साधनं पूर्ववद्दिशाम् ।
प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ॥४॥
यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः ।
मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥५॥
वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं यद्यत्र संस्पृशेत् ।
तत्समासे ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमौक्षिकौ ॥६॥
विक्षेपाग्रात्पुनः सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
तद्ग्राह्यविन्दुसंस्पर्शाद्ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥७॥
नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम् ।
विपरीताः शशाङ्कस्य तद्वशादथ मध्यमम् ॥८॥
वलनं प्राङ्मुखं देयं तद्विक्षेपैकता यदि ।
भेदे पश्चान्मुखं देयमिन्दोर्भानोर्विपर्ययात् ॥९॥
वलनाग्रात् पुनः सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
मध्यसूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥१०॥

विक्षेपाग्रात्लिखेद् वृत्त ग्राहकार्धेन तेन यत्।
ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद्ग्रस्तं तमसा भवेत्॥११॥

छेद्यकं लिखता भूमौ फलके वा विपश्चिता।
विपर्ययो दिशां कार्यः पूर्वापर कपालयोः॥१२॥

अनुवाद—(२) अच्छी तरह शोधी हुई समतल भूमिपर एक बिन्दु स्थिर करके और उसीको केन्द्र मानकर ४९ अंगुल-के व्यासार्धका एक वृत्त खींचो। इसे वलनाश्रित वृत्त कहते हैं। (३) उसी केन्द्रसे एक दूसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध छाद्य और छादक बिम्बोंके व्यासार्धों के योगके अर्थात् मानैक्यखंडके समान हो। इस वृत्तको समास वृत्त कहते हैं। इसी तरह उसी केन्द्रसे एक तीसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध उस ग्रहके बिम्बके व्यासार्धके समान हो जिसपर ग्रहण लगता है। (४) इसी बिन्दुसे होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा तथा पूर्व-पश्चिम-रेखा पहले (त्रिप्रश्ना-धिकार श्लो० ३, ४ में) बतलायी हुई रीतिके अनुसार खींचो। चन्द्रग्रहणमें स्पर्श पूर्व दिशासे और मोक्ष पश्चिम दिशासे होते हैं परन्तु सूर्यग्रहणमें इसके विपरीत होता है अर्थात् सूर्य ग्रहणमें स्पर्श पच्छिमसे और मोक्ष पूर्वसे होता है। (५) चंद्रग्रहणमें चंद्रमाके स्पर्शकालिक स्फुट वलनकी ज्या जितनी हो पूर्व बिन्दुसे उतने ही अंतरपर और उसी दिशामें जिस दिशाका स्फुट वलन हो केन्द्रसे वलनाश्रित वृत्ततक एक रेखा खींचो। इसी प्रकार चन्द्रमाके मोक्षकालिक स्फुटवलन-की ज्या जितनी हो, पच्छिम बिन्दुसे उतने ही अन्तरपर परन्तु स्फुटवलनकी दिशाकी विपरीत दिशामें केन्द्रसे वलना-

श्रित वृत्ततक एक दूसरी रेखा खींचो। सूर्यग्रहणमें उपर्युक्त रेखाओंकी दिशाओंका क्रम उनके विपरीत होता है जो चन्द्रग्रहणमें बतलायी गयी हैं। इन रेखाओंको वलनाग्र रेखा कहते हैं और यह रेखाएं वलनाश्रित वृत्तको जहां काटती हैं उसे वलनाग्र बिन्दु कहते हैं। (६) वलनाश्रित वृत्तपर (५ वें श्लोकके अनुसार) स्पर्श और मोक्षकालके जो वलनाग्र बिन्दु बनाये जाते हैं उनसे केन्द्रतक जो रेखाएं जाती हैं वे समास वृत्तको जिन बिन्दुओंपर काटती हैं उनसे चन्द्रमाके स्पर्श कालिक और मोक्षकालिक शरोंके अंतरपर केन्द्रसे समास-वृत्तक रेखाएं खींचो। यह रेखाएं समासवृतको जहां काटती हैं उन बिन्दुओंको विक्षेपाग्र बिन्दु कहते हैं। (७) इन विक्षेपाग्र बिन्दुओंसे केन्द्रतक जो रेखाएं जाती हैं ग्राह्य बिम्बको जिन बिन्दुओंपर काटती हैं उन्हींको क्रमा-नुसार स्पर्शबिन्दु और मोक्ष बिन्दु कहते हैं।

(८) सूर्य ग्रहणके परिलेखमें विक्षेपाग्रबिन्दु उसी दिशामें बनाओ जिस दिशामें चन्द्रमाका शर हो परन्तु चन्द्रग्रहणके परिलेखमें विक्षेपाग्र बिन्दुकी दिशा चन्द्रमाके शरकी दिशाके विपरीत होती है। इसीके अनुसार मध्यग्रहण कालका भी विक्षेपाग्र बिन्दु बनाओ।

(९) चन्द्रग्रहणके मध्यकालके परिलेखमें यदि मध्यकाल-के स्फुटवलन और विक्षेपकी दिशाएं एक हों तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण-रेखाके पूर्वमें बनाना चाहिए। परन्तु यदि स्फुटवलन और विक्षेपकी दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखाके पश्चिममें बनाना चाहिए। यदि विक्षेपकी दिशा दक्षिण हो तो उत्तर बिन्दुसे पूर्व या पश्चिम

चलनाग्रबिन्दु बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेपकी दिशा उत्तर हो तो दक्षिण बिन्दुसे पूर्व या पच्छिम वलनाग्र बिन्दु बनाना चाहिए। सूर्यग्रहणके मध्यकालके परिलेखमें इसके विपरीत करना चाहिए अर्थात् यदि वलन और विक्षेप दोनों-की दिशाएं एक हों तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पच्छिमकी ओर और यदि दोनोंकी दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पूर्वकी ओर बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेपकी दिशा दक्षिण हो तो दक्षिण बिन्दुसे और उत्तर हो तो उत्तर बिन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र बिन्दु होना चाहिए।

(१०) मध्यग्रहणके वलनाग्र बिन्दुसे केन्द्रतक एक रेखा खींचो। इसी रेखापर वलनाग्र बिन्दुकी दिशामें केन्द्र से विक्षेपके अंतरपर एक बिन्दु बनाओ, इसीको मध्यकाल-का विक्षेपाग्र बिन्दु कहते हैं।

(११) विक्षेपाग्र बिन्दुको केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक-के व्यासार्धके समान त्रिज्यासे एक वृत्त बनाओ। यह वृत्त छाद्य बिम्बको (चन्द्र ग्रहणमें चंद्र बिम्ब और सूर्य-ग्रहणमें सूर्य बिम्बको) जहां तक ढक लेता है उतना ही ग्रहणका परम ग्रस्त भाग होता है।

(१२) ज्योतिषीको चाहिए कि समतल भूमिपर अथवा फलक (काठके तख्ते) पर परिलेख बनावे। पूर्व कपालमें दिशाओंका जो क्रम रहता है उसके विपरीत पच्छिम कपालमें होना चाहिए अर्थात् पूर्व कपालमें जहां क्रम-क्रम-पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर दिशाएँ होंगी वहां

पश्चिम कपालमें क्रमानुसार पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाएं होंगी।

विज्ञान भाष्य:—इन श्लोकोंमें ग्राह्य बिम्बको स्थिर मानकर उसके जितने अंतरपर और जिस दिशामें ग्राहकका केन्द्र ग्रहणके स्पर्श, मध्य और मोक्ष कालमें होता है उसको रेखागणितकी सहायतासे जाननेकी रीति बतलायी गयी है। चंद्र ग्रहणमें चन्द्रमा ग्राह्य और भूछाया ग्राहक होती है। सूर्य ग्रहणमें सूर्य ग्राह्य और चन्द्रमा ग्राहक होता है। अब श्लोकोंके क्रमसे प्रत्येक रीति की व्याख्या की जाती है:—

श्लोक २—चंद्रग्रहणाधिकार श्लोक २४-२५ तथा पृष्ठ ६७८-६८७ में बतलाया गया है कि स्फुटवलन क्या है और इससे क्रान्ति वृत्तका ज्ञान कैसे होता है। वहां यह भी बतलाया गया है कि स्फुटवलनकी ज्या को ७० से भाग देनेपर इसकी ज्याका परिमाण अंगुलोंमें आ जाता है। इस प्रकार त्रिज्याका मान ४९ अंगुल के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या ३४३८ कलाओंकी होती है जिसको ७० से भाग देनेपर लब्धि ४९.१ आती है जिसे पूर्णाङ्कों में ४९ ही समझना चाहिए। इसी लिए इस श्लोक में ४९ अंगुलके व्यासार्धका वलनाश्रितवृत्त खींचने की रीति बतलायी गयी है। इस वृत्तसे स्फुटवलन बतलानेवाली रेखा सहज ही खींची जा सकती है। भास्कराचार्य तथा अन्य आचार्यों ने वलनाश्रित वृत्तके खींचनेका नियम नहीं बतलाया है। उन्होंने केवल इतना लिखा है कि समासवृत्तपर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चिन्ह बनाकर स्फुटवलनके परिमाणका कोण दिशाके अनुसार बना लेना चाहिए।

श्लोक ३—इस श्लोकमें समास वृत्त और जिस ग्रहमें ग्रहण लगता है उसके बिम्बका वृत्त अर्थात् ग्राह्य-बिम्बवृत्तके खींचनेकी बात है। पर यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया है कि इसका परिमाण क्या होना चाहिए। यदि ७० कलाओंका एक अंगुल माना जायगा तो समास-वृत्त और ग्राह्य-बिम्ब-वृत्त बहुत छोटे होंगे क्योंकि ग्राह्य-बिम्ब-वृत्तका व्यासार्ध १६ कला अथवा एक अंगुलके चौथे भागसे भी कम होता है और समास-वृतका व्यासार्ध १ अंगुलके लगभग होता है। इस लिए इन वृत्तोंके लिए ७० कलाओंका एक अंगुल मानने में सुबिधा नहीं होगी। ऐसी दशामें चंद्रग्रहणाधिकारके ६६ वें श्लोकमें जिस अंगुलकी चर्चा है उसे काममें लाना चाहिये। परन्तु उसमें अंगुलका जो मान दिया गया है वह उन्नत कालके अनुसार बदलता हुआ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ६८८)। परन्तु मैं समझता हूं कि यदि अंगुलका परिमाण सदा ३ कलाका माना जाय तो विशेष हानि नहीं हो सकती क्योंकि जैसा पृष्ठ ६८९ में बतलाया गया है वलनके कारण सूर्य या चन्द्रबिम्बके आकारोंमें उदय या अस्त कालमें ही अधिक अन्तर देख पड़ता है। अन्य समयमें यह अन्तर इतना कम होता है कि उसपर विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। इसलिए यहां मैं ३ कलाका एक अंगुल मानना सुगम समझता हूँ, इसमें कुछ संस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

श्लोक ४—इसके पूर्वार्धमें यह बतलाया गया है कि जिस बिन्दुको केन्द्र मानकर वलनाश्रित वृत्त, समास-वृत्त और ग्राह्यबिम्ब-वृत्त खींचनेको कहा गया है उसी बिन्दु से उत्तर-

दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं त्रि०प्र०-श्लोक २-४ तथा चित्र ७४ के अनुसार खींचना चाहिए। उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहणमें स्पर्श चन्द्र-विम्बके पूर्व भागमें होता है और मोक्ष पच्छिम भागमें होता है; परन्तु सूर्यग्रहण-में स्पर्श सूर्य-विम्बके पच्छिम भागमें होता है और मोक्ष पूर्व भागमें होता है। इसका कारण स्पष्ट है। चन्द्रमा आकाशमें पूर्वकी ओर चलता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा करता है इस लिए जिस समय वह पृथ्वी की छाया में प्रवेश करने लगता है उस समय उसका पूरब वाला भाग ही पहले पहल छायामें घुसता है। इसी प्रकार चंद्र विम्बका पच्छिम वाला भाग ही मोक्षके समय छायासे, अलग होता है। परन्तु सूर्य ग्रहणमें चन्द्रविम्ब पच्छिमसे पूर्वकी ओर बढ़ता हुआ सूर्य विम्बको ढक लेता है इस लिए स्पर्शके समय सूर्यविम्बका पच्छिम वाला भाग ढकने लगता है और मोक्षके समय सूर्य विम्बका पूर्व वाला भाग चन्द्र विम्बसे अलग होता है।

श्लोक ५—चंद्रग्रहणके स्पर्श कालमें चंद्रमाके स्फुट वलनकी जो दिशा होती है पूर्व विन्दुसे उसी दिशामें स्फुट वलनके अंतरपर वलनाश्रित वृत्तपर चिह्न करना चाहिए। परन्तु मोक्षकालमें स्फुटवलनकी जो दिशा हो उसके विरुद्ध दिशामें पच्छिम विन्दुसे यह चिह्न करना चाहिए। इन चिह्नोंको वलनाग्र-विन्दु कहते हैं। मोक्ष कालमें दिशाके उलट देनेका कारण पृष्ठ ६८० के चित्र १०१से स्पष्ट हो जाता है। वहां यह दिखलाया गया है कि ग्रहके प्राची अर्थात् पूर्व विन्दुसे जिस समय क्रान्तिवृत्त उत्तरकी ओर होता है उसी

समय प्रतीची अर्थात् पश्चिम बिन्दुसे क्रान्तिवृत्त दक्खिन-की ओर है। इस लिए जिस समय स्फुट वलनकी दिशा उत्तर कही जाती है उस समय वह पूर्व बिन्दुमें उत्तरकी ओर होती है न कि पश्चिम बिन्दुसे। परन्तु स्फुट वलनकी जो दिशा चन्द्रग्रहणाधिकारके २४-२५ श्लोकोंसे सिद्ध होती है वह पूर्व बिन्दुसे ही समझी जाती है इस लिए उस नियमके अनुसार मोक्षकालिक वलनकी जो दिशा आती है वह पूर्व बिन्दुके ही अनुसार आती है परन्तु चन्द्रग्रहणमें मोक्ष पश्चिम बिन्दुकी ओर होता है इस लिए इस बिन्दुसे स्फुटवलनका कोण बनानेके लिए अथवा क्रान्तिवृत्तकी दिशा जाननेके लिए स्फुटवलनकी दिशा उलट दी जाती है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसके विपरीत सूर्यग्रहण-में करना चाहिए। अर्थात् स्पर्श कालमें स्फुटवलनकी जो दिशा हो उसके विपरीत दिशामें पश्चिम बिन्दुसे वलनाग्र बिन्दु बनाना चाहिए, परन्तु मोक्ष कालमें पूर्व बिन्दुसे स्फुटवलनकी दिशामें ही वलनाग्र बिन्दु बनाना चाहिए। इसका कारण स्पष्ट है। सूर्य ग्रहणमें स्पर्श सूर्यबिम्बके पश्चिमकी ओर और मोक्ष पूर्वकी ओर होता है। परन्तु पश्चिमकी ओर स्फुटवलनकी दिशा उलट जाती है जैसा ऊपर कहा गया है। इस लिए सूर्यग्रहणमें स्पर्शकालिक वलनकी दिशाको उलटना पड़ता है परन्तु मोक्षकालिक वलनकी दिशामें कोई फेरफार नहीं करना पड़ता।

श्लोक ६-८—वलनाग्र बिन्दुसे जो रेखा वलनाश्रित वृत्त अथवा समास-वृत्त वा ग्राह्यबिम्बके केन्द्रतक खींची जाती है उससे केवल यह जाना जासकता है कि क्रान्ति वृत्तकी दिशा

क्या है। सूर्य ग्रहणमें ग्राह्य बिम्ब सूर्य ही होता है और सूर्य सदैव क्रान्तिवृत्तपर रहता है इसलिए केन्द्रसे वलनाग्र विन्दु तक आनेवाली रेखा क्रान्तिवृत ही समझी जा सकती है। परन्तु चन्द्र ग्रहणमें ग्राह्यबिम्ब चन्द्रमा होता है और चन्द्रमा क्रान्ति वृत्तसे अपने शरके समान अंतरपर उत्तर या दक्षिण होता है इस लिए चन्द्र बिम्बके केन्द्रसे वलनाग्रविन्दुतक जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्त कदापि नहीं हो सकती। यह इसके समानान्तर होती है। चाहे सूर्यग्रहण हो चाहे चन्द्रग्रहण, दोनों दशाओंमें छादकका केन्द्र वलनाग्र विन्दुसे केन्द्रतक आनेवाली रेखापर नहीं होता क्योंकि सूर्यग्रहणमें छादक चन्द्रमा होता है जो क्रान्तिवृत्तपर नहीं चलता और चन्द्रग्रहणमें छादक भूछाया होती है जो चंद्रमाकी कक्षामें नहीं चलती इस लिए स्पर्श या मोक्ष कालमें छादकके केन्द्रका पता लगानेके लिए उस विन्दुसे जहां वलनाग्र रेखा समास वृत्तको काटती है चन्द्र-विक्षेपके अंतरपर समास-वृत्तक केन्द्रसे एक रेखा खींचते हैं। यह रेखा समास-वृत्तको जहां काटती है उसे विक्षेपाग्र बिंदु कहते हैं। स्पर्श या मोक्षके समय छादकका केन्द्र इसी विन्दु पर होता है। इसलिए यदि इस विन्दुको केन्द्र मानकर छादकके व्यासार्धसे एक वृत्त खींचा जाय तो यह ग्राह्यबिम्बको जहां स्पर्श करेगा वहीं ग्रहणका स्पर्श या मोक्ष होगा। विक्षेपाग्र विन्दुसे केन्द्रतक जो रेखा खींची जाती है उससे भी स्पर्श या मोक्षका स्थान जाना जासकता है क्योंकि जिस विन्दुपर छादक और छाद्य बिम्ब स्पर्श करते हैं उसी विन्दुपर विक्षेपाग्र विन्दुसे केन्द्र-तक खींची जानेवाली रेखा भी ग्राह्य बिम्बको काटती है (देखो पृष्ठ ६६६ चित्र १००)। इस चित्रमें च को ग्राह्य बिम्ब

का केन्द्र समझ लिया जाय तो च से क्रान्तिवृत्त छप के समानान्तर जो रेखा खींची जायगी वह केन्द्र से वलनाग्र बिन्दु-तक जानेवाली रेखा कही जा सकती है। भूछाया छ से इस रेखाका जो अंतर होता है वह च के शरके समान होता है। च को केन्द्र मानकर च छ के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही समास वृत्त होगा। च से जानेवाली वलनाग्र रेखा समास वृत्तको जहां काटेगी वहांसे च छ का अंतर भी चन्द्रमाके शरके समान होगा। इस प्रकार सातवें श्लोकमें बतलाये गये नियमकी उपपत्ति सिद्ध हुई।

छठें श्लोकमें यह नहीं बतलाया गया है कि वलनाग्र रेखाकी किस दिशामें विक्षेपाग्र रेखा खींचनी चाहिए। यह ८ वें श्लोकमें बतलाया गया है। सूर्य-ग्रहणमें विक्षेपाग्र रेखा उसी दिशामें खींचनी चाहिए जिस दिशामें चंद्रमाका शर हो अर्थात् यदि चन्द्र शरकी दिशा उत्तर हो तो विक्षेपाग्र रेखा भी वलनाग्र रेखासे उत्तर होनी चाहिए, और यदि चन्द्र शर दक्खिन हो तो विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखासे दक्खिन खींचनी चाहिए। इसका कारण चित्र १०० पृष्ठ ६६६ से स्पष्ट है। यदि इस चित्रमें छ को सूर्य बिम्बका केन्द्र* मान लिया जाय और क्रान्तिवृत्त छ प को चन्द्रकी कक्षा च प से उत्तरमें मान लिया जाय तो चन्द्रशर दक्खिन होता है। ऐसी दशामें चन्द्रमा सूर्यबिम्बको ऐसे बिन्दुपर स्पर्श करता है जो सूर्य बिम्बके दक्षिणार्धमें है। अर्थात् जब

* यदि छ को सूर्य बिम्बका केन्द्र तथा इसके वृत्तको सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो इसी चित्रसे सूर्य ग्रहणके सम्बन्धकी सारी बातें जानी जा सकती हैं।

चन्द्रशर दक्खिन होता है तब चन्द्रमा सूर्यबिम्बको दक्खिन की ओर स्पर्श करता है। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि यदि चन्द्रमाका शर उत्तर हो तो यह सूर्य बिम्बको उत्तरकी ओर स्पर्श करेगा।

परन्तु चन्द्रग्रहणमें इसके विपरीत होता है। यह भी इसी चित्रसे स्पष्ट होता है, यदि छ को भूछायाका केन्द्र मान लिया जाय। चित्रमें चन्द्रशर दक्खिन दिखलाया गया है। ऐसी दशामें भूछाया चन्द्रबिम्बको ऐसे बिन्दुपर स्पर्श करती है जो चन्द्र बिम्बके उत्तरकी ओर है। इसी प्रकार यदि चंद्रशर उत्तर हो तो सिद्ध हो सकता है कि भूछाया चन्द्रबिम्बको दक्षिणकी ओर स्पर्श करेगी। इसलिये यह नियम हो गया कि चन्द्रग्रहणमें स्पर्श बिन्दुकी दिशा चन्द्रशर-की दिशा के विपरीत होनी चाहिये अर्थात चंद्रग्रहणमें विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखासे उस दिशामें खींचनी चाहिये जो चन्द्रशरकी दिशाके विपरीत हो।

मोक्षकालके विक्षेपकी दिशा भी इसी नियमके अनुसार निश्चय करनी चाहिये। यदि चन्द्रशरकी दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमाका मोक्ष चन्द्रबिम्बके उत्तरार्धमें होता है जैसा कि उपर्युक्त चित्रमें चन्द्रमाकी ची स्थितिमें दिखलाया गया है। परन्तु सूर्य ग्रहण में सूर्यका मोक्ष सूर्य बिम्बके दक्षिणार्धमें होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रशरकी दिशा उत्तर हो तो चन्द्रमाका मोक्ष चन्द्रबिम्बके दक्षिणार्धमें और सूर्य-का मोक्ष सूर्य बिम्बके उत्तरार्धमें होता है।

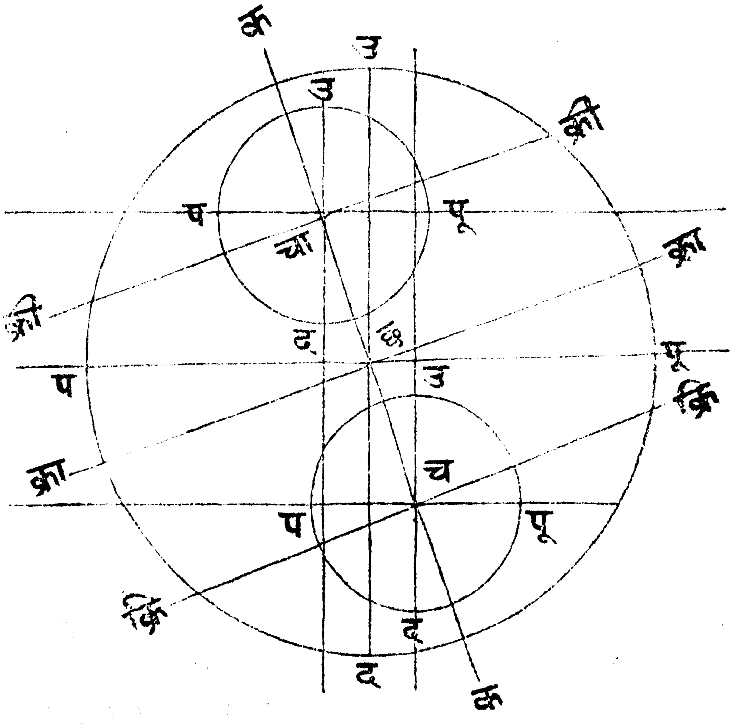
मध्य ग्रहणकालमें भी विक्षेपकी दिशा इसी नियमसे निश्चयकी जा सकती है। उसी चित्रसे यह प्रकट है कि

जब चन्द्रशर दक्षिण होता है तब चन्द्रग्रहणके मध्यकालमें भूछायाका केन्द्र चन्द्र-बिम्बसे उत्तर होता है परन्तु सूर्य ग्रहणके मध्यकालमें चन्द्रमा सूर्य-बिम्बके केन्द्रसे दक्षिण होता है। इसी प्रकार जब चन्द्र शर उत्तर होता है तब चन्द्र ग्रहण के मध्यकालमें भूछायाका केन्द्र चन्द्र-बिम्बसे दक्षिण होता है और सूर्यग्रहणके मध्यकालमें चन्द्रमा सूर्य बिम्बके केन्द्रसे उत्तर होता है।

श्लोक ६—चन्द्रमाके मध्यग्रहणकालमें यदि चन्द्र शर और स्फुट वलनकी दिशा एक हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पूर्व बनाना चाहिये परन्तु यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो अर्थात् स्फुटवलन उत्तर और चन्द्रशर दक्षिण हो अथवा स्फुटवलन दक्षिण और चन्द्रशर उत्तर हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर दक्षिण रेखासे पच्छिम होना चाहिये। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि चन्द्रशर दक्षिण हो तो उत्तर-बिन्दुसे पूर्व या पच्छिम को ओर वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो दक्षिण-बिन्दुसे पूर्व या पच्छिमकी ओर वलनाग्र-बिन्दु बनाया जाय।

परन्तु सूर्य-ग्रहणके मध्यकालका परिलेख खींचनेके लिए ऊपर जो कुछ चन्द्र ग्रहणके सम्बन्धमें कहा गया है उसके विपरीत होना चाहिये। अर्थात् यदि चन्द्रशर और स्फुटवलनकी दिशा एक हो तो वलनाग्र-बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पच्छिमकी ओर और यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्खिन रेखासे पूर्वकी ओर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहे कि यदि चन्द्रशर

दक्खिन हो तो दक्खिन-बिन्दुसे पूर्व या पश्चिमकी ओर वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो उत्तर बिन्दुसे पूर्व या पश्चिम वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय। चित्र १०२ से इसका ठीक ठीक ज्ञान सहज ही हो सकता है। चन्द्रग्रहणके सम्बन्धमें जो भूछाया है वही सूर्य ग्रहणके संबन्धमें सूर्य बिम्ब समझ लेनेसे यही चित्र चन्द्रग्रहण और सूर्य ग्रहण दोनोंके लिए काम दे सकता है।



चित्र नं० १०२

छ=भूछाया या सूर्यबिम्ब का केन्द्र

च=चन्द्र बिम्बका केन्द्र जब चन्द्रशर दक्षिण है।

चा=चन्द्रबिम्बका केन्द्र जब चन्द्रशर उत्तर है।

पू=उस बिम्बका पूर्व बिन्दु जिसकी परिधिपर यह अक्षर है।

प=उस बिम्बका पच्छिम बिन्दु जिसकी परिधिपर यह अक्षर है।

उ=उस बिम्बका उत्तर बिन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

द=उस बिम्बका दक्षिण बिन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

क्राक्रा=क्रान्ति वृत्त

कक=कदम्बप्रोत वृत्त

क्रिक्रि या क्रिक्रो चन्द्रमाके केन्द्रसे जाता हुआ क्रान्ति वृत्तके समानान्तर वृत्त

इस चित्रमें स्फुटवलन उत्तरकी ओर दिखलाया गया है। इस लिए प्रत्येक बिम्बके केन्द्रसे जाती हुई पूप रेखाके पू बिन्दुसे क्रान्तिवृत्त क्राक्रा उत्तरकी ओर है। इस चित्रसे नीचे लिखी बातें स्वयम् सिद्ध हैः—

(१) चन्द्र ग्रहणके समय जब चन्द्रमा च पर और भू छाया छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण } भूछायाका केन्द्र छ चन्द्रमाके उत्तर बिन्दु
स्फुटवलन उत्तर } उ से पच्छिमकी ओर

(२) चन्द्र ग्रहणके समय जब चन्द्रमा चा पर और भूछाया छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर } भूछायाका केन्द्र छ चन्द्रमाके दक्षिण
स्फुटवलन उत्तर } बिन्दु द से पूर्वकी ओर

(३) सूर्य ग्रहणके समय जब चन्द्रमा च पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण स्फुटवलन उत्तर	}	चन्द्रमा का केन्द्र च सूर्य बिम्बके दक्षिण बिन्दु द से पूर्व की ओर

(४) सूर्य ग्रहणके समय जब चन्द्रमा आ पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर स्फुटवलन उत्तर	}	चन्द्रमा का केन्द्र चा सूर्य बिम्बके उत्तर बिन्दु उ से पश्चिमकी ओर

इसी प्रकार यदि प्रत्येक बिम्बके केन्द्रसे जानेवाली का का रेखा पू प रेखा के प बिन्दु से दक्षिणकी ओर खींची जाय तो स्फुटवलनकी दिशा दक्खिनकी ओर होगी इस दशा-में भी यह स्पष्ट हो जायगा कि श्लोक ९ का नियम बिलकुल ठीक उतरता है। चित्र खींचते समय इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि छ से च आ च भी जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्त-के समकोणपर अथवा कदम्बप्रोत वृत्तपर हो।

श्लोक १०—जब श्लोक ९ के अनुसार मध्य ग्रहण कालका वलनाग्र बिन्दु जान लिया जाय तब केवल यह जानना रह जाता है कि इस वलनाग्र बिन्दुसे ग्राह्य बिम्बके केन्द्रतक जानेवाली रेखाके किस बिन्दुपर ग्राहकका केन्द्र है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मध्य ग्रहण कालमें ग्राह्य और ग्राहक बिम्बों-के केन्द्रोंका अन्तर चन्द्रमाके शरके समान होता है। इसलिये ग्राह्यबिम्बके केन्द्रसे वलनाग्र बिन्दुकी दिशामें चन्द्रशरके अन्तर पर ग्राहकका केन्द्र नाप कर स्थिर कर लेना चाहिये।

श्लोक ११—ग्राहकके इसी केन्द्रपर ग्राहक बिम्बके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वही ग्राहकका बिम्ब सूचित करेगा। यह वृत्त ग्राह्य बिम्ब का जितना भाग ढक लेगा वही बिम्बका ग्रस्त भाग होगा। यदि ग्राह्यका पूरा बिम्ब ग्रा-

तक वृत्तसे ढक जायगा तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा, नहीं तो खंडग्रास ग्रहण होगा। इसकी उपपत्ति पृष्ठ ६५७ के चित्र ६६ के संबन्धमें बतलायी जा चुकी है।

श्लोक १२—इस श्लोकमें यह बतलाया गया है कि सम-तल भूमिपर अथवा काठ या किसी अन्य वस्तुकी तख्तीपर परिलेख खींचा जा सकता है। फलककी जगह काग़ज़ भी आजकल सुगमतासे प्रयोग किया जा सकता है।

इस श्लोकके उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि पूर्व कपालके परिलेखमें दिशाओंका जो क्रम हो पच्छिम कपालके परिलेखमें उसके विपरीत होना चाहिये। परन्तु यह बात समझमें नहीं आती क्योंकि यदि ग्रहण-का स्पर्श पूर्व कपालमें हो और मोक्ष पच्छिम कपालमें, जैसा कि प्रायः होता है, तो एक ही ग्रहण-के स्पर्शकाल या सम्मीलन कालका परिलेख उन्मीलन या मोक्षकालके परिलेखसे भिन्न होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात न तो व्यवहारमें सुविधाजनक है और न बहुत आवश्यक ही है। इसके सिवा अगले श्लोकोंमें सम्मीलन और उन्मीलन-की दिशाएँ जाननेकी जो रीतियां बतलायी गयी हैं वे तभी सम्भव हैं जब एक ही परिलेखसे काम लिया जाय। अन्य आचार्योंने इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। केवल ब्रह्म-स्फुट सिद्धान्तके ग्रहणान्तराध्यायके श्लोक* २६ में यह लिखा

---

* प्राक्परे विपरीते विपरीतं वलयवलनमर्केन्द्वोः।
पूर्ववदन्यत् सर्वं फलके स्वे ग्रहण परिलेखाः॥ २६॥

हुआ है कि फलकपर यदि परिलेख बनाया जाय तो इसपर जो दिशाएँ अंकितकी जायंगी वे भूमिके परिलेखकी दिशाओंके विपरीत होंगी। इसका कारण यह है कि भूमिके परिलेखमें दिशाओंका क्रम वह है जो त्रिप्रश्नाधिकारके श्लोक १-४ में बतलाया गया है। परन्तु फलकके परिलेखमें यह सुविधा भी होती है कि उसको हम ग्राह्य बिम्बकी ओर उलटकर रख सकते हैं और स्पर्श या मोक्ष विन्दुकी दिशाका ज्ञान सहजही कर सकते हैं। ऐसी दशामें फलकपर हमारे बायें हाथकी ओर पूर्व, दाहिने हाथकी ओर पच्छिम, ऊपरकी ओर उत्तर और नीचेकी ओर दक्खिन होगा। परन्तु भूमिके परिलेखमें हमारे दाहने हाथकी ओर पूरब, बायें हाथकी ओर पच्छिम, उत्तर-की ओर उत्तर और दक्षिणकी ओर दक्षिण होता है।

सूर्यसिद्धान्तके टीकाकारोंने तो यही लिखा है कि पूर्व या पच्छिम कपालके भेदसे दिशाओंके क्रममें भिन्नता कर देनी चाहिये। परन्तु मुझे इसके कारणका ज्ञान अभीतक नहीं हुआ। इसलिए मैं इसका अर्थ पद्धतिके विरुद्ध जैसा कि ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तमें बतलाया गया है करता हूं। आशा है इस-पर कोई सज्जन अपना मत प्रकट करेंगे और इसका कारण बतलानेकी कृपा करेंगे।

जिसकी टीका सुधाकरजी इस प्रकार करते हैं—फलके प्राच्यपरे विपरीते कार्ये। भूमौ यः प्राग्बिन्दुः पश्चिम विन्दुश्च फलके स पश्चिम बिन्दुः प्राग्बिन्दुः कार्यं इति। अर्केन्द्वोर्भ्रमणवलनं यथादिशमागतं विपरीतं कार्यंच।

ग्रहण देखना कब सम्भव है:—

स्वच्छत्वाद् द्वादशांशोपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते ।
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न विवस्वतः ॥१३॥

अनुवाद—(१३) चन्द्रमाका १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छताके कारण देखा जासकता है परन्तु सूर्यकी तीन कला भी ग्रस्त हो तो सूर्यकी तीक्ष्णताके कारण नहीं देख-पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इसका अर्थ करनेमें टीकाकारोंने बड़ा मत-भेद प्रकट किया है। आचार्य रंगनाथजी, तथा उनके अनु-यायी माधव पुरोहित जी और पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी जी यह अर्थ लगाते हैं कि चन्द्रमाका १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छताके कारण नहीं देख पड़ता। परंतु यह अर्थ मेरी समझमें ठीक नहीं जंचता। स्वच्छताका अर्थ तीक्ष्णता नहीं लिया जा सकता। स्वच्छताके शब्दसे ही यह बोध होता है कि चन्द्रमाकी ज्योति स्वच्छ या स्पष्ट होती है इसलिए बारहवां भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता पूर्वक स्पष्ट देखा जासकता है। जैसा अर्थ मैंने ऊपर लिखा है वैसाही अर्थ श्री विज्ञानानन्द स्वामीने अपने बंगला अनुवादके पृष्ठ २०३ पर किया है।

इस सम्बन्धमें भास्कराचार्य*, ब्रह्मगुप्त इत्यादिने लिखा है

---

*इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न दृश्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो नादेश्योतोऽल्पोग्रहो बुद्धिमद्भिः ॥१७॥
सिद्धान्त शिरोमणि, गणिताध्याय चन्द्रग्रहणाधिकार

वलनादि शशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम्।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः ॥२०॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त; सूर्यग्रहणाधिकार

कि चंद्रमाके १६ वें भागसे कम ग्रहण हो तो नहीं देखा जा सकता और सूर्यके १२ वें भागसे कम ग्रहण होतो नहीं देखा जासकता। इससेभी सूर्यसिद्धान्तके पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ वही ठीक जानपड़ता है जो मैंने किया है। ब्रह्मगुप्त जीने स्वच्छतांका शब्द इसी अर्थमें प्रयोग किया है जैसा कि इनके अवतरणोंसे प्रकट होता है।

छादकके केन्द्रका मार्ग खींचना—

स्वनञ्ज्ञितास्त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः।
तत्र प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मौक्तिक मध्ययोः ॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छविनिःसृतम्।
प्रसार्य सूत्र द्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥१५॥
तत्र सूत्रेण विलिखेत् चापं बिन्दुत्रय स्पृशा।
स पन्था ग्राहकस्योक्तौ येनासौ सम्प्रयास्यति ॥१६॥

अनुवाद—(१४) स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल में ग्राहक का केन्द्र जहां जहां होता है उन बिन्दुओं का पता विक्षेपाग्र बिन्दुओंसे ही लगाया जाता है। इन तीन बिन्दुओंमें से स्पर्श और मध्य बिन्दुओंसे तथा मध्य और मोक्ष बिन्दुओंसे (१५) मत्स्य बनावे। प्रत्येक मत्स्यको दो समान भागोंमें विभाजित करनेवाली और उसके मुख और पुच्छसे होकर निकलनेवाली रेखाएं बढ़ानेपर जिस बिन्दुपर मिलती हैं (१६) उसको केन्द्र मानकर एक ऐसा धनु बनावे जो पूर्वोक्त तीन बिन्दुओंको स्पर्श करे तो इसी धनुपर ग्रहणकालमें छादकके केन्द्रका मार्ग होता है।

विज्ञान भाष्य—यदि दो बिन्दुओंमें से प्रत्येकको केन्द्र मानकर दूसरे बिन्दु की दूरीपर दो धनु खींचे जाँय तो उनके बीचमें जो क्षेत्र बनता है वह मछलीके आकारका होता है। ऐसे आकारको तिमि या मत्स्य कहा जाता है (देखो पृष्ठ ३२७) इसी प्रकार का मत्स्य बनानेका नियम १४ वें श्लोकमें बतलाया गया है। स्पर्श और मध्यकालके छादकके केन्द्रोंसे तथा मध्य और मोक्षकालके छादकके केन्द्रोंसे जो दो मत्स्य बनाए जाते हैं उनकी सामान्य जीवाएं (common chords) बढ़ानेपर जिस बिन्दुपर मिलती हैं उसीको छादकके केन्द्रके मार्गका केन्द्र माना गया है और इसी केन्द्रसे छादकके केन्द्रोंको स्पर्श करने वाला धनु छादकके केन्द्रका मार्ग माना गया है। यह त्रिप्रश्नाधिकारके ४१वें श्लोकके भाभ्रम-रेखाके खींचनेके नियमकी तरह है, और उसी प्रकार स्थूल भी है। इस नियमसे छादकके केन्द्रका जो मार्ग सिद्ध होता है उससे यथार्थ मार्गका अंतर बहुत कम होता है। इसलिए आगे लिखे हुए श्लोकोंके अनुसार इससे जो काम लिया जाता है वह व्यवहारके लिए पर्याप्त शुद्ध है।

किसी इष्टकालमें ग्रहणका परिलेख खींचना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात्प्रोज्भ्य स्वेष्टग्रासमागतम् ।
अवशिष्टाङ्गुलसमां शलाकां मध्यबिन्दुतः ॥१७॥
तयोर्मार्गोन्मुखीं दद्यात् ग्राहकः प्राग्ग्रहाश्रिताम् ।
विमुञ्चतो मोक्ष दिशि ग्राहकार्धेन मेवसा ॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततोवृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत् ।
तेन ग्राह्याग्रदाक्रान्तं तत्तमोग्रस्तमादिशेत् ॥१९॥

अनुवाद—(१७) गणितसे आनेगये इष्टकालके ग्रासको मानैक्यखंडसे घटानेपर जो शेष आवे उसके अंगुल बनाकर इसीके समान एक शलाका अथवा सीधी लकड़ी लेकर परिलेखके केन्द्रसे (१८) यदि इष्टकाल ग्रहणके मध्यकालसे पहले हो तो स्पर्श बिन्दुकी ओर और यदि इष्टकाल मध्यकालके उपरान्त हो तो मोक्षबिन्दुकी ओर छादकके केन्द्रके मार्गपर रखो और देखो कि जब शलाकाका एक सिरा केन्द्रपर है तब इसका दूसरा सिरा छादकके केन्द्रके मार्गको कहां छूता है, (१९) जहां छूवे वहीं इष्टकालमें छादकका केन्द्र होगा। इसी बिन्दुको केन्द्र मानकर छादकके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वही इष्टकालमें छादकका बिम्ब होगा। यह छाद्य बिम्बको जितना ढक लेगा उतनाही भाग इष्टकालमें ग्रस्त होगा और इस समयका जो परिलेख होगा वही इष्ट ग्रासका परिलेख होगा।

विज्ञान भाष्य—यह काम आजकल परकारकी सहायतासे सहज ही हो सकता है। इन तीन श्लोकोंका सार यह है कि जब हमें चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १८-२० के अनुसार इष्टकालका ग्रास ज्ञात होजाय तब इसका परिलेख कैसे खींचना चाहिए। पृष्ठ ६५७ के चित्र ८८ के संबंधमें बतलाया गया है कि चन्द्रमाका ग्रस्त भाग ज झ = छभ + चज — च छ = मानैक्यार्ध —चन्द्रमाके केन्द्रसे भूछायाके केन्द्रका अंतर। इसलिए यदि मानैक्यार्धसे ग्रस्तभाग घटाया जाय तो छादक और छाद्यके केन्द्रोंकी दूरी ज्ञात हो सकती है। जब यह दूरी जान ली गयी और छाद्यका केन्द्र तथा छादकका मार्ग ज्ञातही है तब छादकका स्थान जान लेना कुछ कठिन नहीं है। यदि परकार-

के दोनों भुजोंकी नोकोंकी दूरी छादक और छाद्यके केन्द्रोंकी दूरी के समान करली जाय और छाद्यके केन्द्रको केन्द्र मानकर एक धनु खींचा जाय तो वह छादकके मार्गको दो विन्दुओंपर काटेगा। जो विन्दु मध्यबिन्दुसे स्पर्श विन्दुकी ओर होता है वहां छादक मध्यकालके पहले रहता है और जो विन्दु मध्य-बिन्दुसे मोक्ष विन्दुकी ओर होता है वहां छादक मध्यकालके पीछे रहता है। इन विन्दुको जानकर छादकके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वह छाद्यको जहांतक ढक लेगा वही ग्रस्तभाग होगा। इस प्रकार किसी इष्टकालका परिलेख सहज ही खींचा जासकता है।

सर्वग्रास ग्रहणके आरंभ या अंतका परिलेख खींचनेकी रीति—

मानान्तरार्धेनमितां शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम्।
निमीलनाख्यां दद्यात्मातन्मार्गे यत्र सम्पृशेत्॥२०॥
ततो ग्राहक खण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद् ग्राह्यमण्डल युतिर्यत्र तत्र निमीलनम्॥ २१॥
एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डल प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत्॥ २२॥

अनुवाद—(२०) परिलेखके केन्द्रसे अर्थात् ग्राह्य बिम्बके केन्द्रसे मानान्तर खंडके समान एक शलाका छादकके मार्गपर स्पर्श विन्दुकी ओर इस प्रकार रखे कि शलाकाका एक सिरा केन्द्रपर और दूसरा सिरा छादकके मार्गको स्पर्श करे। इसी स्थानपर सम्मीलनके समय छादकका केन्द्र होता है। (२१) इसको केन्द्र मान कर ग्राहकके बिम्बार्ध के व्यासार्धसे जो

वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य बिम्बके जिस बिन्दुपर स्पर्श करेगा उसी स्थानपर सम्मीलनका आरंभ होगा। (२२) इसी प्रकार मानान्तर खंडके समान शलाकाको मोक्षबिन्दुकी ओर रखा जाय तो शलाकाका सिरा छादकके मार्गको जहां स्पर्श करेगा उस बिन्दुको केन्द्र मानकर ग्राहकके व्यासार्धके समान त्रिज्यासे जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य बिम्बको जहां स्पर्श करेगा वहीं उन्मीलन होगा अर्थात् इसी बिन्दुमे सर्वग्रास ग्रहणका अंत होगा।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या करनेकी बहुत आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह चित्र १०० से स्वयम् स्पष्ट है। सम्मीलन या उन्मीलन कालके समय छाद्य और छादकके केन्द्रोंका अंतर मानान्तर खंडके समान होता है। इसलिए जब हमें छाद्यका केन्द्र, छादकका मार्ग तथा छाद्य, और छादकके केन्द्रोंका अंतर ज्ञात हैं तब छादकका केन्द्र स्थिर करना कठिन नहीं हो सकता। हाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि जब हमें सम्मीलन कालका परिलेख खींचना हो तब स्पर्शकी दिशामें और जब उन्मीलन कालका परिलेख खींचना हो तब मोक्षकी दिशामें शलाका रखनी चाहिए। यह काम भी आजकल परकारसे सहज ही लिया जा सकता है। परकार की दोनों नोकों का अंतर मानान्तर खंडके समान करके इसकी एक नोकको केन्द्र पर रखकर दूसरी नोक से एक धनु खींचे जो छादक के मार्गको दो बिन्दुओं पर काटेगी। जो बिन्दु स्पर्शकी ओर होगा वहीं सम्मीलन कालमें छादकका केन्द्र होगा और जो बिन्दु मोक्षकी ओर होगा वहीं उन्मीलन कालमें छादकका केन्द्र होगा। जब छादकका केन्द्र स्थिर कर लिया गया तब

छादकके बिम्बार्ध के समान त्रिज्यासे वृत्त खींचकर सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ और अंतका स्थान जानलेना कुछ भी कठिन नहीं होता।

ग्राह्य विम्ब का रंग कैसा होता है—

अर्धादूने सधूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकल ग्रहे ॥ २३ ॥

अनुवाद—जब चन्द्र बिम्बका आधेसे कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भागका रंग धुएँकी तरह होता है। आधेसे अधिक ग्रस्त होनेपर ग्रस्त भाग काला देख पड़ता है। जब चन्द्र बिम्बका बहुतसा भाग ग्रस्त होजाता है और थोड़ाहीसा बचा रहता है तब ग्रस्त भागका रंग लाली लिये हुए काला होता है। परन्तु सर्वग्रास ग्रहणका रंग लाली लिये हुए भूरा होता है। (सूर्यग्रहणमें सूर्य के ग्रस्त भागका रंग सर्वत्र काला होता है।)

विज्ञान भाष्य—जबतक चन्द्रमाका प्रकाश तेज रहता है तबतक इसकी तुलनामें ग्रस्त भागका रंग धूम्र या काला देख पड़ता है। परन्तु जब चन्द्रमाका थोड़ाहीसा भाग बचा रहता है तब इसका प्रकाश तेज रहित हो जाता है। इसलिए ग्रस्त भागका रंग कुछ कुछ लाल भी देख पड़ता है। लालीका कारण यह है कि सूर्य का सूक्ष्म प्रकाश वायुमंडलसे वर्तित होकर चन्द्र बिम्बपर पड़ता है इसलिए काले ग्रस्त भागपर कुछ लाली आ जाती है। जिस समय पूरा चन्द्र विम्ब छायामें आजाता है उस समय चन्द्र बिम्ब काला न होकर लाली लिए हुए भूरा देख पड़ता है। इसका कारण भी सूर्यका वर्तित

प्रकाश है जो पृथ्वीके वायुमण्डलसे घूमकर चन्द्रमापर पड़ता है। यदि वायुमण्डल न होता तो चंद्रमाके ग्रस्त भागका रंग भी सदैव काला ही होता जैसा कि ग्रस्त सूर्यका रंग होता है।

वायुमण्डलके वर्तनके कारण कभी कभी एक आश्चर्य-जनक घटना और भी देख पड़ती है। उदय या अस्तकालमें जब ग्रहण लगता है तब कभी कभी चमकते हुए सूर्यकी उपस्थितिमें ग्रस्त चन्द्रमा देख पड़ता है जिससे एक ओर चन्द्रमामें ग्रहण लगा रहता है और दूसरी ओर सूर्य अपने तेजसे पृथ्वीको प्रकाशमान किये रहता है। ऐसी* घटनाएँ सन् १६६६, १६६८ और १७५० ईस्वीमें देख पड़ी थीं।

परिलेख खींचनेका रहस्य गुप्त रखना चाहिए—

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित् ।
सुपरीक्षित शिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥ २४ ॥

अनुवाद—परिलेख खींचनेकी विद्या देवताओंकी गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे वैसे आदमीको न बतलानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्यको जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतलानी चाहिए।

इति परिलेखाधिकार नामक ६ठें अध्यायका अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—इसका सार यही जान पड़ता है कि परि-लेख खींचनेकी रीति सुगमता पूर्वक समझमें नहीं आ सकती इस लिए जो इसके तत्वको अच्छी तरह नहीं समझ सकता उसको बतलानेसे कोई लाभ नहीं है। यह जाननेके लिए कि इस

* देखो Parker's Astronomy page. 171.

विद्याका कौन अधिकारी हो सकता है एक वर्ष की अवधि बतला दी गयी है। जो शिष्य एक वर्षतक इस विद्या का अध्ययन करे वही इसके रहस्यको समझ सकता है।

अब चन्द्र-ग्रहणका परिलेख खींचनेका एक उदाहरण देकर यह बतलाया जायगा कि पाश्चात्य अर्वाचीन ज्योतिषी सूर्य ग्रहणकी गणना कैसे करते हैं और यह कैसे मालूम करते हैं कि भूभागके किन किन स्थानोंमें सर्वग्रास ग्रहण देख पड़ता है तथा किन किन स्थानोंमें कितना ग्रास देखपड़ता है। इसके उपरान्त संक्षेपमें यह भी बतलाया जायगा कि खाल्दिया और यूनान देशवाले ग्रहणकी गणना कैसे करते थे। सूर्य-ग्रहण-का परिलेख खींचनेका उदाहरण विस्तारभयसे छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाके चंद्रग्रहणका परिलेख खींचना—

यह तो प्रकटही है कि परिलेख खींचनेके लिये तात्कालिक स्फुटवलन और चद्रमाके शरके ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है और छादक ग्रहके केन्द्रका मार्ग खींचनेके लिए स्पर्शकाल, मध्यकाल और मोक्षकालके स्फुटवलनों और चंद्र-शरोंके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। इनमेंसे स्पर्श और मोक्षकाल-के स्फुटवलनोंकी गणना चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ७१८-७२१ में की गयी है। इसलिए अब ग्रहण के मध्यकाल के स्फुटवलन की गणना भी कर लेनी चाहिये।

आक्षवलनकी गणना—

चन्द्रमा का पूर्णिमान्तकालिक शर = ८-७६ अथवा ८·८ कला (पृष्ठ ७०८)

पूर्णिमान्तकालिक चंद्र-भोगांश २९८°३४' (पृष्ठ ७०८)
अयनांश २२°४०' (पृष्ठ ७१२-७१३
पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र सायनभोग ३२१°१४'
पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्तिज्या
= ज्या २३° २७' ज्या ३२१°१४'
= ·३९७९ × ज्या ३८°४६'
= ·३९७९ × ·६२६१
= ·२४९१

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति = १४°२५'·३ दक्षिण
" " शर ८'·८ उत्तर
∴ " " स्पष्ट क्रान्ति = १४° १६'·५ दक्षिण

काशीके सूर्योदयसे स्पर्श कालतकका समय	= ४५	घड़ी ५४	पल
स्थित्यर्ध	= ४	" ४२	"
सूर्योदयसे ग्रहणके मध्यकालका समय	= ५०	" ३६	"
सूर्योदयसे मध्यरात्रिका समय (पृ० ७१५)	= ४६	११	
मध्यरात्रिके उपरान्त ग्रहणका मध्यकाल	= ४	" २५	"

इसलिए ग्रहणके मध्यकालमें पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका पश्चिम नतकाल ४ घड़ी २५ पल अथवा २६५ पल या १५९० असु हुआ। यही मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका भी नतकाल हुआ क्योंकि इस समय भूछाया और चन्द्रमाके केन्द्रोंके भोगांश समान होते हैं। इसलिए

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका नतकाल = १५९० असु = १५९०' = २६° ३०'

चन्द्रमाकी मध्यग्रहणकालिक चरज्या = स्परे २५°१०' स्परे १४°१६'·५

$= \cdot ४७३४ \times \cdot २५५४$

$= \cdot १२०४$

∴ मध्यग्रहण कालिक चरांश = ६°५५′

पृष्ट ४३१ के समीकरण (ग) के अनुसार, मध्यकालके चन्द्रमाकी नतांशकोटिज्या = (कोज्या २६°३०′ – ज्या ६°५५′)

$\times$ कोज्या २५°२०′ $\times$ कोज्या १४°१६′·५

$= (\cdot ८९४९ - \cdot १२०४) \times \cdot ९०३८ \times \cdot ९६९१$

$= \cdot ७७४५ \times \cdot ९०३८ \times \cdot ९६९१$

$= \cdot ६७८४$

∴ मध्यग्रहणकालिक नतांश = ४७°१७′

पृष्ठ ४०७ के अनुसार,

क्या अग्रा $= \dfrac{\text{ज्या } १४°१६'\cdot५}{\text{ज्या } ४७°१७' \times \text{कोज्या } २५°२०'}$

+ कोस्परे ४७°१७′ × स्परे २५°२०′

$= \dfrac{\cdot २४६५}{\cdot ७३४७ \times \cdot ९०३८} + \cdot ९२३३ \times \cdot ४७३४$

$= \cdot ३०१२ + \cdot ४३७१$

$= \cdot ८०८३$

∴ अग्रा = ५३°५६′

∴ पश्चिम बिन्दुसे चन्द्रमाका मध्यग्रहणकालीन दिगंश

= ५३°५६′ दक्षिण

∴ चित्र १०१ के अनुसार,

स्परे (क उ ग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

= कोज्या ५३°५६′ स्परे ४७°१७′

= ·५८८७ × १·०८३१

= ·६३७६

∴ ख उ ग = ३२°३१′

∴ मध्यकालिक चन्द्रमाके समप्रोतवृत्तका नतांश = ३२°३१′

∴ ज्या (आक्षवलन = $\frac{\text{ज्या३२°३१′ × ज्या २५°२०′}}{\text{कोज्या १४°१६′·५}}$

= $\frac{\text{·५३७५ × ·४२७९}}{\text{·९६९१}}$

= $\frac{\text{·२३००}}{\text{·९६९१}}$

= ·२३७३

∴ आक्षवलन = १३°४४′ दक्षिण, क्योंकि चन्द्रमा पश्चिम कपालमें है।

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका सायन भोगांश = ३२१°१४′

इसमें ९०° जोड़नेपर चन्द्रमाका सायन भोगांश = ५१°१४′ जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

ज्या (आयनवलन) = $\frac{\text{ज्या २३°२७′ × ज्या ५१°१४′}}{\text{कोज्या १४°१६′·५}}$

= $\frac{\text{·३९७९ × ·७७९७}}{\text{·९६९१}}$

= $\frac{\text{·३१०२}}{\text{·९६९१}}$

= ·३२०१

∴ आयनवलन = १८°४०′ उत्तर

इस लिए मध्यग्रहणकालिक स्फुटवलन = १३°४४′ दक्षिण +
१८°४०′ उत्तर
= ४°५६′ उत्तर

इस लिए स्पर्श, मध्य और मोक्षकालके परिलेखके आवश्यक अङ्क यह हुए:—

स्पर्शकाल संबंधी—

स्फुटवलन=१६°१०′ उत्तर (पृष्ठ ७१६)

∴ ज्या १६°१०′=११२८′=$\frac{११२८}{७०}$=१६ अंगुल

चन्द्रशर=१४′′६ उत्तर (पृष्ठ ७१४)

=$\frac{१४\cdot६}{३}$ अंगुल=४·८७ अंगुल

मध्यकाल संबंधी—

स्फुटवलन=४°५६′ उत्तर

∴ ज्या स्फुटवलन=ज्या ४°५६′=२९६′ =$\frac{२९६}{७०}$=४·२३ अंगुल

चन्द्रशर=८′·८ उत्तर (पृष्ठ ७०८)

=$\frac{८\cdot८}{३}$= २·९३ अंगुल

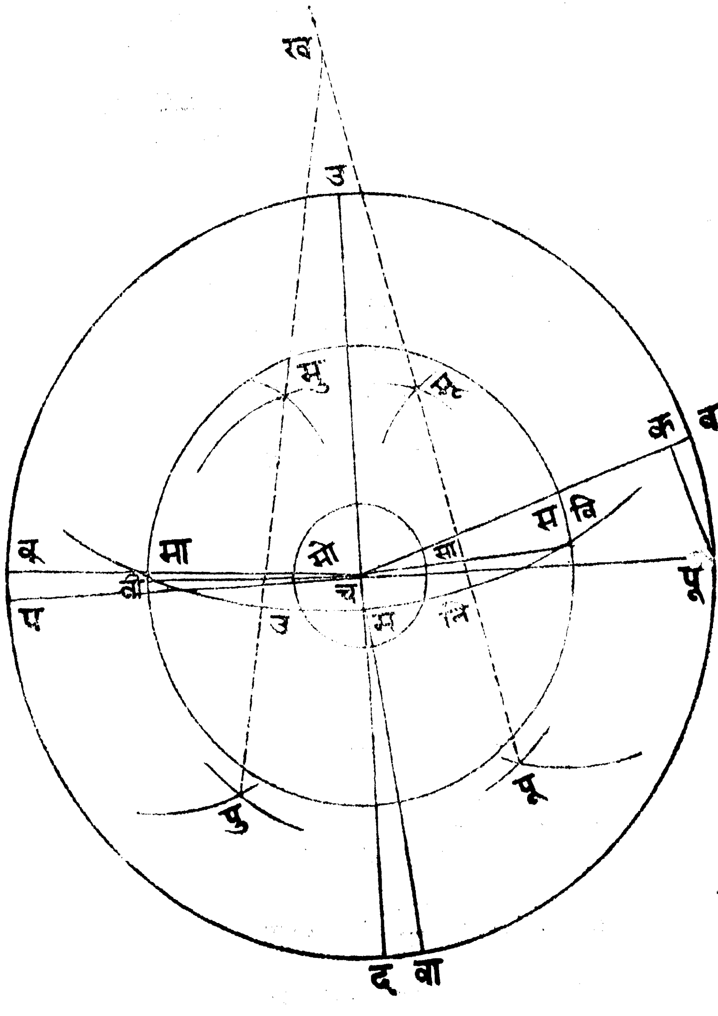
मोक्षकाल संबंधी—

स्फुटवलन= ३°५९′ दक्षिण (पृष्ठ ७२१)

∴ ज्या ३°५९′=२३९′=$\frac{२३९}{७०}$=३·४ अंगुल

चन्द्रशर = ३′ उत्तर (पृष्ठ ७१४)

= १ अंगुल



चित्र १०१

सब के लिए (देखो पृष्ठ ७००)

भूभा का व्यासार्ध = ४३′·९७ = $\frac{४३·९७}{३}$ = १४·६६ अंगुल

चन्द्रबिम्बका व्यासार्ध = १६′·६६ = १६·६६ ÷ ३ = ५·५५ अंगुल

मानैक्य खंड = ६०′·६३ = ६०·६३ ÷ ३ = २०·२१ अंगुल

मोनान्तर खंड = २७′·३१ = २७.३१ ÷ ३ = ९.१ अंगुल

यहां मैंने बिम्बों या शरों का अंगुलात्मक परिमाण जानने के लिए प्रत्येकको ३ से भाग दिया है और ३ कला का अंगुल समझा है जैसा कि ऊपर श्लोक ३ के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है। इस परिलेख में वलनाश्रितवृत्तका एक अंगुल १ मिलीमीटर के समान लिया जाता है और अन्य वृत्तों या शरों के खींचने के लिए एक अंगुल डेढ़ मिलीमीटर के समान माना जाता है।

उ पू द प = वलनाश्रित वृत्त

उ, पू, द, प, = उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम बिन्दु

स वि वी मा = समासवृत्त जिसका व्यासार्ध मानैक्यखंडके समान है।

सबसे छोटा वृत्त = चंद्रबिम्ब

च = चन्द्रबिम्ब, समासवृत्त और वलनाश्रित वृत्त का केन्द्र

च व = वलनाग्र रेखा अथवा वलनाश्रित-वृत्तकी त्रिज्या जिसका पूर्वबिन्दुसे अंतर स्पर्शकालके स्फुटवलनकी ज्या पृक के समान है।

पू च व = स्पर्शकालिक वलन

व = स्पर्श कालका वलनाग्र बिन्दु

स = स्पर्शकालकी वलनाग्र रेखा और समासवृत्तका युतिविन्दु

सवि = स्पर्शकालिक चन्द्रक्षेप या शर । यह वलनाग्र रेखाके दक्षिण की ओर खींचा गया है क्योंकि चन्द्रशर उत्तर है और यह परिलेख चन्द्र-ग्रहणका है । (श्लोक ८)

वि = स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र विन्दु अथवा स्पर्शकालिक भूछायाका केन्द्र ।

वि च = स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र रेखा

सा = विक्षेपाग्र रेखा और चन्द्र-विम्बका युति-विन्दु अथवा ग्रहणका, स्पर्श विन्दु ।

द च वा = मध्यग्रहणकालिक वलन

च वा = मध्यग्रहणकालिक वलनाग्र रेखा (श्लोक ९)

च म = च वा रेखापर मध्य ग्रहण कालिक चन्द्र विक्षेप (श्लोक १०)

म = मध्य ग्रहण कालमें भूछायाका केन्द्र । इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत खींचा जाता है उसीसे मध्य -कालिक या परम ग्रासका परिमाण जाना जाता है ।

प च वू = मोक्षकालिक वलन

च वू = मोक्षकालिक वलनाग्र रेखा

मा = मोक्षकालकी वलनाग्र रेखा और समासवृत्तका युति-विन्दु ।

मा वी = मोक्षकालिक चन्द्र विक्षेप । यह भी वलनाग्र रेखाके दक्षिण की ओर खींचा गया है ।

च वी = मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा

मो = मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा और समासवृत्तका युति विन्दु अथवा ग्रहणका मोक्ष विन्दु

वी = मोक्षकालिक भूछाया का केन्द्र

मु, पु = मध्य ग्रहण तथा मोक्षकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वी पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

मू पू = मध्यग्रहण तथा स्पर्शकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वि पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

ख = मुपु और मू पू का युति-विन्दु

वि म वी = ख को केन्द्र और ख वि को त्रिज्या मानकर खींचा हुआ धनु जो ग्रहणकालमें भूछायाके केन्द्रका मार्ग है

(श्लोक १४-१६)

च नि अथवा च उ = मानान्तर खंड

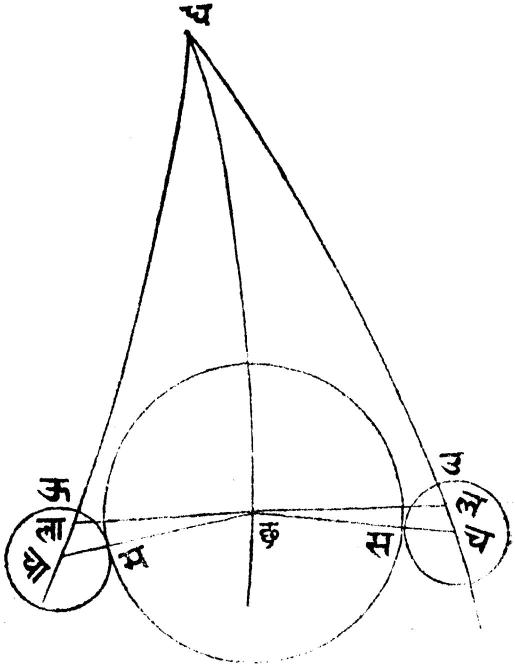
नि = निमीलन या सम्मीलन कालमें भूछायाका केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्र-विम्ब को जिस विन्दुपर स्पर्श करता है वहीं सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ होता है। (श्लोक २०-२१)

उ = उन्मीलन कालमें भूछायाका केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्-बिम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता है वहीं सर्व ग्रासका अंत होता है। (श्लोक २२)

अर्वाचीन रीति से स्पर्श बिन्दु की दिशा की गणना—

पाश्चात्य ज्योतिषी समप्रोतवृत्तकी दिशासे स्पर्श विन्दु-की दिशाकी गणना नहीं करते वरन् ध्रुवप्रोतवृत्तकी दिशा-से स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशाकी गणना करते हैं। इस लिए इनकी गणनामें स्फुटवलनके जाननेकी आवश्यकता

नहीं पड़ती । नीचे संक्षेपमें यह रीति भी बतला दी जाती है :—



चित्र १०४

छ = भूछाया का केन्द्र

ध्रु = उत्तरी आकाशीय ध्रुव

च = स्पर्शकाल में चंद्रमा का केन्द्र

चा = मोक्षकाल में चंद्रमा का केन्द्र

स = स्पर्श विन्दु

म = मोक्ष विन्

च ङ ध = स्पर्शकालके चन्द्रमाके केन्द्रका ध्रुवप्रोतवृत्त

चा ऊ ध = मोक्षकाल के " " "

ङ = स्पर्शकालके चन्द्रबिम्बका उत्तर विन्दु

ऊ = मोक्षकालके " "

छल या छला = छ से चन्द्रकेन्द्रके ध्रुवप्रोतवृत्तका लम्बान्तर (Perpendicular distance)

∠ ङ च स = चन्द्रमा के उत्तर विन्दुसे पूर्वकी ओर स्पर्श विन्दुकी दिशा।

∠ ऊ चा म = चन्द्रमाके उत्तर विन्दु से पश्चिमकी ओर मोक्ष विन्दुकी दिशा

च ध = स्पर्शकाल में चन्द्रबिम्बके केन्द्रका ध्रुवांतर = ९०° – चन्द्रमाकी स्पर्शकालिक क्रान्ति

छ ध = भूछायाके केन्द्रका ध्रुवान्तर = ९०° – भूछाया की क्रान्ति

चा ध = मोक्षकालमें चन्द्रविम्बके केन्द्रका ध्रुवान्तर = ९०° – चंद्रमा की मोक्षकलिक क्रान्ति

यह स्पष्ट है कि स्पर्श या मोक्षकाल में चन्द्रमा भूछाया के बहुत निकट रहता है और इन दोनोंकी दूरी चङ मानैक्यखंड के समान होती है जिसका परिमाण एक अंश के लगभग होता है इसलिए इसकी तुलना में चन्द्रमा या भूछाया का ध्रुवान्तर छ ध बहुत होता है। इसलिए छ ल, छ च या छ ला, छ चा धनु को सीधी रेखाएँ तथा गोलीय त्रिभुज च छ ल चा चा छ लाको सरल त्रिभुज (Plane triangle) मान लेने में

कोई हानि नहीं हो सकती। इसी तर्क से छ ध को ल ध के समान माना जा सकता है क्योंकि च ध पर छ ल लम्ब खींचा गया है। इसलिये यदि चन्द्रमा की क्रान्ति क और भूछाया की क्रान्ति का हो तो,

च ल = च ध — ध ल = च ध — छ ध

यदि चन्द्रमा और भूछाया दोनों की क्रान्तियां उत्तर हों तो,

$$च\ ध - छ\ ध = (९०^\circ - क) - (९०^\circ - का) = का - क$$

और यदि दोनों की क्रान्तियां दक्खिन हों तो,

$$च\ ध - छ\ ध = (९०^\circ + क) - (९०^\circ + का)$$

$$= क - का = - का - (- क)$$

अर्थात् दोनों दशाओं में च ल का परिमाण जानने के लिए भूछाया की क्रान्ति से चन्द्रमा की क्रान्ति घटानी चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि उत्तर क्रान्ति धनात्मक और दक्षिण क्रान्ति ऋणात्मक लिखी जाय।

$\therefore$ कोज्या उ च स = कोज्या ल च छ

$$= \frac{च ल}{च छ} = \frac{का - क}{मानैक्य खंड}$$

$$= \frac{भूछाया की क्रान्ति - चन्द्रमा की क्रान्ति}{मानैक्य खंड}$$

इसी प्रकार मोक्ष कालमें,

कोज्या ऊ चा म = कोज्या ऊ चा छ

$$= \frac{चा ला}{चा छ} = \frac{का - क}{मानैक्य खंड}$$

यहां इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि जब चन्द्रमा

भूछायासे उत्तर होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ९० अंशसे बड़ा होगा इस लिए इसकी कोटिज्या ऋणात्मक होगी। परन्तु जब चन्द्रमा भूछायासे दक्षिण होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ९० अंशसे छोटा होगा और इसकी कोटिज्या धनात्मक होगी। चन्द्रमा भूछायासे उत्तर तब होता है जब चन्द्रमाकी उत्तर क्रान्ति भूछायाकी उत्तर क्रान्तिसे अधिक होती है अथवा चन्द्रमाकी दक्षिण क्रान्ति भूछायाकी दक्षिण क्रान्तिसे कम होती है। इसके विपरीत दशामें चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होता है।

उदाहरण—अर्वाचीन रीतिसे उपर्युक्त चन्द्र ग्रहणके स्पर्श और मोक्ष विन्दुओंकी दिशाएं जानना—

चन्द्रमाकी स्पर्शकालिक क्रान्तियां ज्ञात ही हैं। इस लिए भूभा केन्द्रकी स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक क्रान्तियां जान लेनी चाहिए।

भूभाका स्पर्शकालिक भोगांश = २९८°२९′·५ (पृ० ७१६)

अयनांश = २२°४०′

∴ भूभाका स्पर्शकालिक सायन भोगांश = ३२१°९′·५

∴ भूभाकी स्पर्शकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°९′·५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°५०′·५)

= − ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°५०′·५

= − ज्या·३९७९ × ·६२७१

= − ज्या·२४९६

∴ भूभाकी स्पर्शकालिक क्रान्ति = १४°२७′·३ दक्षिण

भूभाका मोक्षकालिक भोगांश = २९८°३८′·५ (पृ० ७१७)

अयनांश $=२२^\circ४०'$

भूभाका मोक्षकालिक सायन भोगांश $=३२१^\circ१८'{\cdot}५$

∴ भूभाकी मोक्षकालिक क्रान्तिज्या $=$ ज्या $२३^\circ२७' \times$ ज्या $३२१^\circ१८'५$

$=$ ज्या $२३^\circ२७' \times$ ज्या $(३६०^\circ—३८^\circ४१'{\cdot}५)$

$=—$ज्या $२३^\circ२७' \times$ ज्या $३८^\circ४१'{\cdot}५$

$=—{\cdot}३९७९ \times {\cdot}६२५१$

$=—{\cdot}२४८७$

∴ भूभाकी मोक्षकालिक क्रान्ति $=१४^\circ२४'$ दक्षिण

इसलिए कोज्या उचस $= \dfrac{\text{भूछाया की क्रान्ति} - \text{चन्द्रमाकी क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$

$$= \frac{—१४^\circ२७'{\cdot}३-(-१४^\circ३१'{\cdot}४)}{६०{\cdot}६३}$$

$$= \frac{+४{\cdot}१}{६०{\cdot}६३} = +{\cdot}०६७६$$

∴ उ च स $=८६^\circ७'$

अर्थात् चन्द्र बिम्बके उत्तर बिन्दुसे $८६^\circ७'$ पूर्वकी ओर ग्रहणका स्पर्श होगा।

कोज्या ऊचाम $= \dfrac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$

$$= \frac{-१४^\circ२४'-(-१४^\circ२')}{६०{\cdot}६३}$$

$$= \frac{-२२'}{६०{\cdot}६३} = -{\cdot}३६२९$$

यह मान ऋणात्मक है। इसलिये ऊचाम कोण ९०° से अधिक है इस लिए जिस कोणकी कोटिज्या ·३६२९ है उसको १८० से घटानेपर ऊचामका मान निकलेगा।

कोटिज्या ६८°४३′ = ·३६२९

∴ ऊचाम = १८०° − ६८°४३′ = १११°१७′

अर्थात् चन्द्र विम्बके उत्तर विन्दुसे १११°१७′ पच्छिमकी ओर ग्रहणका मोक्ष होगा। नाविक पंचांगके अनुसार ग्रहणका स्पर्श उत्तर विन्दुसे ८४° पूर्व और मोक्ष उत्तर विन्दुसे ११०° पच्छिम बतलाया गया है। इस अंतरका कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार क्रान्ति निकालनेकी रीति कुछ स्थूल है।

चन्द्रग्रहणका परिलेख खींचनेकी रीति बतलाने के बाद विचार था कि संक्षेपमें अर्वाचीन रीतिसे सूर्यग्रहणकी गणनाकी रीति जिसे बेसेलियन रीति कहते हैं लिखूं परन्तु इस समय दो पुस्तकोंके* अभावसे तथा कई विघ्न बाधाओंके कारण समयाभावसे भी यह इच्छा अभी पूरी नहीं हो सकती। आशा है कि पुस्तक समाप्त होनेपर परिशिष्टमें यह विषय अच्छी तरह समझाया जा सकेगा।

---

* इन पुस्तकोंके नाम (१) Chauvenet's Manual of Spherical and Practical Astronomy Vol I और (२) Loomi's Introduction to Practical Astronomy. हैं। पहली पुस्तक में यह विषय बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। यह दोनों पुस्तकें इलाहाबाद को पब्लिक लाइब्रेरी मे हैं परन्तु इस समय वार्षिक निरीक्षण के कारण अप्राप्य हैं।

इस समय ग्रहणके सम्बन्धमें थोड़ीसी बातें और लिख-कर यह अध्याय पूरा कर दिया जायगा।

पृष्ठ ६५३-६५४ में बतलाया गया है कि जब सूर्य चन्द्रमाके किसी पात, राहु या केतुके पास होता है तभी अमावस या पूर्णमासी के दिन सूर्य या चन्द्रग्रहण सम्भव है। इसलिए यह सिद्ध है कि ग्रहणका फेरा सूर्य और चन्द्रमाके पातकी गतियों-पर अवलम्बित है। यदि चन्द्रमाका पात अचल होता तो सूर्य दोनों पातोंके निकट वर्षमें दो बार एक ही महीनेमें पहुँचता जिससे ग्रहण लगनेके महीने और तिथि स्थिर रहते। परन्तु चन्द्रमाका पात प्रतिदिन ३′१०″·६४ पच्छिमकी ओर चलता है जब कि सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″·३३ पूर्वकी ओर है। इसलिए प्रति दिन सूर्य चन्द्रपातसे ६२′१८″·९७ अथवा ६२′१९″ दूर होता जाता है। प्रतिदिन इतना दूर होते होते सूर्य फिर उसी पातके पास ३६०°÷६२′१९″=१२९६००० ÷३७३९=३४६·६२ दिन में पहुँचता है। दूसरे पातके पास पहुँचनेमें इसका आधा समय १७३·३१ दिन लगता है। यदि अमावस या पूर्णमासीके फेरे भी इतने ही दिनमें पूरे होते तो प्रत्येक ३४६·६२ या १७३·३१ दिन के उपरान्त ग्रहण देख पड़ते। परन्तु चान्द्रमासका मध्यममान २९·५३०५९ दिन है जो ११ महीनेमें ३२४·८३६४७ दिन और १२ महीनेमें ३५४·३६७०५ दिन के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहणका फेरा ३४६·६२ दिनमें नहीं पड़ सकता।

परन्तु २२३ चान्द्रमासमें २२३ × २९·५३०५९ दिन अथवा ६५८५·३२ दिन होते हैं और ३४६·६२ दिनके १९ फेरेमें १९ × ३४६·६२=६५८५·७८ दिन होते हैं इस लिए ग्रहणोंका फेरा अर्थात् ग्रहण-चक्र ६५८५·३२ दिनोंका होता है। इतने दिनोंके

बाद् उसी प्रकार के ग्रहण फिर आरंभ होते हैं। इस लिए इस अवधिको ग्रहणचक्र कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन ज्योतिष में इस चक्र की चर्चा नहीं है। पाश्चात्य ज्योतिषमें इसका नाम सरोस (saros) है और इसे खाल्दिया निवासियों ने विक्रमी संवत्के आरंभसे साढ़े ६ सौ वर्ष पूर्व निश्चय किया था।

इस ग्रहण चक्रसे खाल्दिया वालोंको ग्रहणोंका पता लगाने में बड़ी सुविधा होती थी क्योंकि बिना लम्बी चौड़ी गणना किये ही केवल ६५८५.३२ दिनों की ग्रहणोंकी सारणी से यह सहज ही जान लेते थे कि भविष्यमें ग्रहण कब लगेगा। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि यह चक्र (युग) सूर्य, चन्द्रमा और राहु की मध्यम गतियोंके अनुसार निकाला गया है इस लिए इसमें थोड़ी सी स्थूलता है। दूसरे, यह युग पूरे ६५८५ दिनोंका नहीं है वरन् सात आठ घंटे अधिक है। इसका यह फल होता है कि उसी स्थान में और उसी समय वही ग्रहण कभी देख पड़ेगा और कभी नहीं। जैसे प्रयागमें सूर्यास्तके समय चन्द्रग्रहण देख पड़ा तो दूसरी बार ६५८५ दिनों के बाद सूर्यास्त से सात आठ घंटे बाद कोई २ बजे रातको यही चन्द्र-ग्रहण फिर देख पड़ेगा। परन्तु तीसरी बार यह ग्रहण उस समय लगेगा जब प्रयागमें सूर्योदय हो चुका रहेगा। इस लिए यह प्रयागमें नहीं देख पड़ेगा परन्तु प्रयागके पच्छिम उस स्थानमें जहां ग्रहणके समय रात्रि रहेगी देख पड़ेगा।

एक सौर वर्ष में ३६५.२५८७६ दिन होते हैं। इस लिए १८ वर्षोंमें ६५७४.६५७७ दिन हुए जो ग्रहण चक्रसे केवल १०.६६ दिन कम है। इस लिए प्रकट है कि यदि ग्रहण चक्र का आरंभ मेष संक्रान्तिके दिन हुआ तो दूसरे चक्रका आरम्भ मेष संक्रा-

न्तिसे १०.९९ दिन उपरान्त होगा और तीसरे चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति से २१.३२ दिन पर होगा।

एक पात पर कितने ग्रहण हो सकते हैं—एक चान्द्रमासमें २९.५३ दिन होते हैं इस लिए एक पक्षमें १४.७६५ दिन हुए। ऊपर बतलाया गया है कि १ दिन में सूर्य राहुसे ६२′१९″ दूर होता है। इस लिए एक पक्षमें १४.७६५ × १° २′ १९″ = १५°२०′ ६″ दूर होता है। यदि पूर्णमासीके दिन चन्द्रमा पात पर हो तो इस दिन सर्वग्रास चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। इसी समय सूर्य दूसरे पात पर होगा। इस लिए इस से एक पक्ष पहले और पीछे दोनों अमावसों पर सूर्य दूसरे पात से १५°२०′ आगे पीछे रहेगा जो सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८°.५ से कम है। इसलिए इन दोनों अमावसों में खंड सूर्य-ग्रहण हो सकता है (देखो पृष्ठ ६६०-६६२)। इस प्रकार एक चान्द्रमास में अधिक से अधिक तीन ग्रहण हो सकते हैं जब कि सूर्य एक पात से १५°२०′ आगे पीछे होता है। परन्तु ऐसे तीनों ग्रहण एक ही स्थान से बहुत कम देख पड़ते हैं।*

---

* महाभारत में एक पक्ष में दो ग्रहणों की चर्चा इस प्रकार है:—

चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वां च षोडशीं। इमां तु नाभिजानेहममावस्यां त्रयोदशीं॥

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं ॥३२॥ भीष्म पर्व अध्याय ३

यहां एक पक्षमें दो ग्रहणोंकी ही चर्चा नहीं है वरन् यह भी है कि एक पक्ष १३ दिनका हो गया है इस पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि १४, १५ और १६ दिन के पक्ष तो देखे गये हैं परन्तु १३ दिनों का पक्ष अभी तक नहीं सुना गया। इस पर स्व० शंकरबालकृष्ण दीक्षित ने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्र के पृष्ठ ११४-११५ पर अच्छा विवेचन किया है

यदि अमावस्या के दिन सूर्य पातपर हो तो इस दिन सूर्य-ग्रहण अवश्य होगा। इससे पहले या पीछे आनेवाली पूर्णमासी के दिन सूर्य इस पात से १५°२०′ पहले या पीछे होगा इस लिए

और बतलाया है कि पूर्णमासी के चन्द्र ग्रहण होने के पश्चात् १३ दिन पर अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण एक ही स्थान से नहीं देखा जा सकता। इस पर मेरा मत इस प्रकार है :—

१३ दिन के पक्षवाली बात पर आश्चर्य इस लिए हुआ कि उस समय तिथियों का मान वेदाङ्ग ज्योतिषकी मध्यम गणनासे जाना जाता था जिसके अनुसार एक पक्ष में १४ दिन ४५ घड़ी २६ पल होते हैं। इस दशा में १३ दिन का पक्ष असम्भव समझा जाता था जो आजकल आश्चर्य-जनक नहीं है क्योंकि स्पष्ट गणना के अनुसार १३ दिनके पक्ष अनेक बार हुए हैं और होते रहेंगे। उस प्राचीन कालमें १३ दिन का पक्ष ग्रहणों के देखने से ही जान पड़ा था। वह इस प्रकार संभव है:—

स्पष्ट मान के अनुसार एक पक्ष में कम से कम १३ दिन ५० घड़ी होते हैं। मान लीजिए ११ तारीख के सूर्योदय से १ घड़ी उपरान्त तक पूर्णिमा थी और इस दिन ग्रस्त चन्द्रमाका अस्त हुआ। ऐसी दशा में यह प्रत्यक्ष है कि पक्ष का आरम्भ १२ तारीखको माना जायगा यदि पक्ष १३ दिन ५७ घड़ीका हो तो अमावस्याका अन्त २४ तारीख को सूर्योदय से ५८ घड़ी पर होगा। यदि सूर्य में ग्रहण भी लगे तो २५ तारीख को ग्रस्त सूर्य उदय होगा और थोड़ी ही देर में ग्रहण का मोक्ष हो जायगा। इससे यह सहज ही प्रकट हो जाता है कि अमावस्या २४ तारीख की रात को ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार १२ तारीख को प्रतिपदा और २४ तारीखको अमावस्या की गणना होगी और १३ दिन का पक्ष देख पड़ेगा। महाभारत कालमें ऐसीही घटना हुई होगी।

चन्द्रमा भी पूर्णमासी के दिन दूसरे पात से इतना ही आगे या पीछे होगा। परन्तु चन्द्र-ग्रहण की महत्तम सीमा ११°१६ है (देखो पृष्ठ १ ६०)। इस लिए पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात से महत्तम सीमा से अधिक दूर होने के कारण ग्रस्त नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्ध है कि ऐसी अवस्था में एक पात पर एक ही ग्रहण हो सकता है और वह सर्वग्रास सूर्य-ग्रहण है। इस लिए एक पातपर कम से कम एक सूर्य-ग्रहण और अधिक से अधिक तीन ग्रहण (दो सूर्यग्रहण तथा एक चन्द्र-ग्रहण) हो सकते हैं।

एक वर्ष में कितने ग्रहण हो सकते हैं—ऊपर बतलाया गया है कि एक पात से दूसरे पात तक जाने में सूर्य को १७३ दिन लगते हैं और ६ चन्द्रमास में १७७ दिन होते हैं। इस लिए यदि किसी पात से दो अंश पहले सूर्य हो और चन्द्रग्रहण लगे तो इससे पहले और पीछे दोनों अमावसों को सूर्यग्रहण लग सकता है। इस चन्द्रग्रहण से १७७ दिन पीछे सूर्य दूसरे पात से २ अंश पीछे रहेगा। इस लिए इस समय भी चन्द्र-ग्रहण होगा। इस चन्द्र ग्रहण के पहले की अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से १३ अंश पहले रहने के कारण ग्रस्त होगा। तथा पीछेवाली अमावस्या को सूर्य दूसरे पातसे १७ अंश पीछे रहने के कारण उस समय भी ग्रस्त हो सकता है क्योंकि सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८ अंश के लगभग है। इस प्रकार दोनों पातों पर तीन तीन ग्रहण के हिसाब से ६ ग्रहण हो गये। परन्तु ३४६ दिनमें सूर्य फिर पहले पातपर पहुँच जावेगा इस-लिए एक सूर्य ग्रहण ३४६ दिनके बाद और हो सकता है। इस प्रकार यदि वर्ष के आरम्भमें सूर्यग्रहणसे आरम्भ करके पहले महीने में ३ ग्रहण लगे और वर्षके मध्यमें तीन और ग्रहण लगें

तो वर्ष के अन्तमें एक सूर्यग्रहण और लग सकता है। ऐसी दशामें एक ही सौर वर्षके भीतर सात ग्रहण हो सकते हैं। परन्तु १२ चान्द्रमासोंके एक वर्षमें अथवा मेष-संक्रान्तिसे जिस सौर वर्षका आरम्भ होता है उसमें यदि अधिकमास न पड़े तो ६ ही ग्रहण होंगे क्योंकि जब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वर्षका आरम्भ माना जाय तो चैत्र शुक्ल १५ को पहला चन्द्र-ग्रहण होगा। इससे पहलेका सूर्य ग्रहण चैत्र की अमावस्या को पड़ेगा जो पिछले वर्षमें गिना जायगा। इस प्रकार यद्यपि ३६५ दिनके वर्षमें सात ग्रहण हो सकते हैं तथापि मेष संक्रान्तिसे आरम्भ होने वाले सौर वर्षमें अथवा चैत्र शुक्ल से आरम्भ होने वाले चान्द्र वर्षमें अधिकसे अधिक केवल ६ ही ग्रहण देख पड़ेंगे। इन ६ ग्रहणोंमें ४ ग्रहण सूर्यके और २ चन्द्रमाके होंगे। यदि वर्षमें अधिकसे अधिक ७ ग्रहण माने जायं तो ५ सूर्य ग्रहण होंगे और २ चन्द्रगहण होंगे।

ऊपर यह सिद्ध हो ही चुका है कि यदि किसी पात पर या उसके तीन अंश आगे पीछे सर्वग्रास या कंकण सूर्य ग्रहण हो तो इसके पहले या पीछे आनेवाली पूर्णमासियोंके दिन चन्द्र ग्रहण नहीं हो सकते। इसलिए इस पात पर केवल १ सूर्य गहण होगा। दूसरे पात पर भी केवल एक ही सूर्य-ग्रहण हो सकता है। इसलिए वर्ष के भीतर कम से कम २ ग्रहण अवश्य पड़ेंगे और यह सूर्य ग्रहण होंगे।

इस पर लोग यह शङ्का करेंगे कि सूर्य ग्रहण बहुत कम देख पड़ते हैं और चन्द्रग्रहण अधिक। इसका कारण यह है कि चन्द्रग्रहण भूतल के अधिकांश भागसे देख पड़ता है और सूर्य ग्रहण अनेक बार पड़ते हुए भी भूतलके बहुत थोड़े भागसे देखा जा सकता है इस लिए एक ही स्थानसे सूर्यग्रहणों को

संख्या कम और चन्द्रग्रहणोंकी संख्या अधिक जान पड़ती है। परन्तु यदि सारे संसारके ग्रहणोंकी संख्या पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य ग्रहणों की संख्या चन्द्र ग्रहणोंकी संख्या से कहीं अधिक होती है।

दस दिन ऊपर १८ वर्ष के ग्रहण-चक्र या ग्रहण-युगमें प्रायः ७१ ग्रहण पड़ते हैं जिनमें ४१ सूर्य ग्रहण होते हैं और २९ चन्द्रग्रहण। इन दोनों का अनुपात वही है जो सूर्य और चन्द्र-ग्रहणोंकी परम सीमाका अनुपात है।

एक स्थानसे सर्वग्रास अथवा कंकण सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ता है यद्यपि एक ग्रहण-चक्रमें सारे संसारके सर्वग्रास और कंकण सूर्यग्रहणोंकी संख्या २८के लगभग होती है। हैली नामक पाश्चात्य ज्योतिषीके मतानुसार २० मार्च ११४० ईस्वीसे २२ अप्रैल १७१५ ई० तक लंडनमें कोई सर्वग्रास सूर्य-ग्रहण नहीं देख पड़ा।

परन्तु सर्वग्रास सूर्यग्रहण बड़े महत्वकी घटना होती है और किसी स्थानपर साढ़ेसात मिनट अथवा १९ पलसे अधिक नहीं रहता। इतने थोड़े समयके लिए भी आजकलके पाश्चात्य ज्योतिषी लाखों रुपया खर्च करके दूर दूरके जङ्गल, पहाड़, समुद्र, अथवा टापुओंमें जहाँसे देखनेमें अधिक सुविधा होनेकी संभावना होती है जाते हैं। इस प्रकारके बेधोंसे सिद्ध होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं है। इसके चारों ओर आगकी लपकें देख पड़ती हैं जिनकी परीक्षाओंसे सिद्ध होता है कि इनमें हाइ-ड्रोजन इत्यादि वायवीय पदार्थभी हैं। परन्तु इस चर्चा का ग्रहणसे विशेष सम्बन्ध नहीं है इस लिये यहां इस पर और कुछ न लिख कर अध्याय समाप्त किया जाता है।

इस प्रकार परिलेखाधिकारका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवां अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक—१ ग्रहोंका युद्ध, समागम और अस्त। श्लोक २ और ३ का पूर्वार्ध—समागम हो चुका है या होनेवाला है? श्लोक ३ का उत्तरार्ध, ४, ५, ६—कब और कहां समागम होगा। श्लोक ७-१० दृक्कर्म की रीति श्लोक ११-दृक्कर्म की आवश्यकता कहां कहां होती है। श्लोक १२ दृक्कर्म संस्कृत ग्रहोंके समागमके समय उनका परस्पर अन्तर क्या होता है। श्लोक १३-१४—पांच ताराग्रहोंके बिम्बोंके मध्यम मान तथा स्पष्ट मान जाननेके नियम। श्लोक १५-१७ युतिकालमें ग्रहोंकी दिशा जानकर वेध करने की रीति। श्लोक १८के उत्तरार्धसे श्लोक २२ तक— अनेक प्रकार के युद्धोंकी परिभाषा। श्लोक २३-शुभाशुभ फल जानने के लिये युद्धों की कल्पना।

इस अध्यायमें यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि ग्रह एक दूसरेके बहुत निकट कब और कहां देख पड़ते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है।

ग्रहोंका युद्ध, समागम और अस्त—

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशाङ्केन सूर्येणास्तमनं सह ॥१॥

अनुवाद—(१) भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ताराग्रहोंका आपसमें युद्ध और समागम होता है। जब तारा ग्रह

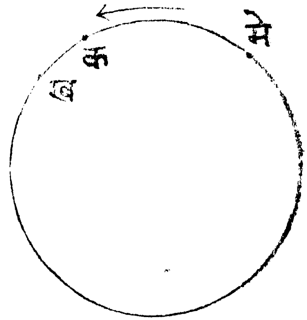
चंद्रमाके साथ हो जाता है तब चन्द्रमाके साथ उसका समागम होता है और जब ग्रह सूर्यके साथ हो जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया।

यह जानना कि समागम हो चुका है या होनेवाला है—

शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भवितान्यथा ।
द्वयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात् ॥२॥
प्राग्यायिन्यधिकेऽतीतो वक्रिण्येष्यः समागम ।

अनुवाद (२)—इष्ट कालमें जिस ग्रह की गति मन्द हो उसके भोगांशसे यदि शीघ्र गति वाले ग्रहका भोगांश अधिक हो और दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् पूर्व की ओर जा रहे हों तो समझना चाहिए कि दोनोंका समागम इष्टकालके पहले ही हो चुका है। परन्तु यदि शीघ्र गति वाले ग्रहका भोगांश मन्दगति वाले ग्रहके भोगांशसे कम हो तो समझना चाहिए कि समागम अभी होनेवाला है। परन्तु यदि दोनों ग्रह वक्री हों अर्थात् पच्छिम की ओर जा रहे हों तो ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके विपरीत समझना चाहिए अर्थात् शीघ्रगति वाले ग्रहका भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि समागम हो चुका है। (३) यदि एक ग्रह मार्गी और दूसरा वक्री हो तो और यदि मार्गी ग्रहका भोगांश वक्री ग्रहके भोगांशसे अधिक हो तो इष्ट कालसे पहलेही समागम हो चुका है परन्तु यदि वक्री ग्रहका भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है।

विज्ञानभाष्य—मान लीजिए दिये हुए चित्रमें मे मेषका आदि विन्दु है और क, ख दो ग्रह हैं। यह स्पष्ट है कि ख का भोगांश क के भोगांशसे अधिक है। यदि ख की गति क की गतिसे अधिक हो तो यह प्रकट है कि ख क से और दूर होता जायगा और इन दोनोंका समागम अतीत हो गया है। परन्तु यदि ख की गति मन्द हो तो स्पष्ट है कि क शीघ्र गतिसे चलता हुआ ख के पास पहुँच जायगा और दोनोंका



चित्र १०५

समागम होगा। यह दोनों घटनाएँ उस दशामें घटेंगी जब दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् तीरकी दिशामें जा रहे हों। यदि दोनों वक्री हों अर्थात् तीर के विरुद्ध दिशामें जा रहे हों तो यदि ख की वक्री गति अधिक हो तो समागम होगा और कम हो तो समागम हो चुका है। यदि ख मार्गी हो और क वक्री तो दोनोंका समागम हो चुका है परन्तु यदि ख वक्री हो और क मार्गी तो दोनोंका समागम होनेवाला है।

यह जानना कि किस समय और किस स्थानपर ग्रहोंका समागम होगा—

ग्रहान्तरकलाः स्वस्वभुक्तिलिप्ता समाहताः ॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोम विलोमयोः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन्भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्य गते देयं भविष्यति।

विपर्यया वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ ॥५॥

समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगण संस्थितौ ।

विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादिफलमिष्यते ॥६॥

अनुवाद—(३) इष्टकालके दोनों ग्रहोंके भोगांशोंका अन्तर निकालकर कला बनाओ और इसको प्रत्येक ग्रहकी दैनिक गतिकी कलाओंसे अलग अलग गुणा करो। (४) प्रत्येक गुणनफलको दोनों ग्रहोंकी दैनिक गतियोंकी अन्तर-कलाओंसे भाग देदो यदि दोनों ग्रह मार्गी या दोनों ग्रह वक्री हों। परन्तु यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी हो तो उपर्युक्त गुणनफल को दोनों ग्रहोंकी दैनिक गतियोंकी कलाओंको जोड़कर योगफल से भाग देदो। (५) यदि दोनों ग्रहोंका समागम हो चुका हो और दोनों ग्रह मार्गी हों तो प्रत्येक लब्धिको उस ग्रहके भोगांश में घटा दो जिसकी दैनिक गतिसे गुणा किया हो परन्तु यदि समागम होनेवाला हो तो लब्धिको ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो इसकी उलटी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि समागम हो चुका हो तो लब्धि को ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो और होनेवाला हो तो घटा दो। यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी, तो इन्हीं नियमोंके अनुसार जहां जैसी आवश्यकता हो जोड़ना घटाना चाहिए (६) ऐसा करनेसे राशिचक्रके उस स्थानके भोगांशका पता लग जाता है जहाँ दोनों ग्रहोंका समागम होचुका है अथवा होगा॥ दोनों ग्रहोंके भोगांशोंके अंतरको इनकी दैनिक गतियोंके अन्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है इष्ट कालसे उतनेही दिनके पहिले या पीछे समागम हो चुका रहता है अथवा होता है।

विज्ञान भाष्य—३रे श्लोकके उत्तरार्धसे ६ठें श्लोकके अन्ततक जो दो नियम बतलाये गये हैं वे अङ्कगणितके "समय और दूरी" वाले नियमोंसे बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसका एक उदाहरण यह है—प्रयागसे पैंसेजर गाड़ी २५ मील प्रति घन्टे के हिसाबसे ६ बजे प्रातःकाल पटनेकी ओर चली और डाक गाड़ी ४० मील प्रतिघंटेके हिसाबसे इसी ओर ८ बजे चली तो बतलाओ कि दोनोंका मेल कहां होगा और कब होगा।

जिस युक्तिसे यह प्रश्न किया जाता है उसी युक्तिसे ग्रहोंके समागमकी भी गणनाकी जाती है ऐसे प्रश्नोंमें पहले यह जानना चाहिए कि जिस समय डाकगाड़ी चली उस समय पैसेंजर गाड़ी उससे कितने अंतर पर थी, फिर यह जानना पड़ता है कि डाकगाड़ी प्रति घंटे १५ मील अधिक चलकर इस अन्तरको कितनी देरमें पूरा करेगी। यहाँ १५ मील दोनों गाड़ियोंकी प्रति घंटेकी गतियोंका अंतर है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक ही दिशामें जा रही हैं।

यदि पैसेंजर गाड़ी प्रयागसे पटनेकी ओर और डाकगाड़ी पटनेसे प्रयागकी ओर ६ बजे चलें तो दोनोंके समागमका स्थान और समय जाननेके लिए दोनोंकी गतियोंका योग करके इस योगफलसे प्रयाग और पटनेके बीचकी दूरीको भाग देने से उस समय का ज्ञान होगा जितने समयमें दोनों गाड़ियां एक दूसरे से मिलेंगी। यहां गतियोंका योग किया जाता है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक दूसरे की ओर मिलनेके लिए चल रही हैं इस लिए इनके मिलनेकी चाल इन दोनों को गतियोंके योगके समान होता है।

ठीक इसी प्रकार ग्रहों की युतिकाल और युतिस्थान की गणना की जाती है। मान लीजिए कि चित्र १०५ में किसो

इष्टकाल में क ग्रहका भोगांश मेंक=भ और ख ग्रहका भोगांश मेंख=भा। यह भी मान लीजिए कि उसी इष्टकालमें क और ख की दैनिक गतियां क्रमशः ग और गा हैं।

दोनों ग्रहोंका अन्तर कख = भा − भ

दोनों ग्रहों की दैनिक गतियोंका अन्तर = ग − गा

इसलिए इष्टकालसे जितने समय पहले या पीछे समागम-हो चुका या होगा उसको यदि स कहा जाय तो $स = \frac{भा - भ}{ग - गा}$

२ रे श्लोककी उपपत्ति—यदि गा से ग अधिक हो तो हर धनात्मक होगा जिससे स भी धनात्मक होगा, ऐसी दशामें दोनों का समागम इतने दिनोंके बाद होगा। परन्तु यदि गा से ग कम हो तो हर ऋणात्मक होनेके कारण स भी ऋणात्मक होगा जिसका अर्थ यह है कि इतने दिन पहले ही दोनों ग्रहोंका समागम हो चुका है। इस जगह दोनों ग्रहोंकी गतियां स्वयम् धनात्मक मानी गयी है। यहां सरलताके लिए इसको स्मरण रखना चाहिए कि मार्गी गति धनात्मक और वक्री गति ऋणात्मक समझी गयी है।

यदि ग और गा दोनों ऋणात्मक हों अर्थात् यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो उपर्युक्त दिनफलका हर (− ग) − (− गा) = गा-ग हो जायगा जो पहले का बिलकुल उलटा है अर्थात् यदि गा से ग कम हो तो दिनफल धनात्मक होगा और समागम होगा परन्तु यदि गा से ग अधिक हो तो दिनफल ऋणात्मक होगा और समागम पहले ही हो चुका है। इस प्रकार २ रे श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

१ रे श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति

यदि क मार्गी और ख वक्री हो तो ग धनात्मक और गा ऋणात्मक होगा इसलिए समीकरणका हर ग—(-गा)के समान होगा जो वास्तवमें ग + गा अर्थात धनात्मक हो जायगा इस लिए स धनात्मक होनेसे समागम उतनेही समय पश्चात् होगा।

परन्तु यदि ख मार्गी और क वक्री हो तो ग ऋणात्मक और गा, धनात्मक होगा ऐसी दशामें समीकरण का हर ग—गा= —ग—(+गा)= —ग—गा=—(ग+गा) जो ऋणात्मक है इस लिए समागम उतने समय पहलेही हो चुका है।

यहां यह भी सिद्ध हो जाता है कि युतिकालका समय जाननेके लिए दोनों ग्रहोंके भोगांशोंके अंतर को दोनो ग्रहकी गतियोंके अन्तर से भाग देना चाहिये यदि दोनों ग्रहों मार्गी या दोनो ग्रह वक्री हों; परन्तु यदि उनमेंसे एक मार्गी हो और दूसरा वक्री हो तो दोनोंकी गतियोंके योगसे भाग देना पड़ता है।

२ रे श्लोकके उत्तरार्धसे ६ठें श्लोक तककी उपपत्ति—इन श्लोकोंका सार यह है:—

$$\text{इष्टकालसे युतिकाल तकका समय} = \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$$

$$\text{इष्टकालसे युतिकालतक क ग्रहकी चाल} = \text{ग} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$$

$$\text{” ” ख ”} = \text{गा} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$$

इस लिये यदि क के इष्टकालके भोगांशमें $ग \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ जोड़ दिया जाय तो इसका युतिकालका भोगांश और ख के इष्टकालके भोगांशमें $गा \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ जोड़ा जाय तो ख का युतिकालका भोगांश ज्ञात होगा जो दोनों एकही होंगे क्योंकि युतिकालमें दोनों ग्रहोंके भोगांश एक होते हैं। यहां ग—गा का मान ग्रहों की मार्गी और वक्री गतियोंके अनुसार बदलेगा जैसा कि पहले कहा गया है क्योंकि जब दोनों ग्रह मार्गी होंगे तो ग और गा दोनों धनात्मक होंगे और जब दोनों ग्रह वक्री होंगे तब ग और गा दोनों ऋणात्मक होंगे। इन दोनों दशाओंमें ग—गा का मान वही होगा जो दोनों का अन्तर है। परन्तु यदि एक वक्री हुआ और दूसरा मार्गी तो ग—गा का मान वह होगा जो दोनों का योगफल है परन्तु यह योगफल ऋणात्मक होगा यदि ग ऋणात्मक है और धनात्मक होगा यदि गा ऋणात्मक हो। इस प्रकार चौथे श्लोककी उपपत्ति सिद्ध हुई।

यह पहलेही मान लिया गया है कि इष्ट कालमें क, ख ग्रहोंके भोगांश क्रमशः भ और भा हैं और इष्टकालसे युतिकाल तक इनकी चालें क्रमशः $ग \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ और $गा \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ हैं, इस लिए युतिकालमें इनके भोगांश क्रमशः $भ + ग \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ और $भा + गा \times \frac{भा - भ}{ग - गा}$ हैं। इन दोनों मानोंका धन चिह्न प्रत्येक मानके दूसरे पदके चिह्नके अनुसार धन या ऋण होगा जैसा कि पहले कहा गया है। इस प्रकार ५ वें और छठें

श्लोक के पूर्वार्धकी उपपत्ति सिद्ध होती है। छठे श्लोकके उत्तरार्धकी उपपत्ति पहलेही सिद्ध की गयी है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीतिसे युतिस्थान का जो भोगांश ज्ञात होगा वह स्थूल होगा क्योंकि किसी इष्टकालमें किसी ग्रहकी जो दैनिक गति होती है वह प्रत्येक दिन एकसी नहीं रहती, कुछ घटती बढ़ती रहती है इस लिए इष्टकालकी दैनिक गतियोंके अनुसार गणना करनेसे कुछ स्थूलता रह जाती है। इस कारण यह आवश्यक है कि उपर्युक्त गणनासे जो समय आवे उस समयके ग्रहके भोगांश और दैनिक गतियाँ स्वतन्त्र गणनासे फिर निकाले और इनके ही आधार पर ऊपरके चार श्लोकोंमें दिये हुए नियमोंसे फिर युतिस्थान जाने।

दृक्कर्म की रीति—

कृत्वा दिनक्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिकाः।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकालग्रवशात्तयोः ॥७॥
विषुवच्छाययाभ्यस्ताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्ध विभाजितम् ॥८॥
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः ॥९॥
सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागघ्नाः क्षेप लिप्तिकाः।
विकलाः स्वामृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः ॥१०॥
नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।
शृङ्गोन्नतौ च चन्द्रस्य दृक्कर्मादावि स्मृतम् ॥११॥

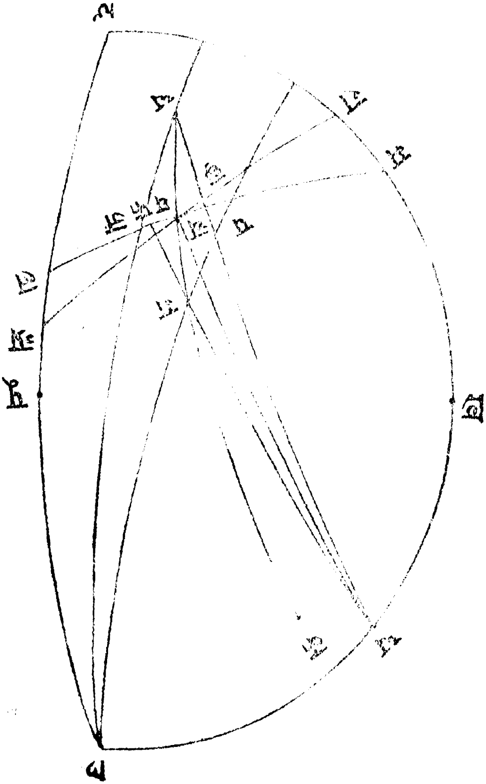
तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपश्च तयोस्ततः।
दृक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम् ॥१२॥

अनुवाद—(७) युतिकालके ग्रहोंके दिनमान और रात्रिमान तथा उनके विक्षेपोंका मान जानना चाहिये फिर उस कालमें जो राशि पूर्व में लग्न हो उससे प्रत्येक ग्रहका नतकाल और उन्नतकाल जानना चाहिये। (८) विक्षेपको उस स्थानकी पलभासे गुणा करके १२ से भाग देना चाहिये। जो लब्धि आवे उसको प्रत्येक ग्रहकी नत घड़ीसे गुणा करके उसके दिन-मानके आधेसे और यदि रात्रि हो तो रात्रिमानके आधेसे भाग दे देना चाहिए। (९) अब जो लब्धि आवे उसको यदि विक्षेप उत्तर हो तो पूर्व कपालमें ग्रहके भोगांशमें घटा दो और पच्छिम कपालमें जोड़ दो। परन्तु यदि विक्षेप दक्षिण हो तो पूर्वकपालमें उस लब्धिको ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो और पच्छिम कपालमें घटादो। (१०) ग्रहके भोगांशमें तीन राशि जोड़कर उसकी क्रान्ति निकालो और इस क्रान्तिके अंश को विक्षेपकी कलासे गुणा करदो गुणनफल को विकला समझकर ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो यदि क्रान्ति और विक्षेपकी दिशाएं भिन्न हों और यदि इनकी दिशाएं एकही हों तो घटा दो। (११) नक्षत्र और ग्रहके योगमें ग्रहका उदय और अस्त साधन करनेमें, चन्द्रमाका शृङ्गोन्नत जाननेके पहले इस दृक्कर्मका संस्कार करना चाहिये। (१२) दृक्कर्म संस्कृत ग्रहोंका युतिकाल और इस समय के इनके विक्षेप फिर निकालकर यदि विक्षेपोंकी दिशा एक ही हो तो अन्तर करे और भिन्न हो तो योग करे। ऐसा करनेसे जो आवे वही युतिकालमें दोनों ग्रहोंका परस्पर अंतर होगा।

विज्ञान-भाष्य—युतिकालमें ग्रहोंके स्थान जाननेकी जो रीति ३—६ श्लोकोंमें बतलायी गयी है उससे यह ज्ञात होता है कि उस समय ग्रह कदम्बप्रोतवृत्त पर कहां है परन्तु स्पष्ट युति-काल उस समयको कहते हैं जिस समय दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर होते हैं अर्थात् उस वृत्त पर होते हैं जो दोनों ग्रहोंसे होता हुआ क्षितिजके उत्तर विन्दु पर जाता है। इस लिए स्पष्ट युतिकाल जाननेके लिए पहले दी हुई रीतिसे ग्रहोंके जो भोगांश आते हैं उसमें दो संस्कार किये जाते हैं जिनके नाम आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म हैं । यह संस्कार आक्षवलन और आयनवलनके सदृश हैं। भास्कराचार्यजीने तो ब्रह्मगुप्तजीके अनुसार आक्षवलन और आयनवलनसे ही आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म निकालनेकी रीति बतलायी है जो आजकल अधिकतर प्रचलित है परन्तु सूर्यसिद्धान्तमें इस कार्यके लिए दूसरी ही रीति दी है । यहाँ पहले सूर्यसिद्धान्त की रीति समझाकर संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा कि भास्करा-चार्य्यजीकी रीति कैसी है ।

चित्र १०६ से प्रकट होता है कि इस अध्यायके छठें श्लोक तक युतिकालके ग्रहोंके भोगांश जाननेकी जो रीति दी हुई है उसके अनुसार ग और घ ग्रहोंका जो भोगांश होगा वह क्रान्ति-वृत्तके य विन्दु के भोगांशके समान होगा। परन्तु इस समय इन ग्रहोंके समप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तको ज और प विन्दुओं पर काटते हैं इसलिए उपर्युक्त युतिकालमें इन ग्रहों के समप्रोत वृत्तोंका अंतर क्रान्तिवृत्त पर पज के समान होगा। सिद्धान्ता-नुसार जिस समय यह अन्तर शून्यके समान हो उस समय को युतिकाल कहते हैं अर्थात् दो ग्रहोंकी युति उस समय होती है जिस समय दोनों ग्रह एक ही समप्रोतवृत्त पर हों। यह जाननेके

लिए पहले यह क्रिया करनी पड़ती है कि दोनों ग्रहोंके भोगांश एक कब होंगे जो ४-६ श्लोकोंके अनुसार जाना जाता है।



चित्र १०१

इसके बाद यह जानना पड़ता है कि उस समय य प और यज क्या हैं। इनको मैं सुविधाके लिए क्रमशः ग और घ के आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत-फल कहूँगा। यह प्रकट है कि—

चित्र १०६ का वर्णन

उ पू द =क्षितिज वृतका पूर्वार्धं

उ,पू, द =क्रमशः उत्तर, पूर्व और दक्षिण विन्दु

उ ध ख म रा द=याम्योत्तरवृत्त

क = कदम्ब

ध = ध्रुव

ख = खस्वस्तिक

म = मध्यलग्न

ग,घ = दो ग्रहोंके स्थान (चित्र में घ की जगह ध बन गया है)

क ग य घ= कदम्बवृत्त

म ज फ य च प म =क्रान्तिवृत्त

ल =क्रान्तिवृत्तका वह विन्दु जो पूर्व क्षितिज में लग्न हैं।

अ य छ रा =य विन्दुका अहोरात्रवृत्त

ध च छ घ =घ ग्रह पर जाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

ध ग फ = ग ग्रह परजाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

ख ज घ =घ ग्रह परजाता हुआ समप्रोतवृत्त

ख ग प =ग ग्रह परजाता हुआ समप्रोत वृत्त

ज = घ ग्रहके समप्रोतवृत्त और क्रान्ति वृत्त का सम्पात विन्दु

प = ग ग्रहके समप्रोत वृत्त और क्रान्तिवृत्तका सम्पातविन्दु

प ज = दोनों ग्रहोंके समप्रोत वृत्तोंका अन्तर (क्रान्ति वृत्त पर)

च ज = घ ग्रहका आक्षदृक्कर्म (घ ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

च य = घ ग्रहका आयन दृक्कर्म (घ ग्रहके कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर

य ज = घ ग्रहका आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल, अर्थात् घ ग्रहके समप्रोत और कदम्बप्रोतवृत्तोंका क्रान्तिवृत्तपर अंतर

प फ = ग ग्रहका आक्षदृक्कर्म (ग ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

ब फ = ग ग्रहका आयनदृक्कर्म (ग ग्रहके कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्तपर अंतर)

प ब = ग ग्रहका आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल अर्थात ग ग्रहके समप्रोत और कदम्बप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्तपर अन्तर

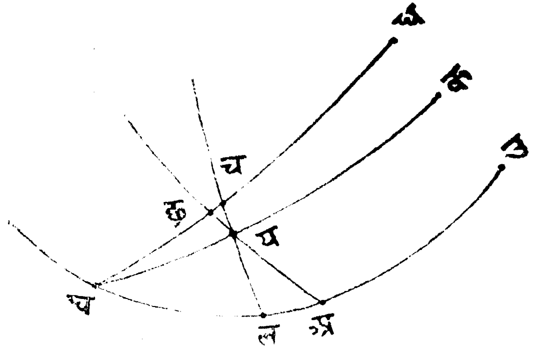
य प = पफ—य फ

और य ज = च ज—च य

प्रत्येक समीकरणके दाहिने पक्षमें जो दो पद हैं उनका मान सहज ही जाना जा सकता है और इस प्रकार य प और य ज के मान भी जाने जा सकते हैं। पहले पदके जाननेकी रीति ७—६ श्लोकोंमें बतलायी गयी है और इसका नाम अचार्योंने आक्षदृक्कर्म रखा है। दूसरे पदके जाननेकी रीति १० वें श्लोक में बतलायी गयी है और इसका नाम आचार्योंने आयनदृक्कर्म रखा है। पहलेको आक्षदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण द्रष्टाके अक्षांशके अनुसार बदलता है और दूसरेको आयनदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण अयनान्तवृत्तों (देखो पृष्ठ ३३८) के अनुसार बदलता है जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा।

आक्षदृक्कर्म—यह प्रकट है कि निरक्ष देश पर क्षितिज का उत्तर विन्दु उ और ध्रुव ध एक हो जाते हैं इस लिये वहां किसी ग्रहके समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त एकमें मिले रहते हैं। इस कारण वहां प फ या च ज का मान शून्य होता है अर्थात् वहां आक्षदृक्कर्म शून्य होता है।

जैसे जैसे अक्षांश बढ़ता है अर्थात् जैसे जैसे क्षितिजवृत्तके उत्तर बिन्दु उ से ध्रुव ध ऊपर होता जाता है तैसे तैसे प फ या च ज अर्थात् आक्षदृक्कर्म बढ़ता है। जिस समय ग्रह याम्योत्तरवृत्त पर होता है उस समय भी उसके समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त एकमें मिले रहते हैं क्योंकि याम्योत्तरवृत्त ख और ध दोनों बिन्दुओं पर होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि किसी स्थानके याम्योत्तर वृत्त पर भी ग्रहका आक्षदृक्कर्म शून्य रहता है। अब केवल यह जानना रह गया है कि आकाशके अन्य बिन्दुओं पर ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है। पहले यह देखना चाहिये कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो आक्षदृक्कर्मका परिमाण क्या होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो क्षितिजवृत्त ही इसका समप्रोतवृत्त भी होता है। चित्र १०७ से प्रकट है कि जब थ ग्रह पूर्व क्षितिजमें



चित्र १०७

अ ल घ = पूर्व क्षितिज वृत्त

उ = उत्तर बिन्दु

घ = उदय होते हुए ग्रहका स्थान

ल = उदय लग्न

क = कदम्ब

य = क्रान्तिवृत्तपर घ ग्रह का स्थान

च = घ के ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्तका सम्पात बिन्दु

अ य छ = य का अहोरात्र वृत्त

च ल = घ का आक्षदृक्कर्म

लग्न होता है तब क्रान्तिवृत्त पर इसका स्थान य होता है। य का अहोरात्रवृत्त अयछ घ के ध्रुवप्रोतवृत्त को छ बिन्दुपर काटता है। अ छ घ गोलीय समकोण त्रिभुज है क्योंकि अहोरात्र वृत्त अ य छ ध्रुवप्रोतवृत्त से ९० अंशका कोण बनाता है। अहोरात्रवृत्त विषुवद्वृत्तके समानान्तर होता है तथा विषुवद् वृत्त और पूर्व क्षितिज वृत्तके बीचका कोण लम्बांशके समान होता है इस लिए कोण छ अ घ लम्बांश के समान है। यदि अ छ घ को सरल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो कोण अ छ घ = ९० अंश और कोण छ अ घ = लम्बांश। इस लिए कोण छ घ अ = अक्षांश क्योंकि अक्षांश + लम्बांश = ९० अंश। इसलिए सरल त्रिभुज अ छ घ में

$$\frac{\text{छअ}}{\text{अघ}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छघअ}}{\text{ज्या}\angle\text{छअघ}} = \frac{\text{ज्या अक्षांश}}{\text{ज्या लम्बांश}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

(देखो पृष्ठ ८५ और ३८७)

यदि छ घ को घ य के समान और छअ को च ल के समान मान लिया जाय तो

$$\frac{\text{चल}}{\text{घय}} = \frac{\text{छअ}}{\text{छघ}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\therefore \text{च ल} = \frac{\text{घ य} \times \text{प लभा}}{१२}$$

$$= \frac{\text{ग्रहका शर} \times \text{पलभा}}{१२}$$

परन्तु चल घ ग्रह का आक्षदृक्कर्म । इस लिये सिद्ध होता है कि जिस समय ग्रह क्षितिज पर होता है उस समय उसका आक्ष दृक्कर्म उसके शर को पलभासे गुणा करके १२ से भाग देने पर आता है। यही ८वें श्लोकके पूर्वार्धका तात्पर्य है। इस प्रकार जब यह सिद्ध होगया कि क्षितिजस्थ ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है और याम्योत्तरवृत पर उसका मान शून्य होता ही है तब अन्य समयके लिये उसकी गणना त्रैराशिकसे इस प्रकार की जाती है कि जब ग्रहके आधे दिन में आक्षदृक्कर्मका मान कमसे कम शून्य और अधिकसे अधिक क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्मके समान होता है तब इष्ट नतकाल में इसका मान क्या होता है। अर्थात् दिनार्द्धः इष्टनतकाल :: क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म : इष्ट आक्षदृक्कर्म यही ८ वें श्लोक का अर्थ है।

चित्र १०६ और १०७ में ग्रह पूर्वकपालमें दिखलाये गये हैं। यहाँ घ का शर दक्षिण है तो घ का समप्रोतवृत क्रान्तिवृत्त को ज बिन्दु पर काटता है जो य से पूर्व है। इस लिये दक्षिण शर में य के भोगांश में घ का आक्ष दृक्कर्म जोड़नेसे ज का भोगांश आवेगा। परन्तु जब ग का शर उत्तर है तो ग का समप्रोतवृत क्रान्तिवृत्त को प स्थान पर काटता है जो य से पच्छिम है इस लिये उत्तर शर में य के भोगांश में ग का आक्ष दृक्कर्म घटानेसे प का भोगांश आवेगा। पच्छिम कपालमें इसके विपरीत होता है अर्थात दक्षिण शरवाले ग्रहका आक्ष

दृक्कर्म ग्रह के भोगांशमें घटाना पड़ता है और उत्तर शरवाले ग्रहका आयनदृक्कर्म ग्रहके भोगांशमें जोड़ना पड़ता है। यह बात १०६ से ही स्पष्ट हो जाती है क्योंकि यदि वह चित्र पच्छिम कपालका समझ लिया जाय तो ज विन्दु य से पच्छिम समझा जायगा और प विन्दु य से पूरब समझा जायगा क्योंकि पच्छिम कपालमें किसी विन्दुसे उसके नीचे का विन्दु पच्छिम होता है और ऊपर का विन्दु पूर्व होता है परन्तु पूर्व कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पूर्व होता है और ऊपर का विन्दु पच्छिम होता है। इसप्रकार ६ वें श्लोक में बतलायी गयी जोड़ने घटाने की क्रिया की उपपत्ति भी सिद्ध हो गयी।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ८ वें श्लोकमें बतलायी गयी रीति स्थूल है क्योंकि जिन कल्पनाओं से यह सिद्ध हुई है वह स्वयम् स्थूल है।

आयन दृक्कर्म—

चित्र १०६ से प्रकट है कि घ ग्रहका आयन दृक्कर्म च य है। अब देखना है कि सूर्यसिद्धान्त के अनुसार च य का मान जानने की क्या रीति है।

त्रिभुज च य छ इतना छोटा है कि च य को छ य के समान समझ लेने से कोई हानि नहीं हो सकती। त्रिभुज छ य घ को सरल समकोण त्रिभुज समझ लेने से भी विशेष हानि नहीं है क्योंकि घ ग्रह का शर घ य बहुत छोटा होता है और कोण घ छ य समकोण है क्योंकि अछरा य विन्दु का अहोरात्रवृत्त है और ध छ घ घ का ध्रुवप्रोतवृत्त है। इस लिए समकोण त्रिभुज छ य घ में

$$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}\angle\text{घ छ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}९०^\circ} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{त्रिज्या}}$$

चूंकि ग्रह का शर बहुत छोटा होता है इसलिए कोण छ घ य या कोण ध घ क को कोण ध य क के समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं है। इस लिए यह कहा जा सकता है कि

$$\frac{\text{छय}}{\text{घय}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{ध य क}}{\text{त्रिज्या}} \therefore \text{छय} = \frac{\text{घ य}\times\text{ज्या}\angle\text{ध य क}}{\text{त्रिज्या}}$$

परन्तु कोण ध य क य विन्दुका अयन वलन है क्योंकि यह य के ध्रुवप्रोतवृत्त और कदम्बप्रोतवृत्त के बीचमें है (देखो चित्र १०१) और य के ९० अंश के आगे के भोगांश की क्रान्ति के समान होता है (देखो पृष्ठ ६८५, ६८६) इस लिए ज्या ∠ध य क की जगह पर य + ९०° की क्रान्तिज्या जो पृष्ठ ६८५ के समीकरण (२) के अनुसार ज्ञात होती है रखना चाहिए। यदि यह क्रान्तिज्या क्रा के समान मान ली जाय तो छ य= $\frac{\text{घ य}\times\text{क्रा}}{\text{त्रिज्या}}$ । इस समीकरणमें सब परिमाणों को कलाओं में समझना चाहिए।

यह बतलाया गया है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १८०) कि परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला है और परमक्रान्ति २४° के समान मानी गयी है। २४ का ५८ गुना १३९२ होता है जो १३९७ के बहुत निकट है इस लिए यदि यह मान लिया जाय कि २४ का ५८ गुना १३९७ के प्रायः समान है तो कोई हर्ज नहीं। इस लिए जब २४ अंश की ज्या २४ × ५८ कलाके समान होती है तब यह समझने में बहुत हानि नहीं है कि किसी अंश की ज्या उसकी ५८ गुनी कला के समान होती है।

इसलिए का = क्रान्त्यश × ५८ और त्रिज्या = ६० × ५८

इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$$\text{छय} = \frac{\text{घ य} \times \text{क्रान्त्यंश} \times ५८}{५८ \times ६०} = \frac{\text{घ य} \times \text{क्रान्त्यंश}}{६०} \text{ कला}$$

कला को ६० गुनी विकला होती है इस लिए यदि ऊपर के समीकरण के दाहने पक्ष को ६० से गुणा किया जाय तो उसका मान विकलाओं में बदल जायगा। परन्तु ६० से गुणा करने पर नीचे वाला ६० कट जायगा और समीकरण का रूप यह होगा :—

छ य = घ य × क्रान्त्यंश विकला

यहां छ य = च य = आयन दृक्कर्म, घ य ग्रह व का शर या विक्षेप कलाओं में है और क्रान्ति अंशों में है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि य के आगे के ९० अंश की क्रान्ति को अंशों में लिख कर इसको विक्षेप की कलाओं से गुणा कर देने पर जो आता है वह विकलाओं में घ ग्रह का आयन दृक्कर्म है जैसा कि श्लोक १० में वतलाया गया है। इस नियम का दूसरा सरल रूप यह भी हो सकता है कि ग्रहके आयन वलन को अंशों में लिख कर इसको ग्रह की विक्षेप कला से गुणा कर देने से जो आता है वह विकलाओं में ग्रह का आयन दृक्कर्म है।

अब यह देखना है कि यह आयनदृक्कर्म किस समय धनात्मक और किस समय ऋणात्मक होता है अर्थात् इस आयनदृक्कर्म को ग्रहके भोगांशमें किस समय जोड़ना चाहिए और किस समय घटाना चाहिये। स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २९३ के चित्र ३९ को ध्यानपूर्वक देखनेसे पता चल सकता

है कि जब तक ग्रह उत्तरायण रहता है अर्थात् सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ से सायन कर्कराशिके आदि विन्दु द तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से बायें रहता है अर्थात् कदम्ब प्रोतवृत्तका तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तलसे ऊपर रहता है जैसा कि चित्र ३९ में दिखलाया गया है। परन्तु जब तक ग्रह दक्षिणायन रहता है अर्थात् सायन कर्क राशिके आदि विन्दु द से सायन मकर राशिके आदि विन्दु उ तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोत-वृत्त ध्रुवप्रोतवृत से दाहने रहता है अर्थात् उसका कदम्ब-प्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्तके तलसे नीचे रहता है जैसा कि चित्र १०६ में दिखलाया गया है।

चित्र ३९ से प्रकट है कि जब ग ग्रह उत्तरायण और इसका शर उत्तर है तब इसका ध्रुवप्रोतवृत्त प विन्दुसे पच्छिम है जहां इसका कदम्बप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्तको काटता है। परन्तु यदि उत्तरायण ग्रहका शर दक्षिण, मानलो च पर हो तो स्पष्ट है कि इसका ध्रुवप्रोतवृत्त वही रहेगा जो ग का है परन्तु कदम्बप्रोत-वृत्त चक (जो चित्र में नहीं दिखलाया गया) क्रान्तिवृत्तको उससे पच्छिम काटेगा अर्थात् च ग्रहका क्रान्तिवृत्त पर जो स्थान होगा उससे आगे पूर्वमें ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तको काटेगा। अर्थात् पहली दशामें ग्रहके भोगांशसे घटानेपर और दूसरी दशामें जोड़नेपर ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्तके सम्पात का स्थान ज्ञात होगा।

इसी प्रकार चित्र १०६ से प्रकट है कि जब ग और घ ग्रह दक्षिणायन हैं इनके कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्तसे दाहिने हैं। ऐसी दशामें उत्तर शर वाले ग ग्रहका ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को फ स्थान पर काटता है जो प से आगे पूर्वमें है इसलिए

ब के भोगांश में य फ जोड़ने से फ का स्थान ज्ञात होगा। परन्तु दक्षिण शर वाले ग का ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त के च स्थान पर काटता है जो य से पीछे पच्छिम में है इसलिए ब के भोगांश में च य घटाने पर च का स्थान ज्ञात होगा।

यह प्रकट ही है कि जब ग्रह उत्तरायण रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव उत्तर रहती है क्योंकि जब ग्रह सायन मकर से आगे सायन कर्क तक कहीं रहता है तब इससे ९० अंश आगे का भोगांश सायन मेष से आगे और सायन तुला के पहले रहता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है। इसी प्रकार जब ग्रह दक्षिणायन रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव दक्षिण होती है। इसलिए जो बात ऊपर उत्तरायण और दक्षिणायन के संबंध में कही गयी है वही उत्तर क्रान्ति और दक्षिण क्रान्तिके सम्बन्धमें भी लागू होती है जैसा कि १०-व श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है।

१२-वें श्लोक की उपपत्ति—आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करने पर ग्रहोंके जो भोगांश आते हैं इनका अंतर जानकर यह देखना चाहिए कि दोनों ग्रहों का यह अंतर कब शून्य होता है। जिस समय यह अंतर शून्य होता है उसी समय दोनों ग्रहोंकी युति समप्रोतवृत्तपर होती है। इस समय यदि दोनों ग्रहों के शर एक ही दिशा में हों अर्थात् दोनों उत्तर या दोनों दक्षिण हों तो दोनों का अन्तर निकालने पर और यदि दोनों ग्रहों के शरों की दिशाएं भिन्न हों अर्थात् एकका उत्तर और दूसरेका दक्षिण हो तो दोनों

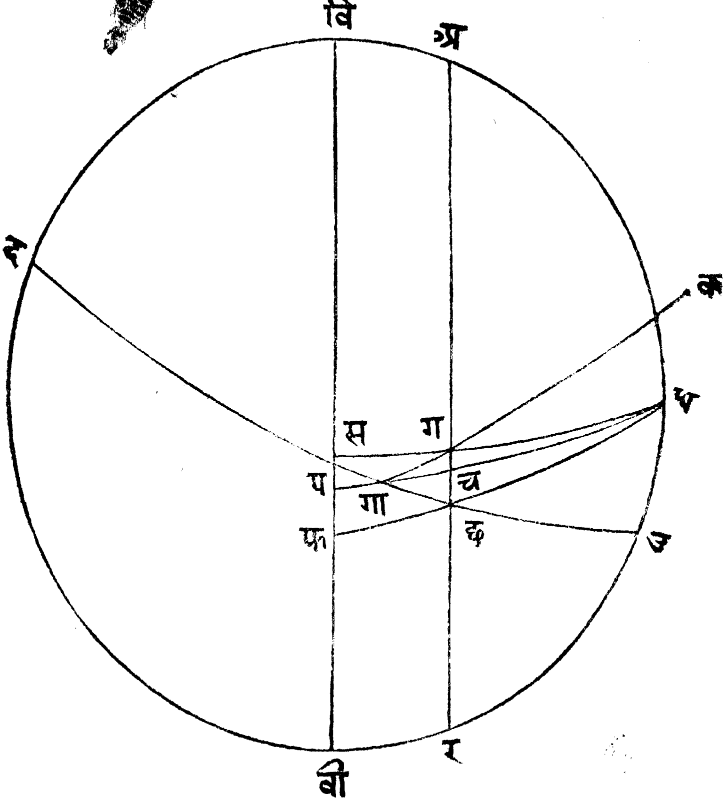
शरों का योग करने पर जो आता है उतने ही अन्तर पर दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर देख पड़ते हैं।

इस प्रकार सूर्यसिद्धान्तके अनुसार आक्ष और आयन दृक्कर्मका संस्कार करनेकी रीतिकी उपपत्ति सिद्ध होती है जिससे यह पता तो चलता ही है कि यह रीति स्थूल है क्योंकि कई कल्पनाओं से यह सिद्ध की गयी है।

भास्कराचार्य जीके अनुसार दृक्कर्म —

भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस समय ग्रहके क्रान्तिवृत्त का स्थान क्षितिजमें लग्न होता है उस समय ग्रह अपने शरके कारण क्षितिजके ऊपर रहता है या नीचे रहता है। जिस समय ग्रह क्षितिजके ऊपर रहता है उस समय वह अपने क्रान्तिवृत्तके स्थानसे पहलेही उदय हो जाता है और जिस समय नीचे रहता है उस समय वह पीछे उदय होता है। कितना पहले या पीछे उदय होता है यह दृक्कर्म से जाना जाता है। इस दृक्कर्म के २ खंड होते हैं। एक खंड ग्रहके आयनवलनपर और दूसरा आक्षवलनपर आश्रित रहता है। जो आयनवलनपर आश्रित होता है उसको आयन दृक्कर्म और जो आक्षवलनपर आश्रित रहता है उसको आक्षदृक्कर्म कहते हैं।

चित्र १०८ में ग ग्रह का शर उत्तर है। ग का अहोरात्रवृत्त अ ग च छ रा क्षितिजको छ विन्दुपर काटता है इस लिए जिस समय ग के क्रान्तिवृत्तका स्थान गा क्षितिजपर है उस समय ग के अहोरात्रवृत्तका छ विन्दु क्षितिजपर है इस लिए ग का उदय गा से उतना पहले हुआ है जितनी देर में ग के अहोरात्रवृत्तका ग छ खंड क्षितिजके ऊपर आया है। परन्तु ग छ=ग च+च छ जिनमेंसे प्रत्येकका मान इस प्रकार जाना जाता है:—



चित्र १०८

उ छ गा द = पूर्व क्षितिज वृत्त

उ = उत्तर बिन्दु

ध = उत्तर ध्रुव

क = कदम्ब

उ ध क वि द = याम्योत्तर वृत्त

ग = ग्रह

गा = क्रान्तिवृत्तपर ग ग्रहका स्थान, इस समय यह पूर्व क्षितिज पर लग्न भी है। क्रान्तिवृत्त इसलिए नहीं दिखलाया गया कि चित्र सरल रहे।

अ ग च छ र = ग का अहोरात्र वृत्त

वि स प फ वी = विषुवद् वृत्त

क ग गा = ग का कदम्बप्रोतवृत्त

ध च गा प = गा का ध्रुवप्रोतवृत्त

ध छ फ = छ का ध्रुवप्रोतवृत्त

गा च = आयनदृक्कर्म

च छ = आक्षदृक्कर्म

ग गा = ग ग्रहका शर या विक्षेप

गा च = ग ग्रह का स्पष्टशर (देखो गणिताध्याय ग्रहच्छायाधिकार श्लोक३)

∠ ग गा च = गा का आयनवलन

∠ छ गा ध = गा का आक्षवलन

गच की गणना—

गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च में ग च गा कोण समकोण है क्योंकि गा का ध्रुवप्रोतवृत्त ग के अहोरात्रवृत्त को च स्थान पर काटता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग गा}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{ ग गा च}}{\text{ज्या } 90^\circ} = \frac{\text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या ग च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots(1)$$

परन्तु ग च अहोरात्रवृत्त का खंड है और इसके सामने का कोण ध्रुव पर ग ध च के समान है जो विषुवद्वृत्त के स प

खंडके समान है। इसलिये यह जाननेके लिए कि ग च खंड कितनी देरमें उदय होता है हमें स प खंडका जानना आवश्यक है जो इस अनुपात से जाना जाता है —

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या स प}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{ज्या ध स}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{त्रिज्या}} \quad \cdots \cdots \quad (२)$$

परन्तु ग ध = ध स—ग स = ९०°—ग की क्रान्ति

∴ ज्या ग ध = ग की क्रान्ति कोटिज्या

$$\therefore \text{ज्या स प} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग ध}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{आयनदृक्कर्म} = \frac{\text{शर ज्या} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

इस क्रियासे स प का जो मान आवेगा वह कलाओं में होगा यदि ज्याओं और कोटिज्याओं की गणना भारतीय रीतिसे की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल आयन-वलन के कारण ग का उदयकाल गा के उदयकाल से स प असुओंके समान आगे होगा। यदि यह जानना हो कि इतनी देरमें क्रान्तिवृत्तका कौन सा खंड उदय होगा तो इसको १८०० से गुणा करके जिस राशिमें ग्रह हो उसके लंको-दयासुओं से भाग देना चाहिए क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि जब राशिके लंकोदयासुओंमें राशिका ३० अंश या १८०० कला उदय होता है तब जितने समयमें स प का उदय होता है उतने समयमें राशिका कितना खंड उदय होगा। यही ग्रह-च्छायाधिकारके श्लोक ४ का सार है।

च छ की गणना

समकोण गोलीय त्रिभुज च गा छ में गा च छ कोण समकोण है क्योंकि गा च ध्रुवप्रोतवृतका खंड है, च छ अहोरात्रवृतका खंड है जो ध्रुवप्रोतवृत्तसे समकोण पर होता है। गा च को भास्कराचार्यजीने ग का स्पष्ट शर माना है और भेद दिखलाने के लिए ग गा को मध्यम शर माना है। कोण च गा छ = कोण ध-गा उ = आत्वलन। यदि गा विषवद्वृत्तके पास हो तो कोण ध गा उ अक्षांशके समान माना जा सकता है। ऐसी दशामें और यदि च गा छ त्रिभुज समतल-त्रिभुज मान लिया जाय क्योंकि ग्रहका स्पष्ट शर गा च साधारणतः बहुत छोटा होता है तब च-छ गा कोण लम्बांशके समान मानाजा सकता है क्योंकि ९०° − अक्षांश = लम्बांश। ऐसी दशामें चूंकि गोलीय त्रिभुज च गा छ में

$$\frac{\text{ज्या च छ}}{\text{ज्या} \angle \text{ चगा.छ}} = \frac{\text{ज्या च गा}}{\text{ज्या च छ गा}}$$

$$\text{अथवा ज्या चछ} = \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आत्वलन}}{\text{लम्बज्या}}$$

परन्तु च छ का मान विषवद्वृत्तके प फ खंडके समान है जो सजातीय त्रिभुज ध च छ और ध प फ से इस प्रकार जाना जाता है :—

$$\frac{\text{ज्या प फ}}{\text{ज्या च छ}} = \frac{\text{ज्या ध प}}{\text{ज्या ध च}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या } (९०^\circ - \text{चप})} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या } (९०^\circ - \text{ग्रहकी क्रान्ति})} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{ ज्या प फ} = \frac{\text{ज्या चछ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या} \times \text{लम्बज्या}}$$

यही ग्रहच्छायाधिकार के ७वें श्लोकका अर्थ है। इस प्रकार प फ का जो मान कलाओंमें आवेगा वही आक्ष दृक्कर्म है।

आक्ष और आयन दृक्कर्म किस समय जोड़ना और किस समय घटाना चाहिए इसके लिए वही नियम है जो पहले सूर्य सिद्धान्तके संबंधमें बतलाया गया है।

स्पष्ट शर को जाननेकी एक रीति जो कुछ स्थूल है भास्कराचार्यजी ने ग्रहच्छायाधिकारके तीसरे श्लोकमें यों बतलायी है :—

ग्रहके भोगांशमें तीन राशि जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्तिकी कोटिज्याको अर्थात् द्युज्या को मध्यम शरसे गुणा करके गुणनफल को त्रिज्यासे भाग दे देना चाहिए। यह नियम चित्र १०८ के गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च से स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह के भोगांशमें ९०° जोड़नेसे जो आता है उसकी क्रान्ति अयनवलनके समान होती है (देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २५) जो यहां ग गा च कोणके समान है इसलिए उसकी क्रान्ति-कोटिज्या अयनवलन-कोटिज्याके समान होगी। यदि गा ग च त्रिभुज समतल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो $\angle$गा ग च = ९०° − $\angle$ग गा च = ९०° − आयनवलन

$$\therefore \frac{\text{ज्या ग गा}}{\text{ज्या} \angle \text{ गचगा}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या} \angle \text{ गागच}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या ९०° — आयनवलन}}$$

$$\therefore \text{ज्या गा च} = \frac{\text{ज्या गगा} \times \text{ज्या } (90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{ज्या } 90^\circ}$$

$$= \frac{\text{ज्या मध्यमशर} \times \text{ज्या}(90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{मध्यम शर ज्या} \times \text{अयमवलन कोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

ग्रहोंके बिम्बमान—

कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिशदर्धार्धवर्धिताः ।
विष्कम्भाश्चन्द्रकक्षायां भृगोः षष्टिरुदाहृताः ॥१३॥
त्रिचतुष्कर्णयुत्याप्तास्तेद्विघ्नास्त्रिज्ययाहताः ।
स्फुटाःस्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥१४॥

अनुवाद—(१३) मंगल, शनि, बुध, गुरु और शुक्र के बिम्बोंके व्यास चन्द्रकक्षामें क्रमानुसार ३०, ३७॥, ४५, ५२॥ और ६० योजन हैं। (१४) किसी ग्रहके बिम्बका स्पष्ट व्यास जाननेके लिए उस ग्रहके ऊपर लिखे हुए व्यासके दुगुने को त्रिज्या (३४३८) से गुणा करके गुणनफलको त्रिज्या और उस ग्रहके चतुर्थ शीघ्रकर्णके योगसे भाग देनेसे जो लब्धि आती है वही बिम्बका स्पष्ट व्यास होता है। यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो कलाओं में बिम्बका परिमाण मालूम हो जाता है।

विज्ञानभाष्य—१३वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि ग्रहोंके बिम्बोंके व्यास चन्द्रकक्षामें क्या हैं। इसके आधार पर चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १-३ के अनुसार यह विलोम रीतिसे जाना जा सकता है कि अपनी कक्षामें ग्रहके बिम्बका व्यास

क्या है। परन्तु युतिके सम्बन्धमें यह जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। यहां तो केवल यह जानना चाहिए कि युतिकालमें ग्रहविम्बका कलात्मक मान क्या होता है। परन्तु किसी पिण्डका कोणात्मक या कलात्मक मान उसकी दूरी पर अवलंवित होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृ० १२७-१२८) और पृथ्वीसे ग्रहकी दूरी एक सी नहीं रहती घटा बढ़ा करती है इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहविम्बका मध्यम कोणात्मक मान क्या है। यहां चन्द्रमाकी कक्षामें ग्रहविम्बका जो परिमाण योजनोंमें समझा गया था वही दिया गया है। साथ ही साथ अगले श्लोकमें यह भी बतलाया गया है कि अभीष्टकालमें ग्रहबिम्बका जो स्पष्टमान योजनोंमें आवे उसको १५ से भाग देनेपर उसका स्पष्ट कलात्मक मान आ जाता है। चंद्रग्रहणाधिकारके पृष्ठ ६४५ पर यह बतलाया गया है कि चन्द्रकक्षाका १५ योजन १ कलाके समान कैसे होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि चन्द्रकक्षाके विम्बमानोंको १५ से भाग देनेपर इसका परिमाण कलामें क्यों आ जाता है। इस प्रकार चन्द्रकक्षामें ग्रहोंके विम्बोंका कलात्मक मान नीचे लिखे अनुसार हुआ:—

मंगलका विम्ब	= ३० योजन	= ३०	÷	१५=२	कला
शनि ”	= ३७॥ योजन	= ३७॥	÷	१५=२॥	कला
बुध ”	= ४५ योजन	= ४५	÷	१५=३	कला
गुरु ”	= ५२॥ योजन	= ५२॥	÷	१५=३॥	कला
शुक्र ”	= ६० योजन	= ६०	÷	१५=४	कला

इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य मंगलके विम्बको सबसे छोटा समझते थे। इससे बड़ा शनिका विम्ब समझा

था, इत्यादि। परन्तु स्पष्टाधिकार के १४४ पृष्ठ की सारणीसे प्रकट होता है कि यदि सब ग्रह द्रष्टासे उतनी दूर हों जितनी दूर सूर्य पृथ्वीसे है तो बुधके बिम्बका व्यास सबसे छोटा अर्थात् ६·६८ विकला है। मंगलका इससे बड़ा अर्थात् ९·३६ विकला है। इसके बाद शुक्र, शनि और गुरुके बिम्बोंके व्यास क्रमानुसार १६·८०, १६९·५ और १९४·७२ विकला हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि हमारे आचार्यों ने स्थूल यंत्रोंके द्वारा बिम्बोंके जो परिमाण निकाले थे वे अत्यन्त अशुद्ध हैं जैसा कि म० म० सुधाकर द्विवेदी जी ने भी लिखा* है।

अब यह प्रकट है कि जब १३ वें श्लोकमें दिये हुए बिम्बों के परिमाण ही अशुद्ध हैं तब इन्हींके आधार पर अगले श्लोक के अनुसार स्पष्ट बिम्बके परिमाण ठीक ठीक कैसे जाने जा सकते हैं।

अब यह विचार किया जायगा कि अगला श्लोक कहां तक शुद्ध है। इस श्लोककी प्रथम पंक्ति का सार यह है :—

$$\text{स्पष्ट बिम्ब} = \frac{\text{मध्यमबिम्ब} \times २ \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}$$

$$\text{अथवा स्पष्टबिम्ब} = \frac{\dfrac{\text{मध्यबिम्ब} \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}}{२}$$

---

* सूक्ष्म दूरदर्शक यन्त्रादिना बुध शुक्रयोरपि शशिवत् सितवृद्धि हानित्वं शृङ्गोन्नतिश्चोपलभ्यते। आचार्य समये तादृश यन्त्राणामभावाद् दृष्टया शृङ्गोन्नतिः सितासित बिम्बमितिश्च नोपलब्धाऽतोऽनुमानेन रवेरासन्नत्वादित्यादि कल्पना न समीचीनेति सर्वं स्फुटम्।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त ग्रहयुत्यधिकार श्लोक ३-४ की टीका।

इसको त्रैराशिकके रूपमें इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

$\frac{\text{त्रिज्या + चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}$: त्रिज्या : : मध्यबिम्ब : स्पष्ट बिम्ब

नियमके इस रूपसे सिद्ध होता है कि हमारे आचार्यको यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि जब त्रिज्याकी दूरी पर ग्रह-बिम्ब अपने मध्यम मानके समान होता है तब इससे अधिक दूरी पर स्पष्ट बिम्ब का मान कम होगा और कम दूरी पर स्पष्ट बिम्बका मान अधिक होगा जैसा कि स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२८ में दिखलाया गया है। परन्तु त्रिज्याको ३४३८ मानने से काम नहीं चल सकता। यदि त्रिज्याकी जगह वह दूरी रखी जाय जो चन्द्रमासे पृथ्वीकी दूरी है और $\frac{\text{त्रिज्या + चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}$ की जगह वह दूरी रखी जाय जो इष्टकाल में पृथ्वीसे इष्टग्रहकी दूरी है तो यह अनुपात ठीक हो सकता है। कोई कोई आचार्य इस त्रैराशिकके पहले पदमें त्रिज्याकी जगह तृतीय कर्ण लेते हैं। परन्तु इससे भी उतनी शुद्धता नहीं आ सकती जैसी आनी चाहिये। पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दूरी इष्टकालमें क्या होती है इसकी गणना करनेके लिये पहले यह जानना होता है कि सूर्यसे उस ग्रहकी दूरी स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २६३-२६४ में दिये हुए सूत्रके अनुसार क्या है। फिर उसी अधिकारके पृष्ठ २६८ में दिये हुए चित्रके अनुसार पृथ्वीसे उस ग्रहकी दूरी अर्थात् शीघ्रकर्ण जानना चाहिये अब यदि १४४ पृष्ठमें दिये हुए मध्यबिम्बको पृथ्वी और सूर्यके बीच की दूरीसे गुणा करके इसी शीघ्रकर्णसे भाग दिया जाय तो ग्रहका स्पष्ट बिम्ब शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है। आचार्य

केतकर* की ज्योतिर्गणितके अनुसार पंचतारा ग्रहोंके बिम्बोंके लघुतम और परम मान तथा लघुतम और परम लम्बन त्रिप्रश्नाधिकारके पृष्ठ ५६० में दिये गये हैं। उनसे यह प्रगट होता है कि बिम्बोंका परिमाण लम्बनके अनुसार बदलता है अर्थात् यदि लंबन अधिक होता है तो स्पष्ट बिम्ब भी अधिक होता है और लंबन कम होता है। तो स्पष्ट बिम्ब कम होता है। परन्तु लंबनका परिमाण दूरीके विलोम अनुपातके अनुसार बदलता है अर्थात् जब दूरी अधिक हो जाती है। तब लम्बन कम हो जाता है और जब दूरी कम हो जाती है तब लंबन अधिक हो जाता है (देखो पृष्ठ ५५७)।

चित्र ३४ (देखो पृष्ठ २६८) से प्रकट है कि जिस समय ग्रहका शीघ्र केन्द्र शून्य होता है उस समय पृथ्वीसे ग्रहकी दूरी अत्यन्त अधिक होती है अर्थात् उस समय ग्रहका शीघ्र-कर्ण अत्यन्त अधिक होता है तथा यह पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी और सूर्यसे ग्रहकी दूरीके योगके समान होता है। परन्तु जिस

---

* यह बड़े हर्ष की बात है कि आचार्य वेङ्कटेश बापू केतकर अभी जीवित हैं और अपने सुपुत्र के साथ बीजापुर में रहते हैं और पिता पुत्र दोनों ज्योतिष के अध्ययनमें अभी तक लगे हुए हैं। मैंने भूलसे आपके नामके पहले पृष्ठ २७७ में आपको 'स्वर्गीय' लिख दिया था क्योंकि मैं समझता था कि आप स्वर्गीय हो गये होंगे। परन्तु श्रीमान् पदमम एस. एम्. गोड्रेज Padam S. M. codrez के पत्रों से मालूम हुआ कि आप अभी जीवित हैं। इस सूचना के लिए मैं इन महाशय का बड़ा कृतज्ञ हूं। पूना के महाराष्ट्रीय पंचांगैक्य मंडलके १९८२ वि० के प्रथम अधिवेशन के वृत्तान्त से सिद्ध होता है कि आप वृद्ध होते हुए भी ज्योतिष संबंधी वाद विवादों में सम्मिलित होते हैं। लेखक

समय ग्रहका शीघ्र केन्द्र १८० अंश होता है उस समय पृथ्वी से ग्रहकी दूरी अत्यन्त कम होती है तथा यह पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी और सूर्यसे ग्रहकी दूरीके अंतरके समान होती है। ग्रहके शीघ्रकर्ण और बिम्बोंका संबंध नीचेकी सारणीसे अच्छी तरह प्रकट होता है :—

ग्रह	स्पष्ट बिम्ब		शीघ्र कर्ण	
	लघुतम	परम	परम	लघुतम
	विकला	विकला		
मंगल	४.४	२१·२	२५२४	५२४
बुध	४·८	१०·६	१३८७	६१३
गुरु	३१·६	४६·७	६२०३	४२०३
शुक्र	९·६	६०·०	१७२३	२७७
शनि	१५·८	१९·५	१०५३९	८५३९

यहां पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी अथवा सूर्यका शीघ्रकर्ण १०० माना गया है।

युतिकालमें ग्रहोंको वेध करने की रीति—

छाया भूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रेतु दर्शयेत् ।
ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थः शङ्क्वग्रे सम्प्रदश्यते ॥१५॥
पञ्च हस्तोच्छ्रितौ शङ्कू यथा दिग्भ्रम संस्थितौ ।
ग्रहान्तरेण विक्षिप्तावधो हस्तनिखातगौ ॥१६॥
छायाकर्णौ ततो दद्याच्छायाग्राच्छङ्कुमूर्धगौ
छाया कर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ॥१७॥
शङ्कु मूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ ॥

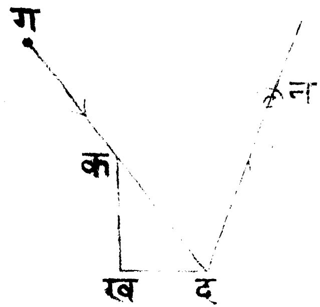
अनुवाद—(१५) समतल भूमि पर जिस पर शंकु गाड़कर छाया नापी जाती है, शंकुकी जिस दिशामें ग्रह हो उसकी विपरीत दिशामें, ग्रहकी युतिकालिक छायाके अग्रमें रखे हुए दर्पणमें ग्रहको दिखलाना चाहिए। ऐसे दर्पणमें ग्रह शंकुकी नोकके साथ मिला हुआ देख पड़ता है। (१६) पांच हाथके ऊंचे दो शंकुओंको उन दिशाओंमें गाड़े जिनमें युतिकालके ग्रह हों। इन शंकुओंका परस्पर यामोत्तर अंतर उतना ही होना चाहिए जितना उन ग्रहोंका अन्तर हो। इनको दृढ़ता पूर्वक खड़ा रखनेके लिए एक एक हाथ पृथ्वीके नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ना चाहिए। (१७) ग्रहकी युतिकालिक छायाके अग्रविन्दु

से शङ्कुकी चोटी तक छायाकर्ण बतलानेवाला एक डोरा सीधा बाँधे। देखनेवालेको चाहिए कि अपनी आंख छाया कर्णके इसी सूत्र पर रखे। (१८) ऐसा करनेसे ग्रह आकाशमें शंकुकी चोटीसे लगा हुआ देख पड़ेगा।

विज्ञान-भाष्य—यह साढ़े तीन श्लोक बड़े महत्वके हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिषकी सूक्ष्म गणना इसीलिए करते थे कि इससे ग्रहोंका प्रत्यक्ष स्थान वही आवे जो वेधसे देख पड़ता है क्योंकि जब तक ग्रहोंकी गणना बिलकुल शुद्ध नहीं होगी तब तक हम उनको इस प्रकार देख ही नहीं सकते जैसा कि इन श्लोकोंमें बतलाया गया है। इससे एक बात और भी ज्ञात होती है कि हमारे आचार्योंको प्रकाश के परावर्तनका नियम भी ज्ञात था।

यहां ग्रहोंकी छायाकी गणना करने के लिए त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीतिके अनुसार युतिकालिक ग्रहोंका नतकाल उनके भोगांश, क्रान्ति और चरसे पृष्ठ ४८५ में बतलायी गयी रीतिके अनुसार जानना चाहिए। नतकाल जान लेने पर पृष्ठ ४३० और ४३१ के समीकरण (ख) और (ग) के अनुसार ग्रहोंके नतांश जानना चाहिए। नतांशसे पृष्ठ ४०४ के समीकरण (ख) के अनुसार दिगंश अथवा अग्रा जानना आवश्यक है। नतांशसे छाया जाननेके लिए नतांश की स्पर्श-रेखाको शंकुके परिमाण से गुणा कर देना चाहिए। यहां १५वें श्लोकके लिए यदि शंकुका परिमाण १२ अंगुलका हो तो कुछ हर्ज नहीं परन्तु १६ वें श्लोक के लिए शंकुका परिमाण ४ हाथ का होना चाहिये। ऐसा होने से द्रष्टा खड़ा होकर ग्रहों का वेध सुगमता पूर्वक कर सकता है।

१५ वें श्लोक का सार चित्र द्वारा इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है:—



चित्र १०७

ग=युतिकालिक ग्रह का स्थान

क ख=समतल भूमि में गड़ा हुआ शंकु

ख द=ग ग्रह की छाया

द=ख द छाया का अग्रबिन्दु जहाँ दर्पण रखा जायगा।

न=द्रष्टाका नेत्र

द्रष्टाका नेत्र द न रेखा के किसी बिन्दु पर होने से दर्पण में ग्रह ग और शंकु की चोटी क एक साथ मिले हुए देख पड़ेंगे।

यदि क ख शंकु चार हाथ का हो तो ख द छाया के अग्र-बिन्दु द से शंकु की चोटी क तक जो सूत्र क द ताना जायगा उस पर किसी जगह द्रष्टाका नेत्र हो तब भी ग्रह ग शंकु की चोटी क से मिला हुआ देख पड़ेगा। यही १६, १७ और १८ वें श्लोक के पूर्वार्ध का सार है।

यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि आजकल यह वेध तभी ठीक ठोक आ सकता है जब ग्रह का नतांश दृग्गणितके अनुसार शुद्ध शुद्ध जाना जाय। इस कामके लिए हमारे सिद्धान्त ग्रन्थोंमें नवीन वेधोंके अनुसार संशोधन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इन श्लोकोंसे यह भी प्रकट होता है कि ज्योतिष-विज्ञान-का अध्ययन ग्रन्थोंके आधार पर ही नहीं होना चाहिए वरन् वेध भी करना चाहिए। इसलिए सिद्ध है कि ज्योतिषका पठन पाठन उचित रीतिसे तभी सम्भव है जब ज्योतिष विद्यालयके साथ अच्छी वेधशाला भी हो। ऐसी वेधशालामें शंकु इत्यादि के स्थानमें आजकलके सूक्ष्म यंत्र दूरदर्शक इत्यादि हों तभी वेधोंमें शुद्धता आ सकती है और सिद्धान्त ग्रन्थोंमें उचित संशोधन करके उनका जीर्णोद्धार भी हो सकता है।

पाच प्रकारकी युतियोंके लक्षण—

उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥

युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशु योगे परस्परम् ।

अंशादूनेऽपसव्याख्य युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ॥ १९ ॥

समागमोंऽशादधिके भवतश्चेद्बलान्वितौ ।

अनुवाद—(१८) का उत्तरार्ध-यदि युतिकालमें दोनों ग्रहों-के बिम्बोंका केवल स्पर्श होता हो तो ऐसी युतिको उल्लेख नामक युति कहते हैं। परन्तु यदि एकका बिम्ब दूसरेके बिम्बको भेद करे अर्थात् कुछ ढकले तो ऐसी युतिको भेद नामक युति कहते हैं। (१६) यदि दोनों ग्रहोंके बिम्ब तो कुछ दूर हों परन्तु उनकी किरणें मिली हुई देख पड़ें तो ऐसी युतिको अंशुविमर्द

नामक युद्ध कहते हैं। यदि दोनों ग्रहोंके विम्बोंका अन्तर एक एक अंशसे कम हो तो ऐसी युतिको अपसव्य युद्ध कहते हैं। इस युद्धमें यदि एकका बिम्ब छोटा हो तो अपसव्य व्यक्त होता है अन्यथा अव्यक्त होता है। (२०) यदि दोनों विम्बोंका अन्तर एक अंशसे अधिक हो तो ऐसी युतिको समागम कहते हैं। यदि दोनों ग्रह बली हों अर्थात् स्थूल हों तो व्यक्त समागम होता है। अन्यथा अव्यक्त समागम होता है।

विज्ञान-भाष्य—यहां केवल परिभाषा बतलायी गयी है जो स्पष्ट है। इसलिए इस पर कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

पराजित और विजयी ग्रहोंका लक्षण—

अपसव्ये जितोयुद्धे पिहितोऽणुरदीप्तिमान् ॥ २० ॥
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः ।
उदक्स्थो दीप्तिमान् स्थूलो जयी याम्येपियोबली ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपसव्य नामक युद्धमें जिस ग्रहका विम्ब ढक जाता है, छोटा और तेजहीन होता है, (२१) रूखा वर्ण हीन या फीका होता है और दक्षिणकी ओर होता है वह पराजित समझा जाता है। परन्तु जिस ग्रहका विम्ब उत्तरकी ओर होता है तेजवान और बड़ा होता है वह विजयी समझा जाता है। बली अर्थात् बड़ा और तेजवान ग्रह दक्षिणकी ओर हो तब भी विजयी समझा जाता है।

विज्ञान-भाष्य—यह भी स्पष्ट है।

आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतश्चेत्समागमः ।
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतांकूटविग्रहौ ॥२२॥

अनुवाद—(२२) यदि दोनों ग्रह पास होते हुए भी प्रभा-युक्त हैं तो समागम नामक युद्ध होता है और यदि दोनों ग्रह छोटे और फीके हैं तो कूटविग्रह नामक युद्ध होता है।

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशोजयी।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात्संयोग साधनम् ॥२३॥

अनुवाद—(२३) शुक्र चाहे उत्तरकी ओर हो चाहे दक्षिण-की ओर बहुधा विजयी होता है। इसी प्रकार चन्द्रमाके साथ पांचों ताराग्रहोंकी युतिका साधन करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य-पांच ताराग्रहोंकी लघुतम और परम बिम्ब मानों की सारणीसे यह प्रकट है कि शुक्र ग्रहका लघुतम बिम्ब मंगल और बुधके लघुतम बिम्बोंसे बड़ा है इसलिए इनकी युतिके समय तो शुक्र ही अधिक दीप्तिमान और स्थूल होनेसे विजयी होता है। जिस समय मंगलका बिम्ब परम होता है उस समय यह सूर्यसे १८० अंश आगे होता है ऐसी दशामें शुक्रके साथ इसकी युति हो ही नहीं सकती; शुक्र और मंगलकी युति तभी हो सकती है जब मंगल भी सूर्यके पास रहे। ऐसी दशामें मंगलका बिम्ब शुक्रके बिम्बसे सदैव छोटा रहेगा। इसलिए मंगल और बुधसे शुक्र सदैव अधिक दीप्तिमान और विजयी होता है। हां, गुरु या शनिके साथ शुक्रकी जब युति होती है तब शुक्र पूर्वमें अस्त होनेके पहले और पच्छिममें उदय होने पर कुछ समय तक इनसे छोटा होता है। इसलिए यह शनि या गुरुसे परा-जित कहा जा सकता है परन्तु ऐसी अवस्था बहुत कम होती है। इसीलिए इस श्लोकमें कहा गया है कि शुक्र प्रायः विजयी होता है।

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता ।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ॥२४

अनुवाद—(२४) लोगोंके शुभाशुभ फलके लिए ग्रहोंके युद्ध समागम इत्यादिकी कल्पनाकी गयी है। यथार्थमें ग्रह अपनी अपनी कक्षामें भ्रमण करते हैं और एक दूसरेसे बहुत दूर हैं परन्तु परस्पर आश्रित अथवा बहुत निकट देख पड़ते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकमें आचार्य ने फलित ज्योतिषके सम्बन्धमें कुछ संकेत किया है परन्तु इस पर अच्छी तरह विचार नहीं किया है कि किस प्रकारके युद्ध या समागमसे कैसा फल होता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त ज्योतिषका ग्रन्थ है इस लिए इसमें विस्तारके साथ फलित ज्योतिषकी चर्चा करने के लिए स्थान नहीं है।

इस प्रकार ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवें अधिकारका विज्ञानभाष्य समाप्त हुआ।

नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवाँ अध्याय

संक्षिप्त विवरण

[श्लोक १—नक्षत्रोंके भोगसे उनके ध्रुव कैसे जाने जाते हैं। श्लोक २-९—नक्षत्रोंके भोग और विक्षेपोंके मान। श्लोक १०, ११ और १२ का पूर्वार्ध—अगस्त्य, मृगव्याध, अग्नि और ब्रह्म-हृदय नामक तारोंके भोग, ध्रुव और विक्षेप। श्लोक १२ का उत्तरार्ध—ध्रुव और विक्षेपकी परीक्षा करने की रीति। श्लोक १३—रोहिणी-शकट भेद कब हो सकता है। श्लोक १४-१५—तारेके साथ ग्रहकी युतिका काल और स्थान जाननेकी रीति। श्लोक १६-१९—नक्षत्र पुंजोंका कौन तारा योगतारा है। श्लोक २०-२१—प्रजापति, अपाम्वत्स और आप ताराओंके ध्रुव और विक्षेप।]

इस अधिकारमें यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके मार्गमें कौन कौन नक्षत्र पुंज पड़ते हैं, उनके स्थान कहां हैं और ग्रहोंके साथ उनके मुख्य तारे अथवा योगतारेकी युतिका समय कैसे जाना जाता है। कुछ ऐसे तारोंकी भी चर्चा आ गयी है जो अत्यन्त प्रतिभावान होनेके कारण प्राचीनकालके साहित्यमें विशेष स्थान रखते हैं, परन्तु जिनके साथ ग्रहोंकी युति नहीं होती। परन्तु ऐसे सब तारों या तारापुंजों की चर्चा यहां मालूम नहीं क्यों नहीं की गयी। मैं परिशिष्टमें ऐसे तारों या तारापुंजोंकी भी चर्चा करूंगा जो इस अधिकारमें नहीं दिये गये हैं परन्तु प्राचीन साहित्यमें आये हैं अथवा विशेष महत्व रखते हैं जैसे सप्तर्षि, काश्यप मंडल, इत्यादि। इन ताराओंके विषयमें आजकल नवीन

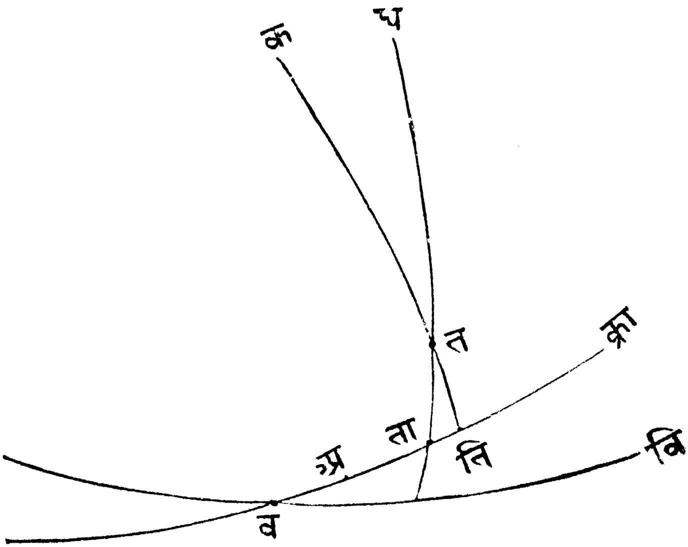
वेधोंसे जो कुछ मालूम हुआ है वह भी संक्षेपमें यहीं दिया जायगा।

प्रोच्यन्ते लिप्तिकाभानां स्वभोगोऽथ दशाहतः।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगलिप्तायुताध्रुवाः ॥१॥

अनुवाद—(१) अश्विनी आदि तारोंके जो भोग आगे कहे जाते हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओंमें जोड़ने से जो आता है वही उन तारों के ध्रुव हैं।

विज्ञानभाष्य इस श्लोकके पूर्वार्धमें जो स्वभाग शब्द आया है उसका अर्थ भोगांश नहीं है और न इसका परिमाण अंशों या कलाओंमें ही है। तारे के स्वभोग का अर्थ है तारे का अपने नक्षत्र के आदि विन्दु से अन्तर। यह अन्तर ऐसी इकाई में है जिसको न तो अंश कह सकते हैं और न कला। इसीलिए यह बतलाया गया है कि यदि इस स्वभोगको दससे गुणा किया जाय तो इसका परिमाण कलाओंमें मालूम होता है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रचलित इकाइयोंसे भिन्न इकाई का प्रयोग संक्षेपके लिए किया गया है। दससे गुणा करनेपर जो आता है वही तारे की अपने नक्षत्रके आदि बिन्दुसे कलाओं में दूरी होती है। इस दूरीको गत नक्षत्रोंकी भोग-कलाओं में जोड़नेसे अश्विनीके आदि विन्दुसे अर्थात् राशि-चक्रके आदि विन्दुसे उक्त तारेका ध्रुव कलाओंमें जाना जाता है। पहले बतलाया गया है कि अश्विनीके आदि विन्दुसे किसी ग्रहका क्रान्तिवृत्त पर जो अन्तर होता है वह भोगांश कहलाता है और क्रान्तिवृत्त से उस ग्रहका कदम्ब-प्रोतवृत्तपर जो अन्तर होता है वह विक्षेप कहलाता है। परन्तु यहां भोगांश न कहकर

ध्रुवांश या ध्रुव कहा गया है। यह चित्र १०८ से स्पष्ट हो जाता



चित्र ११०

वक्रा=क्रान्तिवृत्त

व वि=विषुवद्वृत्त

व=वसन्त सम्पात

अ=अश्विनीका आदि बिन्दु

त=तारे का स्थान

क=कदम्ब

ध=ध्रुव

धतता=त तारेका ध्रुवप्रोतवृत्त

कतति= त तारेका कदम्बप्रोतवृ

अता=त का ध्रुवाभिमुख भोग या ध्रुव।
नता=त का ध्रुवाभिमुख विक्षेप
अति=त का कदम्बाभिमुख भोग अथवा भोग
तति=त का कदम्बाभिमुख विक्षेप अथवा विक्षेप

है। यदि त तारे से जाते हुए कदम्बप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त खींचे जाय तो ये क्रान्तिवृत्त पर दो भिन्न विन्दुओंपर मिलते हैं। क्रान्तिवृत्तके जिस विन्दु ति पर कदम्बप्रोतवृत्त मिलता है उससे अश्विनीके आदिका जो अन्तर होता है उसे तारे का भोग अथवा कदम्बाभिमुख भोग कहते हैं जैसा कि पहले के अध्यायोंमें बतलाया गया है और इसी विन्दुसे तारे के अन्तर तति को विक्षेप या शर कहते हैं। जिसे यहां कदम्बाभिमुख विक्षेप कहना अधिक उपयुक्त होगा परन्तु इस अध्यायमें भोग और विक्षेप दूसरे अर्थमें प्रयोग किये गये हैं। भोगका अर्थ कदम्बाभिमुख भोग नहीं है वरन् ध्रुवाभिमुख भोग है और आगे जिस विक्षेपकी चर्चाकी गयी है उसका अर्थ कदम्बाभिमुख विक्षेप नहीं वरन् ध्रुवाभिमुख विक्षेप है। यह बात चित्रके नीचे जो विवरण दिया है उससे और भी स्पष्ट हो जाती है। एक ही परिभाषिक शब्दसे दो भिन्न अर्थ प्रकट करनेमें भ्रम हो जाता है इसलिये इसको अच्छी तरह ध्यानमें रखना चाहिये।

ग्रहयुत्यधिकारमें यह बतलाया गया है कि ग्रहोंके भोगों और विक्षेपोंमें आयन दृक्कर्म और आक्षदृक्कर्म दो संस्कार करने पड़ते हैं। ग्रहोंके भोगमें आयन दृक्कर्मका संस्कार करनेसे जो आता है वही ग्रहका ध्रुवाभिमुख भोग अथवा ध्रुव होता है। इसलिए जब इस अध्यायमें ग्रहोंका ध्रुवाभिमुख भोग ही

लिखा गया है, तब नक्षत्रोंके साथ आयनदृक्कर्मकी आवश्यकता न पड़ेगी, केवल आक्षदृक्कर्मकी आवश्यकता पड़ेगी जैसा कि इसी अध्यायके १४वें श्लोकमें बतलाया गया गया है। इस प्रकार यह प्रकट है कि तारोंका ध्रुवांश लिखनेमें यही सुभीता है कि इसमें आयनदृक्कर्म नहीं करना पड़ता।

तारोंके स्वभोग और विक्षेप—

अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः।
अष्टार्था अब्धयोऽष्टागा अङ्गागामनवस्तथा ॥२॥
कृतेषवो युगरसः शून्यवाणा वियद्रसाः।
खवेदाः सागरनगा गजागाः सागरर्तवः ॥३॥
मनवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्यार्धभोगगम्।
आप्यस्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवण स्थितिः ॥४॥
त्रि चतुः पादयोः मध्यौ श्रविष्ठा श्रवणस्यतु।
स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृति यमलाश्विनः ॥५॥
रन्ध्राद्रयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्यादपक्रमात्।
दिङ्मास विषयाः सौम्ये याम्ये पञ्चदिशो नव ॥६॥
सौम्ये रसाः खं याम्येगाः सौम्ये खार्कास्त्रयोदश।
दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशदथोत्तरे ॥७॥
याम्येऽध्यर्धं त्रिककृता नवसार्धशरेषवः।
उत्तरस्यां तथा षष्टिस्त्रिंशत् षट्त्रिंशदेवहि ॥८॥
दक्षिणेत्वर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे।
भागाः षड्विंशतिः खं च दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥९॥

अनुवाद—अश्विनी से लेकर पूर्वाषाढ़तक के योग-तारोंके स्वभोग क्रमसे ४८, ४०, ६५, ५७, ५८, ४, ७८, ७६, १४, ५४, ६४, ५०, ६०, ४०, ७४, ७८, ६४, १४, ६, ४ हैं; उत्तराषाढ़ का योग-तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्रके आधे पर, अभिजित के योग तारे का भोग पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के अंतमें, श्रवण का योग-तारा उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्त में, धनिष्ठा का योग-तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे और चौथे चरणों की सन्धि में अर्थात् तीसरे चरण के अंतमें है। शतभिषक् पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्र पद, और रेवती के योग तारोंके स्वभोग क्रम से ८०, ३६, २२ और ७९ हैं। क्रान्तिवृत्त से इन अश्विन्यादि योग-तारोंके विक्षेप क्रम से १०, १२, ५, उत्तर की ओर; ५, १०, ९ दक्षिण की ओर; ६, ० उत्तर की ओर; ७ दक्खिन की ओर; ०, १२, १३ उत्तर की ओर; ११, २ दक्षिणकी ओर; ३७ उत्तरकी ओर; १½, ३, ४, ९, ५½, ५ दक्षिण की ओर; ६०,३०, ३६, उत्तरकी ओर; ½ दक्षिणकी ओर; २४, २६, और ० अंश उत्तरकी ओर हैं।

विज्ञान भाष्य—प्रत्येक तारेके स्वभोगको पहले श्लोकके अनुसार १० से गुणा करनेपर तारेकी स्वभोग-कला आ जायगी। इसको गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ देनेसे उस तारे का ध्रुव ज्ञात होगा। जैसे अश्विनी तारे का स्वभोग ४८ है,इसको १० से गुणा किया तो इसका स्वभोग ४८० कला हुआ। अश्विनी तारा अश्विनी नामक पहलेही नक्षत्र में है इस लिए गत नक्षत्र शून्य हुआ इस लिए ४८० कला अथवा ८ अंश अश्विनी तारे का ध्रुव हुआ। इसी प्रकार रोहिणी तारे का स्वभोग कलाओंमें५७० हुआ। रोहिणी के पहले तीन नक्षत्र अश्विनी, भरणी, कृत्तिका गत हैं इस लिए इनका भोग

३ × ८०० कला हुआ क्योंकि एक नक्षत्र ८०० कलाओंके समान होता है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक ६४)। इसलिए रोहिणी तारेका ध्रुव = ५७० + ३ × ८०० कला = ५७० + २४०० कला = २९७० कला = ४९ अंश ३० कला।

इसी प्रकार प्रत्येक तारेका ध्रुवांश जाना जा सकता है। उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा तारों के स्वभोगों में विशेषता है, इसलिए इनके ध्रुवांश नीचे लिखे अनुसार बतलाये जाते हैं:—

उत्तराषाढ़का तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधेपर अर्थात् पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के ४०० कला पर है। पूर्वाषाढ़ के पहले अश्विनीसे मूल तक १९ नक्षत्र होते हैं जिनके भोग १९ × ८०० कला=१५२०० कला के समान है। इसलिए उत्तराषाढ़ का ध्रुव ४०० + १५२००कला =१५६०० कला =२६० अंश हुआ।

अभिजित तारा पूर्वाषाढ़ के अंतमें बतलाया गया है, इसलिए इसका ध्रुव २६० अंश + ४००कला अर्थात् २६६ अंश ४० कला हुआ।

श्रवण तारे का ध्रुव उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंतमें है। एक नक्षत्र=१३ अंश २० कला। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का अंत २६६ अंश ४० कला पर होता है, इसलिए उत्तराषाढ़ के अंतमें श्रवण ताराका ध्रुव २८० अंश हुआ।

धनिष्ठा तारा श्रवण नक्षत्रके तीसरे चरणके अंत में है। नक्षत्रके तीन चरण ६०० कला। अथवा १० अंश के समान होते हैं। इसलिए धनिष्ठाका ध्रुव २८० + १० = २९० अंश हुआ।

विक्षेप तो अंशोंमें दिया ही हुआ है, इसलिए इसपर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि ऊपर दिये हुए तारों के ध्रुव सब सिद्धान्त ग्रन्थोंमें समान नहीं हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं—(१) वेधों की भिन्नता (२) अश्विनीके आदि विन्दुकी स्थितिके निश्चय करनेमें भिन्नता (३) योग तारोंके निश्चयमें भिन्नता और (४) सम्पात विन्दु की गति। पहला कारण तो स्पष्ट है क्योंकि वेध यन्त्रोंकी स्थूलताके कारण वेधके फलोंमें भिन्नता स्वाभाविक है। दूसरा कारण भी विशेष महत्व का है। इससे यह जान पड़ता है कि अश्विनीके आदि विन्दुके निश्चयमें पुराने आचार्यों में भी मतभेद था जैसा कि आजकल है। परन्तु इस मतभिन्नता से आजकल संक्रान्तियों और मल-मासों के निश्चय करनेमें बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही है जिससे अखिल भारतीय तिथियों और पर्वों की स्थिरता ही नहीं हो सकती। इस बात पर सब प्रान्तोंके ज्योतिषाचार्योंमें एकता हो जाय तो बड़ा भारी काम हो जायगा और इसके उद्योगमें जो सज्जन तन मन धन लगावेंगे वे बड़े पुण्यके भागी होंगे। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तोंमें इसके सबन्धमें बहुत दिनोंसे उद्योग हो रहा है परन्तु अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ।

इसी प्रकार संपात विन्दुकी गतिके कारण तारोंके ध्रुवों और विक्षेपोंमें अन्तर पड़ता जाता है यद्यपि इनके कदम्बाभिमुख भोगों और शरोंमें स्थिरता रहती है।

अब १०-१२ श्लोकोंमें बतलाये गये तारोंके ध्रुवक और विक्षेप देकर कई सारणियोंमें यह बतलानेका उद्योग किया जायगा कि तारोंके ध्रुवांशोंके सम्बन्धमें प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों के क्या मत हैं।

अशीति भागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः ।
विंशेच मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ॥१०॥
विक्षेपो दक्षिणे भागैः खार्णवैः स्यादपक्रमात् ।
हुत भुग्ब्रह्महृदयौ वृषे द्वाविंश भागगौ ॥११॥
अष्टाभिस्त्रिंशताचैव विक्षिप्तावुत्तरेणतौ ।
गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम् ॥१२

अनुवाद—(१०) अगस्त्य तारेका ध्रुव मिथुन राशिके अन्तमें अर्थात् ६० अंश और दक्षिण विक्षेप ८० अंश है। मृगव्याध अथवा लुब्धक तारेका ध्रुव मिथुनके २० अंश पर अर्थात् ८० अंश है। (११) इसका विक्षेप क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण ४० अंश पर है। अग्नि और ब्रह्महृदय दोनों तारोंके ध्रुव वृषराशिके २२ अंशपर अर्थात् ५२ अंश हैं। (१२) इनके विक्षेप क्रमसे ८ अंश और ३० अंश क्रान्तिवृत्तसे उत्तर की ओर हैं। गोलयंत्रके द्वारा इन स्फुटविक्षेपों और ध्रुवकोंकी परीक्षा करना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—१२ वें श्लोकका उत्तरार्ध बड़े महत्वका है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्योंको लकीरका फकीर होना इष्ट नहीं था इसीलिए वह स्थान स्थान पर कहते गये हैं कि यंत्रोंके द्वारा ग्रहों और नक्षत्रोंका वेध करके जो ध्रुवक यथार्थ आवें उनको मानना चाहिए। यहां उन्होंने केवल गोल-यत्रकी चर्चाकी है। त्रिप्रश्नाधिकारके ११ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि शंकुकी छायासे सूर्यका जो भोगांश आता है उससे गणितसे निकाले हुए भोगांशका जो अंतर होता है वही स्पष्ट

अयनांश है। इन बातोंसे स्पष्ट होता है कि हमारे आचार्योंको यह इष्ट था कि ज्योतिष सम्बन्धी गणितका मिलान आकाशके प्रत्यक्ष वेधसे करके उचित संशोधन भी करते रहना चाहिए।

यहां गोलयंत्रकी विशेष चर्चा नहीं की जायगी क्योंकि यह विषय ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३ वें अध्यायमें जहां और यंत्रोंकी चर्चा है स्वयम् आवेगा इसलिए वहीं चित्र देकर यह अच्छी तरह समझाया जायगा। साथही साथ यह भी बतलाया जायगा कि इस समय कुछ नवीन यंत्रों जैसे दूर-दर्शकयंत्र इत्यादिसे बहुत ही सूक्ष्मतापूर्वक कैसे काम लिया जा सकता है और प्रत्येक ज्योतिष विद्यालयके साथ नवीन ढंगके एक एक वेधालयकी कितनी आवश्यकता होती है।

अब हम सारिणी देकर यह बतलाएंगे कि भिन्न भिन्न आचार्योंके मतसे उपर्युक्त तारोंके ध्रुवक और विक्षेप क्या हैं। ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तके ध्रुवक और विक्षेप भास्कराचार्यकी सिद्धान्तशिरोमणिके ध्रुवक और विक्षपसे मिलते हैं। लल्लतंत्र, दामोदरीयभट तुल्य, और सुन्दरी-सिद्धान्तके ध्रुवक और विक्षेप स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षितके भारतीय ज्योतिष शास्त्रसे लिये गये हैं। दीक्षितजीने चित्रा तारेका ध्रुवक १८० अंश मानकर सन् १८८७ ई० के नाटिकल अलमैनेकमें दिये हुए तारोंके विषुवांशों और क्रान्तियोंसे जो ध्रुवक और विक्षप स्थिर किये थे वे भी इस सारिणीमें दिये जायंगे। दीक्षितजीने रेवती तारेके दो ध्रुवक और दो विक्षेप दिये हैं। इसका कारण यह है कि इनके मतसे रेवतीका योग तारा ज़ीटा पिसियम या म्यूपिसियम हो सकता है। इसीलिए पहला ध्रुवक या विक्षप ज़ीटा पिसियम का है और दूसरा म्यूपिसियमका।

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख भोग (ध्रुव)

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५२)

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		टालमीय मत तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारों के अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	८	०	८	०	८	०	८	३०	८		८		७	४३	
२	भरणी	२०	०	२०	०	२०	०	२१	१५	२०		२१		२१	~~५४~~ ५१	
३	कृत्तिका	३७	३०	३७	२८	३६	०	३७	४५	३८		३८		३६	२	
४	रोहिणी	४६	३०	४६	२८	४६	०	४६	०	५०		४६		४७	३७	
५	मृगशिरा	६३	०	६३	०	६२	०	६२	०	६३		६२		६१	२६	
६	आर्द्रा	६७	२०	६७	०	७०	०	६६	०	६७		६६		७५	४३	

७	पुनर्वसु	९३	०	९३	०	९२	०	९२	५४	९३	९४	९१	२१
८	पुष्य	१०६	०	१०६	०	१०५	०	१०६	०	१०६	१०६	१०५	४३
९	आश्लेषा	१०९	०	१०८	०	११४	०	१०७	१५	१०८	१०७	१०८	२८
१०	मघा	१२९	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	१२९	१२९	१२६	५९
११	पूर्वा फाल्गुनी	१४४	०	१४७	०	१३९	२०	१४८			१४८	१४४	३१
१२	उत्तरा फाल्गुनी	१५५	०	१५५	०	१५४	०	१५५	३०	१५५	१५५	१५४	१
१३	हस्त	१७०	०	१७०	०	१७३	०	१७०	०		१७०	१६५	६
१४	चित्रा	१८०	०	१८३	०	१८४	२०	१८३	०	१८३	१८३	१८०	०
१५	स्वाती	१९९	०	१९९	०	१९७	०	१९८	३०	१९९	१९८	१९३	२८
१६	विशाखा	२१३	०	२१२	५	२१२	०	२१२	१५	२१२	२१२	२०२	११
१७	अनुराधा	२२४	०	२२४	५	२२२	०	२२४	१५		२२४	२१९	८

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		द्वितीय आर्य भट तुरीय		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारोंके अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१८	ज्येष्ठा	२२९	०	२२९	५	२२८	०	२२९	३०	२२९		२३०		२२५	५९	
१९	मूल	२४१	०	२४१	०	२४१	०	२४२	०			२४२		२४०	४५	
२०	पूर्वाषाढा	२५४	०	२५४	०	२५४	०	२५५	३०	२५४		२५५		२५३	२३	
२१	उत्तराषाढा	२६०	०	२६०	०	२६७	२०	२६०	०	२६०		२६१		२६३	५	
	अभिजित	२६६	४०	२६५	०	२६७	०	२५९	४५			२५८		२५६	१०	
२२	श्रवण	२८०	०	२७८	०	२८३	१०	२७५	१५	२७८		२७५		२७२	५८	
२३	धनिष्ठा	२९०	०	२९०	०	२९६	२०	२८७	३०	२९०		२८६		२८४	४७	

२४	शततारका	३२०	०	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	३२०	३२०	३१८	४३	
२५	पूर्व भाद्रपद	३२६	०	३२६	०	३२७	०	३२५	०	३२६	३२५	३२२	३	
२६	उत्तर भाद्रपद	३३७	०	३३७	०	३३५	२०	३३७	०	३३७	३३७	३४०	३५	
२७	रेवती	३५९	५०	०	०	३५९	०	०	०	०	०	३५६ १	५७ २०	
	अगस्त्य	९०	०	८७	०	८७	०			८७	८०			Canopus
	व्याध	८०	०	८६	०	८६	०			८६	८१			Sirius
	अग्नि	५२	०							५२	५३			β Tauri
	ब्रह्मा	५२	०							५२	५६			α aurigae (capella)
	प्रजापति	५७	०							५७	६१			β aurigae
	अपांवत्स	१८०	०								१८३			θ virginis*
	आपस	१८०	०											δ virginis *

Popular Hindu Astronomy Part I pp. 240-241

नक्षत्रोंके योगताराओं तथा कुछ अन्य ताराओंके ध्रुवाभिमुख शर या विक्षेप

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४४३)

नक्षत्रोंकी क्रम-संख्या	ताराओंके नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	१०		१०		१०		१०		१०		१०		९	५	उत्तर
२	भरणी	१२		१२		१२		१२	१५	१२		१२		१०	५७	उत्तर
३	कृत्तिका	५		४	३१	५		४	३०	४		५		४	९	उत्तर
४	रोहिणी	५		४	३३	५		४	३०	४	३०	५		५	३२	दक्षिण
५	मृगशिरा	१०		१०		१०		१०		१०		१०		१३	२४	दक्षिण
६	आर्द्रा	९		११		११		११		११		११		८	४९	दक्षिण

७	पुनर्वसु	६		६		६		६		६		६		६	४६	उत्तर
८	पुष्य	०		०		०		०		०		०		०	५	उत्तर
९	आश्लेषा	७		७		७		७		७		७		११	२४	दक्षिण
१०	मघा	०		०		०		०		०		०		०	२६	उत्तर
११	पू.फाल्गुनी	१२		१२		१२		११	४५			१२		१०	३१	उत्तर
१२	उ.फाल्गुनी	१३		१३		१३		१२	४५			१३		१३	२४	उत्तर
१३	हस्त	११		११		८		११		११		११		१३	१७	दक्षिण
१४	चित्रा	२		१	४५	२		१	४५	१	४५	२		२	१२	दक्षिण
१५	स्वाती	२७		२७		२७		२७	१५			२७		३२	५६	उत्तर
१६	विशाखा	१	३०	१	२१	१	३०	१	१५			१		०	२२	दक्षिण

नक्षत्रों की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्यसिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त, सिद्धान्त		लल्लतंत्र		द्वितीयार्य भट सिद्धान्त		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शरकी दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१७	अनुराधा	३	०	१	४४	३		१	४५			२		२	१	दक्षिण
१८	ज्येष्ठा	४		३	३०	४		३	३०			३		४	३७	दक्षिण
१९	मूल	९		८	३०	८	३०	८	३०			८		१३	४८	दक्षिण
२०	पूर्वाषाढ़	५	३०	५	२०	५	२०	५	३०			५		२	७	दक्षिण
२१	उत्तराषाढ़	५		५		५		५				५		१	२८३	दक्षिण
	अभिजित्	६०		६२		६३		६२		६२		६२		६१	५५	उत्तर
२२	श्रवण	३०		३०		३०		२९	३०	३०		३०		२९	४९	उत्तर

२३	धनिष्ठा	३६	३६	३६	२५ ३०	२६	३६	३४ १५	उत्तर
२४	शततारका	० ३०	० १८	० २०	० १५	० २०	०	० २५	दक्षिण
२५	पू. भाद्रपद	२४	२४	२४	२३ ४५		२४	२१ ६	उत्तर
२६	उ. भाद्रपद	२६	२६	२६	२६		२७	१३ ४५	उत्तर
२७	रेवती	०	०	०	०		०	० १४ } ३ १८ }	दक्षिण
	अगस्त्य	८०	७७	८०		७७	७६		दक्षिण
	व्याध	४०	४०	४०		४०	४०		दक्षिण
	अग्नि	८				८	८		उत्तर
	ब्रह्मा	३०				३०	३०		उत्तर
	प्रजापति	३८				३८	३९		उत्तर
	अपांवत्स आप	३ ६					३		उत्तर उत्तर

ग्रहका रोहिणी-शकट-भेद कब होता है—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योंऽशकद्वयात् ।
विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥ १३ ॥

अनुवाद—(१३) वृषराशिके १७ वें अंश पर स्थित जिस ग्रह का दक्षिण विक्षेप २ अंशसे अधिक होता है वह ग्रह रोहिणी नक्षत्रके शकटको भेद करता है ।

विज्ञान भाष्य—रोहिणी नक्षत्र में ५ तारे हैं जिनकी आकृति गाड़ी की तरह अथवा अंग्रेज़ीके वी (V) अक्षरकी तरह है। इन पांच तारोंमें सबसे उत्तर वाले तारेका दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कलाके लगभग है। इस तारेको आजकल एपसिलान टारि कहते हैं। और रोहिणीके योग तारेका दक्षिण शर ५ अंश ३२ कला है। जिस ग्रहका दक्षिण शर या विक्षेप इन दो सीमाओंके बीचमें होता है वह रोहिणीके शकटके भीतर हो जाता है। इसीको रोहिणीके शकटका भेदन कहते हैं। यह प्रकट है कि ग्रहका विक्षेप उसके पातपर आश्रित रहता है। चंद्रमाका पात १८ वर्षोंमें एक फेरा करता है। इस एक फेरेमें चन्द्रमा केवल ५,६ वर्ष तक शकटका भेद करता है। यदि चंद्रमाका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक हो और ५ अंश ३२ कलासे कम और उस समय यह रोहिणी नक्षत्रमें हो तो यह अवश्य रोहिणीके शकटमें होकर चलेगा इसलिए चन्द्रमाका रोहिणी-शकट-भेद होगा। अब यह देखना है कि जिस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें होता है उस समय इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे अधिक कब होता है।

मध्यमाधिकारके पृष्ठ ११३ में बतलाया गया है कि चन्द्रमा का परमविक्षेप ५ अंश ८ कला ४२ विकला है। इसका अर्थ यह है कि जब चन्द्रमा राहुसे ९० अंश आगे रहता है तब इसका उत्तर शर ५ अंश ८ कला और ४२ विकला होता है और जब यह केतुसे ९० अंश आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर इतना ही होता है। परन्तु जब यह राहु या केतुपर रहता है तब इसका शर शून्य होता है। इस लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक ६८, पृष्ठ १८२ चित्र २५ के आधारपर यह सहज ही जाना जा सकता है कि चन्द्रमाका शर २ अंश ३५ कलासे अधिक कब होता है। इस चित्रमें यदि व स चन्द्रमाकी कक्षा, व प क्रान्तिवृत्त, व राहुका स्थान, स चन्द्रमाका स्थान, स प चन्द्रशर और स व प चन्द्रमाका परम विक्षेप मान लिया जाय तो व स और स प का संबंध सहज ही जाना जा सकता है। यहां यदि स प को २ अंश ३५ कला मान लिया जाय तो।

$$ज्या\ (वस) = \frac{ज्या\ (सप)}{ज्या\ (सवप)} = \frac{ज्या\ २^\circ ३५'}{ज्या\ ५^\circ\ ९'} = \frac{\cdot ०४५१}{\cdot ०८९८} = \cdot ५०२२$$

$\therefore$ व स = ३० अंश ९ कला

अर्थात् जब चन्द्रमा अपने पातसे एक राशि आगे रहता है तब इसका शर २ अंश ३५ कलासे अधिक होता है। परन्तु रोहिणी क्रान्तिवृत्तके दक्षिण है और इसका ध्रुवाभिमुख भोगांश सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ४९ अंश ३० कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षितके अनुसार ४७ अंश ३७ कला है तथा कदम्बाभिमुख भोगांश सूर्य-सिद्धान्तकी गणनासे ४८ अंश ९ कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षितकी गणनासे ४५ अंश ५७ कला है। इसलिए यदि रोहिणीके योग ताराका कदम्बाभि

मुख भोगांश ४६ अंश मान लिया जाय तो जिस समय चन्द्रमा-का भोगांश इतना ही होगा उस समय ही रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है यदि इसका दक्षिण शर भी २ अंश ३५ कलासे अधिक हो। ऐसी दशामें चन्द्रमाको केतुसे कमसेकम १ राशि आगे रहना चाहिए अर्थात् जब केतुका भोगांश कमसे कम १६ अंशहो तभी रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है।

ऊपरकी गणनासे यह सिद्ध हुआ कि जब केतुसे चंद्रमा १ राशि आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला होता है। इसके बाद इसका दक्षिण शर बढ़ते बढ़ते ५ अंश ८ कला हो जाता है। उस समय यह केतुसे ३ राशि आगे हो जाता है। फिर इसका दक्षिण शर घटने लगता है और जब यह केतुसे ५ राशि आगे अथवा राहुसे १ राशि पीछे रहता है तब तक इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे कम नहीं होता। इसी सीमाके भीतर चन्द्रमा रोहिणीके शकटका भेद करता है। परन्तु ऊपर सिद्ध हुआ है कि जब केतुका भोगांश १६ अंश होता है अर्थात् जब केतु मेष राशिके १६ अंश पर होता है तब यदि चन्द्रमाका दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला हो तो रोहिणी-शकट-भेद होगा। इसके बाद केतु अपनी वक्री गतिसे जब पीछे हटता जायगा तब भी चन्द्रमा रोहिणीके शकट को भेद करेगा क्योंकि उस समय रोहिणी नक्षत्रमें इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे अधिक होता जायगा। इस प्रकार जब तक केतु मेष के १६ अंशसे ४ राशि पीछे नहीं चला जाता तब तक रोहिणी नक्षत्रमें चन्द्रमाका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे कम नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब केतु मेष राशिके १६ अंश पर आवेगा तब चन्द्रमाके रोहिणी-शकट-भेदका आरंभ होगा और जबतक यह धनुके १६ अंशपर नहीं

आवेगा तबतक चन्द्रमा के प्रति फेरेमें रोहिणी नक्षत्रमें चंद्रमाका रोहिणी-शकट-भेद होगा। परन्तु राहु केतुसे ६ राशि आगे रहता है। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि जब तक राहु मिथुनके १६ अंशसे तुलाके १६ अंश तक की सीमामें रहता है तब तक चन्द्रमाका रोहिणी-शकट-भेद होता है।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके रोहिणी शकट-भेद की भी गणना की जा सकती है। परन्तु मध्यमाधिकार पृष्ट ११३ में दी हुई सारिणीसे यह प्रकट होता है कि शुक्र और बुधके सिवा किसी ग्रहका परम शर २ अंश ३५ कलासे अधिक नहीं है इसलिए बुध और शुक्र का ही रोहिणी शकट-भेद संभव है। शनिका परम शर २ अंश २९ कला ३९ विकला है इसलिए शनिका रोहिणी-शकट-भेद भी असंभव जान पड़ता है। परन्तु वराह मिहिर तथा ×ग्रहलाघवकारने लिखा है कि शनि अथवा मङ्गलक रोहिणी-शकट-भेद होनेसे बड़ा अनिष्ट होता है।

युतिकाल का साधन—

---

† रोहिणी शकटमर्कनंदनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शशी।
किं वदामि यदि नष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयं ॥३५॥

बृहत्संहिता २४ अध्याय

× कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक् शनिरुडुपो यदि चेज्जनक्षयः ॥७॥
भौमार्क्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात् सेदानीं न हि भवतीह स्व-
स्वपाते ॥८॥

ग्रहलाघव, नक्षत्रच्छायाधिकार

ग्रहवद्द्युनिशेमानां कुर्याद्दृक्कर्म पूर्ववत् ।
ग्रहमेलकवच्छेषं ग्रहभुक्त्यादिनानिच ॥१४॥
एष्योहीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः ।
विपर्ययाद्वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) पहले जिस तरह युतिकालिक ग्रहोंका दिन मान और रात्रिमान जाननेको कहा गया है उसी तरह नक्षत्रों का भी दिनमान और रात्रिमान साधन करके उनका आक्षदृक्कर्म संस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् जैसे ग्रहों का परस्पर युतिकाल और युतिस्थान जाना जाता है उसी तरह केवल ग्रह की गतिसे ग्रह और नक्षत्रका युतिकाल और युतिस्थान जान लेना चाहिये। (१५) यदि ग्रहका आयन-आक्ष-दृक्कर्म-संस्कृत भोग नक्षत्र के आक्षदृक्कर्म-संस्कृत ध्रुवकसे कम हो तो समझना चाहिये कि नक्षत्र और ग्रहका योग होनेवाला है और यदि अधिक हो तो समझना चाहिये कि योग हो चुका है। परन्तु यदि ग्रह वक्री हो तो इसका उलटा समझना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकोंमें जो नियम बतलाये गये हैं उनकी व्याख्या ग्रहयुत्यधिकारमें आ चुकी है। यहां ग्रहका तो आयन और आक्ष दोनों दृक्कर्म करने का कहा गया है परन्तु नक्षत्रका केवल आक्षदृक्कर्म करने को कहा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि ग्रहका जो भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार आता है वह कदम्बाभिमुख होता है इसलिए उसमें आयनदृक्कर्म का संस्कार करने से वह

ध्रुवाभिमुख होता है। अब यदि इसमें आक्षदृक्कर्म का संस्कार किया जाय तो इसका भोगांश समप्रोतवृत्तमें आता है। परन्तु नक्षत्रों के जो ध्रुवक दिये गये हैं वे ध्रुवाभिमुख हैं इसलिए इनमें केवल आक्षादृक्कर्म का संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार ग्रह और नक्षत्र के भोगों में किसी इष्टकाल में जो अंतर होता है उसको ग्रह की दैनिक गति से भाग देने पर यह जाना जाता है कि कितने समय में ग्रहका नक्षत्रसे योग होगा या होने वाला है। और सब बातें ग्रहयुत्यधिकार में बतलाये गये नियम के अनुसार ही समझनो चाहिए। यहाँ सुगमता यह है कि नक्षत्र स्थिर होते हैं इस लिए केवल एक ग्रह के संबन्ध की गणना करनी पड़ती है।

नक्षत्रों के योगतारों के पहचानने की रीति -

फाल्गुन्योर्भाद्रपदयोस्तथैवाषाढयोर्द्वयोः ।

विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारोत्तरास्मृताः ।१६।।

पश्चिमोत्तरतारा या द्वितीया पश्चिमे स्थिता ।

हस्तस्य योगतारा सा श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ।।१७।।

ज्येष्ठा श्रवण मैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा ।

भरण्याग्नेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ।।१८।।

रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्यचैव हि ।

यथा प्रत्यवशेषाणां स्थूला स्याद्योगतारका ।।१९।।

पूर्वस्यां ब्रह्महृदयादंशकैः पञ्चभिःस्थितः ।
प्रजापतिर्वृषान्तेऽसौ सौम्येऽष्ट त्रिंशदंशकैः ॥२०॥
अपांवत्सस्तु चित्राया उत्तरेंऽशैस्तु पञ्चभिः ।
बृहत्किञ्चिदतो भागैरापः षड्भिस्तथोत्तरे ॥२१॥

इत्यष्टमोऽध्यायः

अनुवाद—(१६) पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, विशाखा, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्रका उत्तरवाला तारा उस नक्षत्रका योग तारा है। (१७) हस्तनक्षत्र के पश्चिमोत्तर दिशा में जो दो तारे हैं उनमें दूसरा पच्छिमवाला तारा इस नक्षत्रका योगतारा है और धनिष्ठा नक्षत्र के दो उत्तरवाले तारों में भी पच्छिमवाला तारा योग तारा है। (१८) ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा और पुष्य नक्षत्रोंके बीचवाले तारे प्रत्येक के योग तारे हैं। भरणी, कृत्तिका, और रेवती नक्षत्रके दक्षिणवाला तारा प्रत्येक नक्षत्रका योग तारा है। (१९) रोहिणी, पुनर्वसु, मूल और आश्लेषा नक्षत्रोंका पूर्ववालातारा प्रत्येक का योग तारा है। २८ नक्षत्रोंमें से अब जितने शेष हैं, उनमें अर्थात् आर्द्रा, चित्रा, स्वाती, अभिजित और शतभिषक् नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्रका सबसे बड़ा तारा उस नक्षत्रका योग तारा है। (२०) ब्रह्म-हृदय तारे से ५ अंश पूर्वकी ओर प्रजापति नामक तारा वृषके अंतमें है। इसका उत्तर विक्षेपांश ३८ है। (२१) चित्रा तारे से ५ अंश उत्तर की ओर अपांवत्स तारा है जिससे ६ अंश उत्तर कुछ बड़ा आप नामक तारा है।

विज्ञान भाष्य—१६-१६ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र में कौन तारा मुख्य माना गया है जिसके ध्रुवक और शर पहले बतलाये गये हैं। ऐसे मुख्य तारे को योग तारा कहा गया है। आजकल इन योगताराओं के सम्बन्धमें विद्वानों में कुछ मतभेद है। आगे एक सारणी दी जायगी जिससे पता चलेगा कि आजकल कौन विद्वान् किस तारेको योगतारा मानता है। नक्षत्रके लिए कभी कभी उनके देवताओंके नामों का प्रयोग किया गया है इसलिए सुविधाके लिए यह भी बतलाया जायगा कि किस नक्षत्र का स्वामी कौन देवता है तथा प्रत्येक नक्षत्रमें कितने तारे हैं। तारोंकी संख्याओंमें प्राचीन आचार्योंमें भी मतभेद है जैसा कि सारणीसे पता चलेगा।

ब्रह्महृदयका ध्रुवक १राशि २२ अंश बतलायागया है। इससे ५ अंश पूर्व प्रजापतिका तारा है। इसलिए प्रजापतिका ध्रुवक १ राशि २७ अंश है। श्लोकमें बतलाया गया है कि प्रजापति वृषराशिके अंतमें है परन्तु इसका अर्थ यही लेना चाहिए कि यह वृषराशिके अंतके पास है। चित्रा तारे का दक्षिण शर २ है और अपांवत्स तारा चित्रासे ५ अंश उत्तर है इसलिए अपांवत्सका उत्तर शर ३ अंश हुआ। आप तारा अपांवत्ससे ६ अंश उत्तर है इसलिए इसका उत्तर शर ६ अंश हुआ।

तारों और नक्षत्रोंकी पहचानके लिए ४ आकाश-चित्र दिये जायंगे जिनसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि कौन नक्षत्र किस समय आकाशमें कहां देख पड़ता है।

नक्षत्रों के देवता

(मुहूर्त चिंतामणि तथा भारतीय

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्र के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्र कल्प	वृद्धगार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंडखाद्यक
१	अश्विनी	अश्विनी कुमार	२	२	२	३	३	२
२	भरणी	यम		३	३	३	३	३
३	कृत्तिका	अग्नि	७	६	६	६	६	६
४	रोहिणी	ब्रह्मा	१		५	५	५	५
५	मृगशिरा	चन्द्रमा		३	३	३	३	३
६	आर्द्रा	रुद्र	१ या २	१	१	१	१	१
७	पुनर्वसु	अदिति	२	२	२	४	५	२
८	पुष्य	बृहस्पति	१	१	१	३	३	१
९	आश्लेषा	सर्प		६	६	५	६	६
१०	मघा	पितर		६	६	५	५	६
११	पूर्वा फाल्गुनी	भग	२	२	२	२	८	२
१२	उत्तरा फाल्गुनी	अर्यमा	२	२	२	२	२	२

और तारोंकी संख्या

ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ४५८)

लल्लकृत रत्नकोश	शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्तचिन्तामणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu Astronomy के अनुसार
३	२	३	३	३	β, γ Arietis
३	३	३	३	३	35, 39, 41 Arietis
६	६	६	६	६	η Tauri,etc.
५	५	५	५	५	α, θ γ, δ, ϵ Tauri
३	३	३	३	३	λ, ϕ_1, ϕ_2, Orionis
१	१	१	१	१	α Orioniss
४	२	४	४	४	β, α Geminorum
३	३	३	३	३	θ, δ, γ Cancri
५	५	५	५	५	ϵ, δ, σ, η, ρ Hydrae
५	५	५	५	५	α, η, γ, ζ, μ, ϵ, Leonis
२	२	२	२	२	δ. θ Leonis
२	२	२	२	२	β, 93 Leonis

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्रों के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्रकल्प	वृद्ध गार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंड खाद्यक
१३	हस्त	सूर्य		५	५	५	५	५
१४	चित्रा	विश्वकर्मा	१	१	१	१	१	१
१५	स्वाती	पवन	१	१	१	१	१	१
१६	विशाखा	इन्द्र, अग्नि	२	२	२	२	५	२
१७	अनुराधा	मित्र		४	४	४	४	४
१८	ज्येष्ठा	इन्द्र	१		३	३	३	३
१९	मूल	राक्षस	१या२		६	११	११	२
२०	पूर्वाषाढ़	जल		४	४	४	२	४
२१	उत्तराषाढ़	विश्वदेव		४	४	२	८	४
	अभिजित	ब्रह्मा	१		३			३
२२	श्रवण	विष्णु	१	३	३		३	३
२३	धनिष्ठा	वसु	४	५	४		[illegible]	५
२४	शतभिषक	वरुण	१	१	१	१००	१००	१
२५	पूर्वा भाद्रपद	अजपाद		२	२	२	[illegible]	[illegible]
२६	उत्तरा भाद्रपद	अहिर्बुध्न्य	४	२	२	२	८	२
२७	रेवती	पूषा	१	१	४	३२	३२	१

लल्लकृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्म सिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिन्तामणि	नक्षत्रके तारोंके नाम Kaye के Hindu Astronomy अनुसार
५	५	५	५	५	δ, γ, ε, α, β Corvi
१	१	१	१	१	α Virginis
१	१	१	१	१	α Bootis
४	२	४	४	४	γ, β, α, ι Librae
४	३	४	४	४	δ, β, π Scorpii
३	३	३	३	३	α, σ, τ Scorpii
११	६	११	११	११	λ, μ, κ, ι θ, ε Scorpii
२	४	४	४	२	δ, ε, Sagittarii
२	४	४	३	२	δ, ζ Sagittarii
३	३	३	३	३	α, ε, ζ Lyrae
३	३	३	३	३	α, β, γ, Aquilae
४	५	४	४	४	β, α γ, δ Delphini
१००	१००	१००	१००	१००	λ Aquarii, etc.
२	२	२	२	२	α, β Pegasi
२	२	२	२	२	γ Pegasi, α Andromedae
३२	३२	३२	३२	३२	ζ Piscium, etc.

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुकके मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	बं.बा.केतकरके मतसे	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंहसामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६,५७
६	विशाखा	α or K Librae	24 Librac	24 Librae	α or K Librae	24 Librae	α Librae	α Librae
१७	अनुराधा	δ Scorpii	β scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii
१८	ज्येष्ठा	α Scorpii अर्थात् Antares	Antares	Antares	Antares	Antares	Antares,	Antares
१९	मूल	v or 34scorpii	34 scorpii	λ scorpii	34 scorpii	45 ophiuchi	λ Scorpii	λ Scorpii
२०	पूर्वाषाढ़	δ Saggittarii	δ Saggittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	λ Sagittarii	δ Sagittari,
२१	उत्तराषाढ़	t Sagittarii	φ Sagittari	σ Sagittarii	t Sagittarii	σ Sagittarii	π Sagittarii	t Sagittarii
	अभिजित	α Lyrae Vega	Vega	Vega	Vega	Vega	Vega	Vega

२२	श्रवण	α Aquilae अर्थात् Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair
२३	धनिष्ठा	α Delphini	α Delphini	β Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini
२४	शतभिषक	λ aquarii	λ aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii
२५	पूर्वाभाद्रपद	Markab अर्थात् α Pegasi	Markab	Markab	Markab	Markab	Markab	β Pegasi
२६	उत्तराभाद्रपद	α Andromedae अर्थात् Alpherat	γ Pegasi (Algenib, α Andromedae	Algenib α Andromedae	α Andromedae	α Andromedae	γ Pegasi Algenib)	α Andromeda
२७	रेवती	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscim	ζ Piscium	ζ or μ Piscium	η Piscium

इन सारणियों में तारों के अङ्गरेज़ी नाम विलक्षण ढंग से दिये हुए हैं इस लिये यह बतला देना आवश्यक है कि ये नाम किस प्रकार रखे गये हैं। अङ्गरेजीमें तारा-पुञ्जों के जो नाम प्रचलित हैं वह अधिकतर लैटिन और यूनानी (Greek) भाषा से लिये गये हैं। प्रत्येक तारापुंज के नाम के पहले कोई यूनानी अक्षर जोड़ कर रखा गया है। इन अक्षरों का क्रम अधिकतर इस प्रकार रखा गया है कि उस पुंज में जो तारा सबसे चमकीला और बड़ा है उसका नाम पहले अक्षर 'आल्फ़ा' से प्रकट किया गया है। उसके बाद जो तारा उससे छोटा है उसका नाम दूसरे अक्षर 'बीटा' से प्रकट किया गया है, इत्यादि। कुछ प्रधान तारोंके नाम इस तरह तो रखे ही गये हैं परन्तु साथ ही साथ उनके साहित्य में प्रचलित नाम भी अब तक व्यवहार में आते हैं।

यदि यह मालूम हो कि संस्कृत साहित्य में किसी तारे का क्या नाम प्रचलित है और अङ्गरेजी साहित्य में क्या नाम है तो तारों के पहचानने में बड़ी सुविधा होती है। इस लिए पहले यह बतला कर कि यूनानी भाषा के अक्षर और उनके नाम क्या हैं, एक सारिणी से यह भी बतलाया जायगा कि तारापुंजों के नाम संस्कृत और अङ्गरेजी तथा लेटिन और यूनानी भाषाओं में क्या है। इन अक्षरों की जगह हमारे आकाश चित्र में हिन्दी के अङ्क क्रमानुसार प्रयुक्त किये जायंगे जैसा कि अन्तिम स्तम्भ बतलाया गया है।

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण के रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्रों में प्रयोग किये हुए अङ्क
α	alpha	आल्फ़ा	a	१
β	Beta	बीटा	b	२
γ	Gamma	गैमा	g	३
δ	Delta	डेल्टा	d	४
ϵ	Epsilon	एपसाइलन	e short	५
ζ	Zeta	ज़ीटा	z	६
η	Eta	ईटा	e long	७
θ	Theta	थीटा	th	८
ι	Iota	आयोटा	i	९
K	Kappa	कैपा	k	१०
λ	Lambda	लैमडा	l	११
μ	Stet	म्यू	m	१२

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण का रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्रों में प्रयोग किया हुआ अंक
ν	Nu	न्यू	n	१३
ξ	xi	क्साई	x	१४
ο	omicron	ओमीक्रोन	o short	१५
π	Pi	पाई	p	१६
ρ	Rho	रो	r	१७
σ	Sigma	सिग्मा	s	१८
τ	Tau	टा	t	१९
υ	upsilon	अपसाइलन	u	२०
φ	Phi	फाई	ph	२१
χ	chi	काई	ch	२२
ψ	Psi	प्साई	ps	२३
ω	omega	ओमेगा	olog	२४

१२ राशियों के नाम—

१ संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाम	२ संस्कृत के पर्याय	३ अंग्रेजी नाम	४ लैटिन नाम
मेष	क्रियः	Ram	Aries
वृष	ताबुरि	Bull	Taurus
मिथुन	जितुमः, जित्तमः	Twins	Gemini
कर्क	कुलीर	crab	cancer
सिंह	लेय	Lion	Leo
कन्या	पाथोन, पाथेय	virgin	Virgo
तुला	जूकः	Balance	Libra
वृश्चिक	कौर्प्यः	scorpion	scorpio
धनु	तौक्षिक	Archer	sagittarius
मकर	आलोकेर (?)	capricorn	capricornus
कुंभ	हृद्रोग	Water-bearer	Aquarius
मीन	इत्थ्य, इथुसी (?)	Fishes	Pisces

संस्कृत, लैटिन और अंग्रेजी सभी नामों के एक ही अर्थ हैं परन्तु *यूनानी नामों के अक्षरों में भी समानता पायी जाती है जिससे जान पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति एक ही देश में हुई है। वह देश चाहे भारतवर्ष हो या यूनान अथवा कोई अन्य देश जिससे इन दोनों देशों ने लिया हो। यह बात भाषा-तत्व-विशारदों से ही स्पष्ट हो सकती है कि इस एकता का क्या कारण है। फलित ज्योतिष के और भी शब्द ऐसे हैं जिनके संस्कृत, अरबी और यूनानी नामों में समता है। परन्तु इस विषय पर यहां तुलनात्मक विचार नहीं किया जायगा क्योंकि इसकी सामग्री इस समय दुर्लभ है। यदि सुबिधा हुई तो भूमिका में यह विषय फिर उठाया जायगा।

इस अध्यायमें जिन नक्षत्रोंकी चर्चा हुई है उनकी पहचान के लिए यह आवश्यक है कि उनके चित्र दिये जांय। इसलिए सौर ज्येष्ठ, भाद्रपद, मार्गशीर्ष और फाल्गुन मासोंके आकाश-चित्र † दिये जाते हैं। इन चित्रोंमें तारोंके यूनानी नाम नहीं दिये गये हैं इसलिए योग तारोंके पहचाननेमें कुछ कठिनाई पड़ सकती है परन्तु नक्षत्रों अर्थात् तारा-समूहों और उनकी स्थितिके समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इन चित्रोंमें केवल वही तारे नहीं दिये गये हैं जिनकी चर्चा

---

* खेद है कि यूनानी अक्षरों के टाइपके अभावसे यूनानी नाम नहीं दिये गये।

† संवत १९७८ विक्रमीय के कार्तिक माससे संवत १९७९ के भाद्रपद मास तक की मर्यादाके लिये जब वह काशीके ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित होती थी, उसके सम्पादक बाबू सम्पूर्णानन्दजी की इच्छासे इस मासके आकाशचित्र इसी लेखक द्वारा बनाये गये थे। उन्हींसे चार

इस अध्यायमें आयी है वरन् आकाशके अन्य प्रधान नक्षत्र समूहों के भी स्थान दिखलाये गये हैं। इनमें से जिनकी चर्चा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें आयी है उनके नाम संस्कृत ग्रन्थों से ही लिये गये हैं परन्तु जिनकी चर्चा प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है उनके नाम वही रखे गये हैं जो आजकल अङ्गरेज़ी ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं अथवा इनके हिन्दी के समानार्थ-सूचक शब्द बनाये गये हैं। जैसे Cassiopea के लिए काश्यप मंडल, Cepheus के लिए सिफियस, Draco के लिए अजगर, Leporis के लिए शशक इत्यादि। आचार्य वेंकटेश बापू केतकरने अपने ज्योतिर्गणितके पृष्ट ३२४में कई प्रधान तारोंके नाम प्रसिद्ध ऋषियों और देवताओं के नाम पर रखे हैं जैसे कण्व, कुबेर, रुद्र, यम, पराशर इत्यादि। परन्तु ये नाम इस चित्र में नहीं दिये गये हैं क्योंकि अभी ये किसी सभा द्वारा स्थिर नहीं किये गये हैं इस लिए पाठकों को तभी सुविधा होगी जब वही नाम दिये जांय जो संसार के साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं।

इन चित्रों में आकाश के वह दृश्य दिखलाये गये हैं जो २५ अक्षांश के सब स्थानों से चित्रों में बतलाये हुए महीनों में संध्या के ८ बजे से १० बजे तक देखे जा सकते हैं। महीने का

चित्र चुनकर दिये जाते हैं। इनमें उस समय के मंगल, गुरु और शनि ग्रहों के चित्र भी यथा स्थान दिये गये थे, जो ब्लाक से हट नहीं सकते इसलिये पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे ग्रह अब वहां नहीं देख पड़ेंगे क्योंकि ग्रहों के स्थान बदलते रहते हैं तारों की तरह एक से नहीं रहते। इन ब्लाकों के देने में ज्ञानमंडल के संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने जो उदारता दिखलाई है उसके लिए विज्ञान-परिषद और लेखक दोनों गुप्तजी के ऋणी हैं।

आरम्भ संक्रान्ति के प्राय: दूसरे दिन से माना गया है क्योंकि चांद्रमास के अनुसार बनाया हुआ चित्र एक महीने से अधिक काम नहीं दे सकता जब कि संक्रान्ति के हिसाब से बनाया हुआ चित्र सैकड़ों वर्ष तक काम में आ सकता है। संक्रान्ति का विचार भी आजकल तीन तरह से किया जाता है। यहाँ सूर्यसिद्धान्त की रीति से संक्रान्ति का विचार किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए यह बतलाना आवश्यक जान पड़ता है कि कौन संक्रान्ति अङ्गरेजी महीने की किस तारीख को पड़ती है। इन चार चित्रों से वर्ष के बारहों महीनों में कैसे काम लिया जा सकता है उसके लिए भी कुछ बातें अगले दो पृष्ठों की सारणी में दे दी जाती है जिसकी विधि आगे बतलाई जायगी।

ऊपर जो तीन तीन महीने एक साथ दिखलाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि उन तीन महीनों की पहली तारीख को बीचवाले महीने का आकाश-चित्र ६ठे स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है। अथवा यों कहिये कि मोटे अक्षरों में बतलाये हुए महीने का आकाश-चित्र इस महीने के आगे पीछेवाले महीनोंकी १ली तारीखको ६ठें स्तम्भमें बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है।

इस सारणीमें केवल यह बतलाया गया है कि महीनेकी १ ली तारीखको कौन आकाश चित्र किस समय देखना चाहिये

यदि महीनेकी किसी और तारीखको आकाश-चित्रसे काम लेना हो तो यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जो दृश्य महीनेकी १ ली तारीखको १० बजे देख पड़ता है वही

दृश्य २री तारीखको दस बजनेसे ४ मिनट पहले, ३री तारीखको दस बजनेसे ४ × २=८ मिनट पहले, एक सप्ताह के बाद अर्थात् ८ वीं तारीखको ४ × ७=२८ मिनट पहले और १५ दिनके बाद १६ तारीखको १५ × ४=६० मिनट या १घंटा पहले अर्थात् ९ बजे देख पड़ेगा। इसका कारण यह है कि पृथ्वी दिन रात भरमें १ अंश सूर्यकी परिक्रमा करनेमें आगे बढ़ती है जिससे सूर्य तारोंके मध्य पूरबकी ओर एक अंश खसकता हुआ देख पड़ता है। इसलिये सूर्यको याम्योत्तर वृत्तपर आनेमें प्रतिदिन ४ मिनटकी देर हो जाती है अथवा सूर्यका विषुवांश प्रति दिन प्रायः ४ मिनट बढ़ता जाता है। परन्तु आकाश-चित्र जिस नाक्षत्र-कालका बनाया गया है वह स्थिर है इसलिये मध्याह्नसे जितने समय पर आकाश किसी दिन देख पड़ता है उससे ४ मिनट पहले ही दूसरे दिन देख पड़ता है (देखो पृष्ठ ४६२-४६६)। सीधा नियम यह है कि मध्याह्नके सूर्यके विषुवांश से जितना पहले या पीछे आकाश चित्रका नाक्षत्र-काल है मध्याह्नसे उतना ही पहले या पीछे आकाश-चित्रमें बतलाये गये दृश्य आकाशमें देख पड़ते हैं। जैसे वैशाखकी १ ली तारीखको मध्याह्नकालीन सूर्यका विषुवांश १ घण्टा २९ मिनटके लगभग होता है और ज्येष्ठके आकाश चित्रका नाक्षत्रकाल १३ घंटा ३० मिनट है अर्थात् मध्याह्न कालीन विषुवांशसे १२ घण्टा १ मिनट पीछे है इसलिये वैशाखकी १ ली तारीखको ज्येष्ठका आकाश चित्र रातके १२ बजकर १ मिनट पर देख पड़ेगा। परन्तु ९ठें स्तम्भमें ११

सौर मास	किस संक्रान्ति से आरम्भ होता है	उस दिनकी अङ्गरेजी तारीख जिस दिन सौर मास की पहली तारीख मानी गयी है	सौर मासकी १ली तारीखके मध्याह्न कालका सूर्य का विषुवांश*		नाक्षत्रकाल† जिस का आकाश चित्र बनाया गया है		सौरमास की १ली तारीखको आकाश चित्र देखने का समय धूप-घड़ीके अनुसार मध्याह्नोपरान्त		सौरमास की १ली तारीख का काल-समीकरण
			घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	
वैशाख	मेष	१४ अप्रेल	१	२९			११	५९	
ज्येष्ठ	वृष	१५ मई	३	२७	१३	३०	१०	१	
आषाढ़	मिथुन	१५ जून	५	३३			७	५६	

* मध्याह्नकालमें जो सूर्यका विषुवांश होता है वही मध्याह्न का नाक्षत्रकाल भी होता है (देखो पृष्ठ ४०६ पाद टिप्पणी) । यह १९८५ विक्रमीय का प्रयागके मध्याह्नकालका विषुवांश है। यह प्रतिवर्ष एक एक मिनट कम होता जाता है परन्तु ४ वर्ष के बाद प्रायः वही फिर हो जाता है। परन्तु यह अन्तर नगण्य है।

† नाक्षत्र काल नाक्षत्र-घटिका-यन्त्र से जाना जाता है और जिस समय वसन्त-सम्पात-विन्दु याम्योत्तरवृत्त पर जाता है उस समय नाक्षत्र दिन का आरम्भ होता है (देखो पृष्ठ ४६३-४६५)

श्रावण	कर्क	१७ जुलाई	७	४५			११	४३
भाद्रपद	सिंह	१७ अगस्त	९	४६	१९	३०	९	४२
आश्विन	कन्या	१७ सितम्बर	११	३८			७	५१
कार्तिक	तुला	१८ अक्टूबर	१३	३१			११	५७
मार्गशीर्ष	वृश्चिक	१७ नवम्बर	१५	२९	१	३०	९	५९
पौष	धनु	१६ दिसम्बर	१७	३४			७	५५
माघ	मकर	१४ जनवरी	१९	४२			११	४६
फाल्गुन	कुम्भ	१३ फरवरी	२१	४६	७	३०	९	४३
चैत्र	मीन	१५ मार्च	२३	३९			७	५०

बज कर ५६ मिनट बतलाया गया है इसका कारण यह है कि १२ घन्टा १ मिनट नाक्षत्र-काल में है और ११ घन्टा ५६ मिनट धूपघड़ीके अनुसार सावन-कालमें है। क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि सावन दिन नाक्षत्र दिनसे ४ मिनटके लगभग बड़ा होता है (देखो पृष्ठ ४६३-४६६)। इस लिये नाक्षत्र-कालका ६ घण्टा सावन-कालके ५ घण्टा ५६ मिनटके समान होता है।

इस नियमके अनुसार यदि आप माघ महीनेकी १ली तारीखको एक ही रातमें आकाशके कुल तारोंको देखना चाहें तो सहज ही देख सकते हैं। इस तारीखको बम्बई और जगन्नाथ पुरीको मिलानेवाली रेखाके उत्तरके प्रान्तोंमें अर्थात् सारे उत्तर भारतमें सूर्य साढ़े पांच बजेके पहले अस्त होता है। इसलिये ६ बजे संध्याके समय आकाशके तारे अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगते हैं। इस तारीखको मध्याह्नकालीन सूर्यका विषुवांश १६ घण्टा ४२ मिनट होता है इसलिये मध्याह्न से ६ घन्टा पीछेका नाक्षत्र काल हुआ १६ घण्टा ४२ मिनट + ६ घण्टा = २४ घन्टा ४२ मिनट अथवा १ घन्टा ४२ मिनट जो १ घन्टा ३० मिनटके लगभग है। इस लिये माघ की १ली तारीख को १ घण्टा ३० मिनट वाले नाक्षत्रकाल का आकाश चित्र अर्थात् मृगशीर्षका आकाश चित्र ६ बजे संध्या के समय देखा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप श्रवणसे लेकर पुनर्वसु तक के १३ नक्षत्रों को अथवा धनिष्ठा से लेकर पुनर्वसु तक के १२ नक्षत्रों को सहज ही पहचान सकते हैं। यदि इससे ६ घंटा पीछे १२ बजे रात को आकाश देखें तो उस समय का नाक्षत्रकाल ७ घंटा ४२ मिनटके लगभग होगा जब कि फाल्गुन मासका आकाश-चित्र आपके काममें आ सकता है क्योंकि

फाल्गुन मास का आकाश चित्र उस समय का है जब नाक्षत्र काल ७ घंटा ३० मिनट होता है। इस चित्र से आपको अश्विनीसे लेकर हस्त नक्षत्र तक की पहचान सहज ही हो सकती है। इसी प्रकार यदि आप इसी रात को ६ बजे प्रातः-काल के लगभग अथवा १०, १२ मिनट और पहले ही आकाश देखें तो ज्येष्ठ का आकाश चित्र काम दे सकता है क्योंकि ६ बजे प्रातःकालका नाक्षत्रकाल १३ घंटा ४० मिनटके लगभग होगा और इससे १२, १३ मिनट पहले का आकाश-चित्र १३ घंटा ३० मिनट के नाक्षत्रकाल के समय का होगा। इस आकाश-चित्रसे आप पुनर्वसु से लेकर मूल या पूर्वाषाढ़ तकके तारे देख सकते हैं। इसी प्रकार यह भी हिसाब लगाया जा सकता है कि किसी और रात को किस समय किस मास के आकाश चित्र काम दे सकते हैं।

चित्रका साधारण वर्णन—चित्रमें जो गोल रेखा खींची हुई है वह २५ अक्षांश का क्षितिज है इसलिए प्रयाग या काशीके क्षितिजसे प्रायः मिलता है। केन्द्र में धन का एक चिह्न इस प्रकार + है। इससे आकाशका वह बिन्दु प्रकट होता है जो २५ अक्षांश पर सिरके ठीक ऊपर होता है। इसे खस्वस्तिक या खमध्य कहते हैं। गोल रेखाके पास उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम तथा इनके बीच की दिशाएं दिखलाई गयी हैं। उत्तरसे दक्षिण तक जो सीधी रेखा देख पड़ती है वह याम्योत्तरवृत्त है। मध्याह्न-कालमें सूर्य इसी रेखा पर रहता है। पूरबसे पच्छिम तक जो टेढ़ी रेखा देख पड़ती है वह विषुवद्वृत्त है। वसंत-सम्पात और शरद्-संपात के दिन सूर्य इसी पर देख पड़ता है और ठीक पूर्व में उदय तथा ठीक पच्छिम में अस्त होता है। विषुवद्वृत्त को काटती हुई एक दूसरी रेखा भी है जिसे क्रान्तिवृत्त कहते

है। सूर्य इसी पर प्रतिदिन चलता हुआ देख पड़ता है। यथार्थ में यह हमारी पृथ्वीका मार्ग है जिसपर चलती हुई यह वर्ष भर में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। यह मार्ग बड़े महत्वका है। चंद्रमा और ग्रह इसी के आसपास आकाश में चक्कर लगाते हुए देख पड़ते हैं। क्रान्तिवृत्त २७ समान भागों में बांटा गया है जिन्हे नक्षत्र कहते हैं। मार्गशीर्ष के आकाश चित्रमें नक्षत्रोंके नाम भी दे दिये गये हैं परन्तु अन्य चित्रों में नक्षत्रों की केवल क्रम संख्या दी गयी है। जैसे क्रान्ति वृत्तपर जहां १ लिखा है वहां १ ला नक्षत्र अश्विनीका अन्त होता है, जहां ५ लिखा है वहां ५ वां नक्षत्र मृगशिरा समाप्त होता है, इत्यादि। क्रान्तिवृत्त पर जहां छोटेसे वृत्तके भीतर चिह्न बना हुआ है वहीं सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आजकल रेवती नक्षत्रका अन्त और अश्विनी नक्षत्रका आरम्भ समझा जाता है। क्रान्ति वृत्त, विषुवद्वृत्त और याम्योत्तरवृत्त की रेखाएं आकाशमें देख नहीं पड़ती हैं। इनकी कल्पना ज्योतिषियोंने सुविधा के लिए की है।

वैसे तो निर्मल आकाशमें जब अन्धेरी रात हो अनगिनत तारे देख पड़ते हैं परन्तु इन चित्रोंमें केवल वही दिखलाये गये हैं जो चांदनी रात में भी देखे जा सकते हैं। आकार का परिचय कराने के लिये कुछ ऐसे तारे भी ले लिये गये हैं जो पूर्णमासी के ३, ४ दिन आगे पीछे चन्द्रमा का अधिक प्रकाश होने के कारण नहीं देख पड़ते। आकाश-गङ्गा भी जिनमें नन्हे नन्हे असंख्य तारे एक दूसरेसे मिले हुए देख पड़ते हैं इन चित्रोंमें नहीं दिखलायी गयी है। अंधेरी रातमें यह आकाश-गंगा भी उत्तर की ओर प्रजापति, परशु, कश्यप, राजहंस और श्रवण मन्डलोंको नहलाती हुई वृश्चिक, धनु राशियोंको

खींचती हुई प्रसिद्ध अग्रहायण और लुब्धक मण्डलको पुनर्वसु और प्रश्वासे अलग करती हुई उत्तरसे दक्खिन तक आकाशको घेरे हुए है।

जिस समय का चित्र बनाया गया है उससे कुछ पहले देखने पर पूर्व क्षितिज के पास वाले तारे उदय न होने के कारण नहीं देख पड़ेंगे और पच्छिम क्षितिज के पासवाले तारे कुछ ऊपर देखपड़ेंगे और याम्योत्तरवृत्तके पास वाले तारे कुछ पूरब की ओर हटे हुए देख पड़ेंगे। परन्तु यदि उपर्युक्त समय से कुछ पीछे आकाश देखा जाय तो पूर्व क्षितिजके तारे कुछ ऊपर उठे हुए देख पड़ेंगे और क्षितिजके पास कुछ नये तारे भी उदय हो चुके रहेंगे; पच्छिम क्षितिजमें कुछ तारे अस्त हुए रहेंगे और याम्योत्तरवृत्तके पासवाले तारे पच्छिमकी ओर ढल चुके रहेंगे।

२५ अक्षांशसे जो स्थान उत्तर हैं वहां उत्तर के कुछ और तारे देख पड़ेंगे। परन्तु जो स्थान दक्षिण हैं वहां दक्खिन के कुछ और तारे देख पड़ेंगे और तारोंकी ऊंचाई नीचाईमें भी कुछ अन्तर देख पड़ेगा परन्तु इससे कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

चित्र देखने की रीति—जिधर मुंह करके आकाशको देखना हो चित्रमें अंकित उसी दिशाको नीचे करके चित्र को खड़ाकर लीजिए। सबसे नीचे वह तारा है जो क्षितिज के पास देख पड़ेगा। नीचे से केन्द्र तक जो जो तारे चित्रमें दिखाये गये हैं क्षितिजसे खस्वस्तिक तक वही तारे उसी क्रमसे देख पड़ेंगे।

ज्येष्ठ मासका आकाश चित्र—

सिरके ऊपर—स्वाती खस्वस्तिकसे कुछ पूरब और दक्खिन है। पौन घण्टेमें यह याम्योत्तरवृत्त पर आजायगा और उस समय खस्वस्तिकसे ५ अंश दक्खिन रहेगा।

उत्तर—सप्तर्षिके पहले ५ तारे याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम हो गये हैं। छठा तारा वशिष्ठ प्रायः याम्योत्तरवृत्त पर है। इसीके पास इसका युगल तारा अरुंधती भी ध्यानसे देखने पर देख पड़ेगा। सातवां तारा मरीचि कुछ पूरब है और १५ मिनट में याम्योत्तरवृत्त पर आजायगा।

सप्तर्षिके नीचे ४ मंद तारे पूरब से पच्छिम की ओर प्रायः एक रेखामें फैले हुए देख पड़ते हैं। यह अजगर की पूंछ की तरफ के तारे हैं, जिसका मुंह इस समय उत्तर-पूर्व दिशामें प्रायः उसी ऊंचाई पर देख पड़ता है जिस ऊंचाई पर लघु-सप्तर्षि के तारे उत्तर दिशामें अजगरकी लपेटके नीचे देख पड़ते हैं। उत्तर से कुछ पूर्व की ओर सिफियसके तीन तारे क्षितिजके पास ही देख पड़ते हैं।

उत्तर-पूरब—इस दिशामें क्षितिजके पास ही हंस मण्डलके तारे देख पड़ते हैं। यहांसे लेकर पूरब-दक्खिन के कोने तक एक चमकती हुई सड़क सी दिखाई पड़ती है। इसीको आकाश-गंगा कहते हैं। इसमें अनगिनत तारे आरम्भिक दशामें हैं। हंसके ऊपर बहुत ही चमकीला तारा अभिजित है। प्रथम श्रेणी का यह तीसरा तारा है। इसी के बगलमें पूरबकी ओर अजगर का मुख है।

पूरब—क्षितिज के पास ही कुछ उत्तर की ओर हटकर श्रवण नक्षत्र के तीन तारे हैं जिसके बीच का तारा बहुत चम-

कीला और प्रथम श्रेणी का है। श्रवण के ऊपर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच हरिकुलेश पुंज है जिसके सभी तारे मन्द ज्योतिके हैं। हरिकुलेश पुंज के कुछ ही ऊपर ५, ७ तारे मुकुट के आकार के देख पड़ते हैं। इसके तारे भी मन्द ज्योति के हैं। इसके और ऊपर खस्वस्तिक के पास स्वाती पुञ्ज है जिसका स्वाती नामक तारा प्रथम श्रेणी का चमकीला तारा है रङ्ग में कुछ कुछ लाल है।

पूरब दक्षिण—इस समय इस दिशा में वृश्चिक राशि के तारे अपनी अपूर्व छटासे आकाश को शोभायमान कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो एक बड़ा भारी बिच्छू आकाशमें लटक रहा है जिसका मुख अनुराधा नक्षत्रके तीन तारों से बना हुआ है और पेट में ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे लटक रहे हैं। बीच वाला तारा भी प्रथम श्रेणीका और कुछ कुछ लाल है। बिच्छूका डंक दक्खिनको ओर फैला हुआ है जिसमें बहुत से छोटे छोटे तारे चमक रहे हैं। क्षितिजके पास ही मूल नक्षत्रके तारे भी पास ही पास देख पड़ते हैं। कुछ पूरब की ओर परन्तु क्षितिजके पास ही पूर्वाषाढ़ नक्षत्रके तारे देख पड़ते हैं। मूल और पूर्वाषाढ़ के तारे धनुराशि में हैं जो पूरा उदय नहीं हुआ है। पूर्वाषाढ़के ऊपर चित्रमें मङ्गल ग्रहके दो स्थान दिखलाये गये हैं परन्तु अब वह यहाँ नहीं देख पड़ेगा। अनुराधाके ऊपर विशाखा नक्षत्रके दो तारे दहने बायें फैले हुए देख पड़ते हैं। ये बहुत चमकीले नहीं है परन्तु बड़े महत्वके हैं।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पासही सेन्टोरो पुंजके दो तीन तारे प्रथम श्रेणीके हैं। ये इतने दक्खिन हैं कि हम काशी प्रयाग निवासियों को एक घन्टेसे अधिक नहीं दिखाई पड़ते।

लखनऊ वालोंको इससे भी कम समय तक देख पड़ते हैं। अलीगढ़, बरेली वालोंको कठिनाईसे दख पड़ेंगे और इससे भी उत्तर रहने वालोंको नहीं देख पड़ेंगे। कुछ पच्छिम की ओर क्षितिजके पास ही दूसरी श्रेणीके चार तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। यह भी एक घन्टे से अधिक नहीं देख पड़ते।

खस्वस्तिक और दक्षिण क्षितिजके मध्यसे कुछ और ऊपर प्रथम श्रेणी का चित्रा तारा है जो अपनी स्थिति के कारण बड़े महत्व का है। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है। आजसे कोई सवा सोलह सौ वर्ष पहले शरद सम्पात इसी तारे के पास होता था अर्थात् जब सूर्य यहां पहुंचता था तब वह दक्षिण गोल में जाता था। आजकल शरद् सम्पात इस तारे से २२ अंश ५० कला के लगभग पच्छिम हो गया है और उस जगह है जहां १२ वें नक्षत्र के पास श अक्षर लिखा हुआ है। महाराष्ट्र प्रान्त में इसी तारेके सम्बन्ध में बड़ा वादविवाद चल रहा है। जो लोग कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र अथवा मेष राशि का आरम्भ उस बिन्दु से माना जाना चाहिए जिससे चित्रा तारा ठीक १८० अंश दूर है वे लोग चैत्र पक्ष के कहलाते हैं। इस पक्ष के समर्थक आचार्य वेंकटेश बापूजी केतकर तथा अन्यान्य सज्जन हैं। इनके विरुद्ध एक दूसरा पक्ष है जिसके समर्थक लोकमान्य तिलक भी थे। इनका मत है कि अश्विनी का आरम्भ स्थान वह विन्दु है जिस से चित्रा तारा १८४ अंश के लगभग दूर है। यह विन्दु रेवती नक्षत्र में है (देखो भाद्रपद मास का चित्र)। इसी लिए इस पक्ष को रैवत पक्ष कहते हैं।

चित्रा से पच्छिम कुछ नीचे की ओर हस्त नक्षत्र के ५ तारे हाथ की अंगुलियों की तरह फैले हुए देख पड़ते हैं। हस्त के ऊपर कन्या राशिके कई मंद मंद तारे देख पड़ते हैं। नीचेकी

ओर के दो तीन तारे जो प्रायः सीधी रेखा में हैं क्रान्तिवृत्त के पास ही प्रायः उसी के समानान्तर देख पड़ते हैं। इस रेखाके पच्छिम सिरे पर जो तारा है उसी के पास आजकल शरद सम्पात विंदु है, इसलिये जब सूर्य यहां आता है तब वह दक्षिण गोल में जाता है। इसी से चित्रा तारा २३ अंश के लगभग दूर है।

दक्षिण पच्छिम—इस दिशा के आकाश में कोई महत्व के तारे नहीं हैं। बहुत मन्द २ तारों की एक वक्र रेखा चित्रा और हस्त नक्षत्रों के नीचे से होती हुई पच्छिम दिशा तक फैली हुई है जिसके पच्छिमी सिरे पर एक तारा कुछ चमकीला है।

पच्छिम—क्षितिजके पास प्रश्वा नामक तारा देख पड़ता है। इससे उत्तर की ओर कई मन्द मन्द तारे एक वक्र रेखामें देख पड़ते हैं जिसके उत्तरी छोर पर दो प्रथम श्रेणी के तारे हैं। यही पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारे हैं। प्रश्वासे पुनर्वसु तक मन्द मन्द तारों की जो वक्र रेखा बन जाती है वह मिथुन राशि है। प्रश्वाके ऊपर बहुत मद मंद तारों का एक वक्र है जिसे कर्क राशि कहते हैं। यह ठीक पच्छिमकी ओर देख पड़ता है। इससे ऊपर कुछ ही पच्छिम की ओर हटकर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचो बीच सिंह राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा दिखा रहे हैं। सिंहकी गर्दन नीचेकी ओर लटकी हुई है जिसमें ६, ७ तारे सहज ही देखे जा सकते हैं जिनका आकार हँसियाकी तरह जान पड़ता है। दक्खिन वाला अथवा बायीं ओर वाला तारा कुछ कुछ लाल है और प्रथम श्रेणीका है। इसीको मघाका योग तारा या केवल मघा तारा कहते हैं। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है इसलिए बड़े महत्वका है। इससे दहने उत्तरकी ओर एक और तारा है जो चमकमें मघासे कुछ कम है परन्तु इतना

चमकीला अवश्य है कि पूर्णमासीकी रातमें भी देखा जा सकता है। मघाके ऊपर दो तारे दहने बायें चमकते हुए देख पड़ते हैं। ये पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके तारे हैं और सिंहराशिकी कमरमें हैं। सिंहराशिकी पूंछमें पूर्वाफाल्गुनीके कुछ और ऊपर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रका अकेला तारा है। इस प्रकार यह प्रकट है कि पच्छिम दिशामें दो राशियोंके तारे अपनी चमकसे सहज ही लोगोंको आकर्षित कर सकते हैं; केवल कर्कराशिके तारोंको मिथुन और सिंहराशियोंके बीच कुछ दक्खिनकी ओर ध्यानसे देखना पड़ता है।

उत्तर पच्छिम—इस दिशामें क्षितिजके पास प्रजापति मण्डलके केवल प्रजापति नामका तारा देख पड़ता है। ब्रह्महृदय तारा कुछ पहले अस्त हो गया है। इसके सिवा क्षितिजके पास कोई चमकीला तारा अथवा तारा समूह नहीं है। बहुत ऊपर पहले बतलाये हुए सप्तर्षिमण्डलके तारे देख पड़ते हैं। सप्तर्षिमण्डलके दो ध्रुव-सूचक तारों क्रतु और पुलहकी रेखामें दक्खिनकी ओर एक तारा है इससे और दक्खिन परन्तु पूर्वाफाल्गुनीके उत्तर दोनोंके बीचमें बहुत मन्द मन्द तारे सर्पाकार देख पड़ते हैं और पुराणोंमें प्रसिद्ध नहुष राजाकी याद दिलाते हैं जो अगस्त ऋषिके शापसे सर्प बन गया था।

इस प्रकार ज्येष्ठमासके आकाश चित्रका वर्णन पूरा हुआ।

भाद्रपद मासका आकाश-चित्र।

सिरके ऊपर—इस समय तीन प्रसिद्ध नक्षत्रमण्डल खस्वस्तिकके आसपास देख पड़ते हैं। श्रवणमण्डलके तीन तारे प्रायः याम्योत्तरवृत्त पर खस्वस्तिकसे कुछ दक्खिन हटे हुए देख पड़ते हैं। इसीके पास धनिष्ठा नक्षत्रके चार तारे बहुत पास पास

परन्तु मंदज्योतिके हैं। यह नक्षत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्वका है। वेदांग-ज्योतिष-कालमें जब सूर्य यहां पहुँचता था तभी उत्तरायणका आरम्भ होता था।

खस्वस्तिकके पास ही एक मन्द तारा है जो हंसकी पूंछका अन्तिम तारा है। इससे उत्तर पूर्व दिशामें एक ही रेखामें दो और तारे हैं जो इससे अधिक चमकीले हैं परन्तु उत्तर वाला इनमें सबसे अधिक चमकीला है। बीचवाले तारेके अगल बगल पहली रेखासे समकोण बनाते हुए प्रायः एक ही रेखामें दो तीन तारे और देख पड़ते हैं जो हंसके पंखकी तरह जान पड़ते हैं। यह हंस आकाशगङ्गामें पंख फैलाये तैरता हुआ जान पड़ता है। हंसके पच्छिम अभिजित नक्षत्र है जिसका सबसे चमकीला तारा भी अभिजित नामसे प्रसिद्ध है। यह आकाशगङ्गासे बाहर पच्छिमकी ओर है। चमकमें इस तारेका स्थान तीसरा है।

आकाश गङ्गा—यह चित्रमें नहीं दिखलाई गयी है परन्तु इस समय इसका दृश्य बहुत ही मनोरम है। इस समय यह उत्तर-पूर्व क्षितिजसे दक्षिण-पच्छिम क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पूर्व दिशामें इस समय परशु या पारसीक मण्डल उदय हो रहा है। वहींसे आकाश गङ्गाका भी आरम्भ देख पड़ता है जो राहमें काश्यप मण्डलको नहलाती हुई सिफियसके बगलसे होती हुई हंसको अच्छी तरह शराबोर कर देती है। हंसके उत्तरवाले तारेसे ही इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं जो प्रायः समानान्तर दिशामें आगे बढ़ती हुई दक्षिण पच्छिम क्षितिजके पास फिर मिलती हुई जान पड़ती हैं। पूर्ववाली शाखा श्रवण नक्षत्रको परिप्लावित करती हुई धनुराशिके मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रोंको लीन करती हुई क्षितिजमें गुप्त हो जाती है। पच्छिमवाली शाखामें चमकीले तारे बहुत कम हैं। दक्षिण-पच्छिम क्षितिजके

पास वृश्चिकके डंकके तारोंको डुबाती हुई यह भी गुप्त हो जाती है। ज्येष्ठा नक्षत्र इस शाखाके पच्छिमी तट पर देख पड़ता है।

उत्तर—लघु सप्तर्षिके तारे ध्रुवसे पच्छिमकी ओर फैले हुए हैं। लघु सप्तर्षिके कुछ और पच्छिम अजगर लटका हुआ देख पड़ता है जिसके मुखके चार तारे अभिजितके पास तक फैले हुए देख पड़ते हैं। अजगरकी पूंछके पास सप्तर्षि मण्डलके ध्रुव-सूचक तारे उत्तर और उत्तर-पच्छिम दिशाओंके बीच क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। इस सप्तर्षि मण्डलके अन्य तारे उत्तर-पच्छिम दिशामें देख पड़ते हैं।

ध्रुव ताराके पूरब कुछ ऊपरकी ओर सिफियसके ४ मंद तारे हैं जिसके और पूरब काश्यप मण्डलके तारे अंग्रेज़ीके डबलू (W) अक्षरका आकार बनाते हुए देख पड़ते हैं। काश्यप मण्डलसे नीचे उत्तर-पूर्व दिशामें परशु या पारसीक मण्डलके तारे क्षितिजके पास ही हैं।

पूर्व—पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओंके बीच क्षितिजके पास ही अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे उदय होते हुए देख पड़ते हैं। इसके ऊपर अंतरमदा (Andromeda) का वक्र देख पड़ता है जिसका आरम्भ पारसीक मण्डलके पाससे होता है। इस वक्र पर पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रोंके उत्तरवाले तारे हैं। इन दो नक्षत्रोंके दो दो तारे मिलकर एक वर्गाकार बनाते हैं जिसे भाद्रपदावर्ग अथवा (square of Pegasus) कहते हैं। वर्गके नीचेवाले दो तारे उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें हैं और ऊपरवाले तारे पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें हैं। उत्तराभाद्रपदके तारोंकी रेखाकी सीधमें दक्खिनकी ओर बढ़ने पर प्रायः उतनी ही दूरी पर जितनी दूरी पर ये दो तारे आपसमें हैं वसंत-संपात विन्दु है

जहां क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त एक दूसरेको काटते हुए जान पड़ते हैं। जब सूर्य यहां देख पड़ता है तभी वसंत ऋतुका आरम्भ होता है और सूर्य उत्तर गोलमें आता है। इसी दिन दिन रात समान होते हैं और इसी समयसे दिन बड़ा और रात छोटी होने लगती है।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें चमकीले तारे बहुत कम हैं। ज्येष्ठके महीनेमें इस दिशामें जितने तारे थे वे सब इस महीनेमें दक्षिण-पच्छिम दिशामें हो गये हैं। क्षितिजके पास एक प्रथम-श्रेणीका तारा (Fomalhaut) अवश्य देख पड़ता है जिसे हिन्दीमें कुम्भज कहना उचित प्रतीत होता है यद्यपि कुम्भजका पर्याय अगस्त्य तारा इससे बहुत भिन्न है। इसका नाम कुम्भज मैंने दो कारणोंसे रखा है। एक कारण तो यह है कि यह कुम्भ राशिके पास है दूसरा कारण यह है कि यह ७, ८ बजे संध्याके समय प्रायः आश्विनके महीनेमें दिखाई देने लगता है जब वर्षा ऋतुका अन्त होता है। जबकि अगस्त्य नामक तारेका उदय वर्षा ऋतुके ठीक मध्यमें होता है और प्रातःकाल केवल थोड़ी देर तक देख पड़ता है। कुम्भजसे कुछ और दक्षिणकी ओर तीन तारे समकोण त्रिभुजके तीन कोण-विन्दु बनाते हुए देख पड़ते हैं। इनका नाम सारस रखा गया है क्योंकि अंग्रेजीमें इन्हें Crane कहते हैं।

कुम्भजके ऊपर कुछ पूरबकी ओर हटे हुए कुम्भराशिके मन्द मन्द तारे हैं। सारसके ऊपर और श्रवण नक्षत्रके नीचे दोनोंके बीचमें मकरराशिके मन्द मन्द तारे हैं।

दक्षिण—इस दिशामें इस समय क्षितिजके पास कोई चमकीले तारे नहीं हैं। श्रवण नक्षत्र बहुत ऊपर खस्वस्तिकके पास देख पड़ता है।

दक्षिण-पश्चिम—जैसे ज्येष्ठके महीनेमें दक्षिण-पूर्व दिशा वृश्चिक और धनु राशियोंके तारोंसे शोभायमान होती है इसी तरह इस महीनेमें दक्षिण-पश्चिम दिशा इन्हीं दो राशियोंके तारोंसे जगमगा रही है। यहां विशेषता यह है कि इस समय धनुराशिके सभी तारे, तथा पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंके भी तारे दिखाई पड़ रहे हैं। बिच्छूके और पश्चिम क्षितिजके पास विशाखा नक्षत्रके तारे भी दिखाई देते हैं।

पश्चिम—इस दिशामें इस समय कोई तारे विशेष महत्वके नहीं हैं। विशाखाके तारे कुछ दक्खिन हट कर हैं। स्वातीका तारा कुछ उत्तरकी ओर हटा हुआ है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रायः इसी दिशामें स्वातीका तारा है। स्वाती मण्डलके ऊपर मुकुट और मुकुटके ऊपर हरिकुलेश मण्डलके मन्द मन्द तारे हैं जिनकी चर्चा ज्येष्ठ मासके आकाश चित्रके पूरब दिशाके वर्णनमें अच्छी तरह की जा चुकी है।

मार्गशीर्ष मासका आकाश चित्र।

इस मासमें आकाश बहुत स्वच्छ रहता है। बैशाख, जेठ महीनोंकी धूल और सावन भादोंके बादल कहीं देख नहीं पड़ते और न माघ, फागुनके कुहरासे ही दृष्टिको बाधा पहुँचती है। इसलिए इस महीनेके आकाश-चित्रसे ज्ञान और मनोरंजन दोनों होते हैं। इस महीनेके आकाशमें पूरब दिशामें बहुत से नये तारे और तारा समूह देख पड़ते हैं जिनकी चर्चा प्राचीन साहित्यमें भी अनेक स्थलों पर की गयी है।

उत्तर—क्षितिजके पास लघुसप्तर्षिके तारे लटके हुए देख पड़ते हैं। इस समय इनमें ध्रुवतारा सबसे ऊपर है। लघु-सप्तर्षिके ऊपर सिफियसके तीन मन्द तारे पश्चिमको ओर

फैले हुए देख पड़ते हैं। क्षितिजसे जितने ऊपर ध्रुवतारा है, ध्रुवतारासे उतने ही ऊपर काश्यप मण्डल अंग्रेजोंके एम् (M) अक्षरके आकारका देख पड़ता है। इसके चार बड़े तारे याम्योत्तरवृत्तको लांघकर पच्छिमकी ओर चले गये हैं केवल एक तारा याम्योत्तरवृत्तसे कुछ ही पूरब है। काश्यप मण्डलके ऊपर अन्तरमदाका वक्र है जिसका केवल एक तारा अब याम्योत्तरवृत्तसे पूरब है और सब पच्छिमकी ओर चले गये हैं।

सिरके ऊपर—अश्विनी नक्षत्र बिलकुल सिर पर देख पड़ता है।

उत्तर पूरब—इस दिशामें कुछ पूरबकी ओर और हटकर पुनर्वसु के दो तारे उदय हो चुके हैं। इनके ऊपर ठीक उत्तर-पूर्व दिशामें प्रजापति मण्डल चमक रहा है जिसके पांच मुख्य तारे पंचभुज क्षेत्र बनाते हुए जान पड़ते हैं। इस मडलके उत्तरवाले दो तारे बहुत तेजवान हैं और नीचे ऊपर देख पड़ते हैं। नीचे वाले तारेको प्रजापति और ऊपरवालेको ब्रह्महृदय कहते हैं। चमकमें इनका स्थान चौथा है। आकाशमें सबसे चमकीला तारा लुब्धक है जो इस समय पूर्वदिशासे कुछ दक्खिन है और क्षितिजके पास ही देख पड़ता है। दूसरा तारा अगस्त्य है जो अभी क्षितिजके ऊपर नहीं आया है। तीसरा तारा अभिजित है जो उत्तर-पच्छिम क्षितिजके पास देख पड़ता है और चौथा तारा ब्रह्महृदय है। ब्रह्महृदयके सम्मुख पंचभुज क्षेत्रके दक्खिन कोने पर अग्नि नामक तारा है।

प्रजापति मण्डलके ऊपर पारसीक मण्डल या परशुमण्डल है जिसके दक्षिण सिरे पर कृत्तिका नक्षत्रके ६ तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। पारसीक मण्डलके ऊपर प्रायः सिर पर अश्विनी नक्षत्रके तीन तारे हैं जिनमें दो बड़े हैं।

पूर्व—इस दिशामें प्रश्वा नामक प्रथम श्रेणीका तारा उदय हो चुका है परन्तु क्षितिजके बिल्कुल पास है। इससे कुछ दक्षिण हटकर क्षितिजके पास ही लुब्धक अपनी दिव्य ज्योतिसे चमक रहा है। लुब्धक और प्रश्वाके ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मण्डल (Orion) है जो अपनी दिव्य ज्योति, आकार और प्रसिद्धिके कारण अत्यन्त प्राचीन कालसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। लोकमान्य तिलक ने इसीके सूक्ष्म विचारसे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ओरायन (Orion) में सिद्ध किया है कि वेदके जिस मंत्रमें इसकी चर्चा की गयी है वह आजसे कमसे कम ६००० वर्ष पहले प्रकाशित हुआ होगा। इसको कालपुरुष भी कहते हैं। इसकी चर्चा यूनानी और पारसी साहित्यमें बहुत आलंकारिक भाषामें की गयी है। इस मण्डलके बीचमें तीन चमकीले तारे प्रायः एक ही रेखामें पास ही पास देख पड़ते हैं जिन्हें इल्वक कहते हैं। इनमें सबसे ऊपर वाला तारा प्रायः विषुवद्वृत्त पर है इसलिए क्षितिजके जिस विन्दु पर यह तारा उदय होता है वही ठीक पूर्व दिशा है और जहां अस्त होता है वही पच्छिम दिशा है। आग्रहायणके चारों कोनों पर चार तारे अपनी अपूर्व छटा दिखलाते हैं। इनमें उत्तरवाला नीचेका तारा कुछ कुछ लाल रंगका देख पड़ता है। इसे ही आर्द्रा नक्षत्रका योग तारा कहते हैं। इसके ऊपर वाला तारा मृगशिरा नक्षत्रका योग तारा कहलाता है। दक्खिनकी ओरका ऊपरवाला तारा भी प्रथम श्रेणीका है। गांववाले इस मण्डलको हन्नाहन्नी कहते हैं और जाड़ेकी रातमें इसकी स्थितिसे समयका पता लगाते हैं। आग्रहायण मण्डलके दक्खिन कई तारे मंद ज्योतिके हैं जिनसे शशकका आकार बना हुआ जान पड़ता है। इसीलिए इनको शशक (Leporis) कह सकते हैं।

आग्रहायणके ऊपर कुछ उत्तर हटकर रोहिणी नक्षत्र है जिसका नीचे वाला तारा प्रथम श्रेणीका कुछ कुछ लाल रंगका है। इसी रंगके कारण इसका नाम रोहिणी पड़ा। रोहिणी नक्षत्रके ५ तारोंसे जो आकार बनता है वह अङ्गरेजीके (V) अक्षर के सदृश होता है। रोहिणी नक्षत्रके उत्तर प्रजापति मंडल और ऊपर कुछ उत्तरकी ओर कृत्तिका पुंज है जिसे गांव वाले कचपचिया कहते हैं। इससे भी रातको समय जाननेका काम लिया जाता है। कृतिकाके ऊपर प्रायः शिर पर अश्विनी नक्षत्र है।

जिन तारा पुंजोंकी चर्चा इस समयकी गयी है और जो इस समय पूर्व दिशामें देख पड़ते हैं जाड़ेकी ऋतुमें रातभर दिखाई देते हैं इसलिए इनको शीतकालके नक्षत्र (Winter constellations) कहते हैं।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें कोई चमकीले तारे नहीं देख पड़ते। शशक कुछ पूरब है जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिज के पास तीन तारोंका पुंज है जिसे अङ्गरेजीमें फीनिक्स कहते हैं। बहुत ऊपर तिमिमंडल देख पड़ता है जिसका मुंह ह्वेल मछलीके आकारका नीचेकी ओर लटका हुआ और फैला हुआ जान पड़ता है। इसके तारे सभी धीमी ज्योति के हैं।

दक्षिण-पच्छिम—इस दिशामें इस समय सारस और कुम्भज या दूसरा अगस्त देख पड़ते हैं दूसरेकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

पच्छिम—दक्षिण और पच्छिम दिशाओंके बीच क्षितिजके पास मकर राशिके मन्द मन्द तारे फैले हुए हैं। इनके ऊपर कुंभ राशिके तारे भी देख पड़ते हैं।

पश्चिम—इस दिशामें क्षितिजके पास ही श्रवण नक्षत्रके तारे देख पड़ते हैं श्रवणके ऊपर कुछ उत्तर हटकर धनिष्ठाके तारे हैं। श्रवण के बहुत ऊपर पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा-भाद्रपदके तारे हैं जिनका वर्गाकार भी बहुत ही साफ़ साफ़ देख पड़ता है वर्गाकार क्षेत्रके नीचेवाली भुजके दो तारे पूर्वाभाद्रपद और ऊपरवाले भुजके दो तारे उत्तरा-भाद्रपदके तारे कहलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम—इस दिशामें अभिजित नक्षत्र क्षितिजके पासही देख पड़ता है। अभिजितके ऊपर हंसमंडलके तारे हैं।

इससे और उत्तर क्षितिजके पास अजगरके मुखके कुछ तारे देख पड़ते हैं।

आकाश-गंगा—इस समय आकाशगंगा पूर्व क्षितिजके पाससे उत्तर-पश्चिम क्षितिज तक फैली है। पूर्व क्षितिजमें यह प्रश्वाको उत्तर तट पर और लुब्धकको दक्खिन तटपर छोड़ती हुई आग्रहायणके उत्तर, अग्नि और ब्रह्महृदयके बीचसे होती हुई पारसीक मंडल और काश्यप मंडलके मध्य हंस मंडलके पास दो शाखाओंमें बटती हुई और श्रवणको दक्खिन तटपर छोड़ती हुई पश्चिम और उत्तर-पश्चिम क्षितिजमें विलीन हो जाती है।

फाल्गुन मासका आकाशचित्र

सिर पर—मिथुनराशि इस समय ठीक सिर पर है। पुनर्वसुके दोनों तारे प्रायः खस्वस्तिक पर और प्रश्वा कुछ दक्खिन है।

उत्तर—लघुसप्तर्षि ध्रुवतारासे पूर्वकी ओर फैला हुआ है। ध्रुवतारासे पश्चिम सिफियसके तीन तारे हैं जिनमेंसे

एक क्षितिजसे बिल्कुल मिला हुआ है। लघुसप्तर्षिके पूर्व अजगरकी लपेट है जिसका मुंह अभी क्षितिजसे नीचे है।

उत्तर-पूर्व—इस दिशामें सप्तर्षिमंडलके सातों तारे दिखाई पड़ रहे हैं। सप्तर्षिके ऊपर सर्पाकार मंद मंद तारे हैं।

उत्तर-पूर्व और पूर्व दिशाओंके बीच क्षितिजके पासही कुछ कुछ लाल रंगका स्वाती तारा है।

पूरब—इस दिशामें क्षितिजके पास कन्या राशिके तारे दिखाई पड़ रहे हैं। अभी चित्रा उदय नहीं हुआ है। कन्या राशिके ऊपर सिंहराशिके सब तारे दिखाई पड़ रहे हैं। नीचेवाला अकेला तारा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रका है। इसके ऊपर दो तारे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके हैं। पूर्वाफाल्गुनीके ऊपर मघा नक्षत्रके तारे हंसियाके आकारके देख पड़ते हैं। इस हंसियाके नीचेके दो तारे बहुत चमकीले हैं जिनमें दक्खिनवाला तारा मघाका योगतारा है यहभी कुछ कुछ लालरंगका देख पड़ता है।

हंसियाके ऊपर बहुत मंद मंद तारे हैं। उत्तरवाले तारोंको पुष्यनक्षत्र और दक्खिन वालों तारोंको आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। यहीं कर्कराशि भी है। पुनर्वसु और मघाके बीचमें जितने मंद मंद तारे हैं सभी कर्कराशिमें कहे जा सकते हैं।

पूर्व और पूर्व-दक्षिण दिशाओंके बीच ४,५ तारे क्षितिज पासही देख पड़ते हैं। ये हस्तनक्षत्रके तारे हैं।

पूर्व क्षितिजसे लेकर सिरके ऊपरतक वरन् कुछ और पच्छिम तक जितने नक्षत्र क्रान्तिवृत्तके पास देख पड़ते हैं उनको वर्षाके नक्षत्र कहते हैं। इस लिए नहीं कि ये वर्षा ऋतु में देख पड़ते हैं वरन् इस लिए कि जब सूर्य इन नक्षत्रों में

रहता है तभी यहाँ वर्षा होती है। वर्षा के नक्षत्रों के नाम क्रमानुसार यह है:—आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें कोई प्रसिद्ध तारा इस समय नहीं देख पड़ता।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पास कई तेजवान तारोंका समूह है जो जहाजके आकारका देख पड़ता है इसीलिए इसको नौका पुंज (Argo Navis) कहते हैं। इस समूह का प्रधान तारा अगस्त याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम हो गया है और क्षितिजके पास देख पड़ता है। चमकमें इसका स्थान दूसरा है। पहला स्थान लुब्धक को प्राप्त है जो इससे ठीक ऊपर देख पड़ता है। नौका पुंज के ऊपर लुब्धक मंडल है।

पच्छिम दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पास कोई चित्ताकर्षक नक्षत्र नहीं है। कुछ ऊपर शशक और इससे भी ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मंडल है। आग्रहायण मंडल के ऊपर प्रायः सिर पर मिथुन राशि के तारे हैं।

पच्छिम—इस दिशा में कुछ उत्तर को हटकर अश्विनी नक्षत्र क्षितिजके पास ही है। इससे ऊपर २,३ बहुत मंद तारे हैं जिसे भरणी नक्षत्र कहते हैं। भरणीसे कुछ और उत्तर तीन तारे त्रिकोण बनाते हुए देख पड़ते हैं। भरणी के ऊपर कुछ पच्छिम की ओर कृत्तिका नक्षत्र है। कृत्तिका से कुछ ऊपर और पच्छिम रोहणी नक्षत्र है। कृत्तिका से उत्तर पारसीक मंडल है इन दोनों नक्षत्रों के ऊपर प्रजापति मंडल है जिसका अग्नि तारा कृत्तिका के ऊपर और ब्रह्महृदय पारसीक के ऊपर है। ब्रह्महृदय के ऊपर प्रजापति का तारा है। पारसीक और प्रजापति

मंडलों के उत्तर वाले तारे ब्रह्महृदय, प्रजापति आदि उत्तर पच्छिम दिशामें देख पड़ते हैं।

त्रिकोण के उत्तर अंतरमदा के कुछ तारे क्षितिज के पास देख पड़ते हैं।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में पारसीक और प्रजापति मंडलके उत्तरवाले तारे हैं जिनकी चर्चा अभी हो चुकी है। इस दिशा से कुछ उत्तर और हटकर काश्यप मंडल के तारे क्षितिज के पास हैं।

आकाश गंगा—इस समय उत्तर पश्चिम के कोने से दक्खिन क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पच्छिम क्षितिजसे आरंभ कर के इसमें या इसके आसपास काश्यय, पारसीक, प्रजापति, आग्रहायण, लुब्धक मंडल और नौका पुंजके तारे हैं।

इन चार मासों के आकाश चित्रों और इनके वर्णनों से आकाश के सभी सभी प्रधान तारों और तारा समूहों की जानकारी की जा सकती है। इनकी सहायता से रात्रि में जब आकाश निर्मल हो दिशा, देश और काल का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

इस प्रकार नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्यायका विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

अनुक्रमणिका

(अङ्कोंसे पृष्ठांक समझना चाहिये)

अंङ्गरेजी नामों की अनुक्रमणिका

सूर्य-सिद्धान्त

उदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, पाताधिकार
और भूगोलाध्याय

भाष्यकार

श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद

प्रकाशकः—

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग

प्रथम बार १०००]   १९८८   [मूल्य ॥।)

प्रकाशकः—

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग

मुद्रकः—

शारदा प्रसाद खरे,

हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

परमात्माकी असीम कृपा है कि लेखकको सूर्य-सिद्धान्तके प्रथम १२ अध्यायोंका विज्ञान-भाष्य पाठकोंको सेवामें अर्पित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब इसके दो छोटे छोटे अध्याय और हैं, एक ज्योतिषोपनिषदध्याय और दूसरा मानाध्याय। पहलेमें ज्योतिषका व्यावहारिक ज्ञान करानेके लिए 'भूभगोल' यंत्र या गोलयंत्रका विस्तृत वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि पारेके द्वारा यह ऐसा बनाया जा सकता है कि अपने आप घूमे और समय बतलावे परन्तु यह रीति गुप्त रखो गयी है। इस यंत्रमें भूगोल और खगोलका एकीकरण है। इनके सिवा शङ्कु, यष्टि, धनु और चक्रयंत्रोंके केवल नाम दिये गये हैं जिनसे सूर्यकी छायाके आधारपर दिनमें समयका ज्ञान किया जा सकता है। रात को भी समयका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये कपालयंत्र, नर-यंत्र, मयूर-यंत्र और वानर यंत्र काममें लानेकी संक्षिप्त चर्चा है जिनमें जल बालु आदिकी सहायतासे काम लिया जाता है। इन यंत्रोंके बनाने के वर्णन नहीं हैं। आजकल घड़ीके सामने इन यंत्रोंसे ज्योतिषी लोग बहुत कम काम लेते हैं।

मानाध्यायमें ज्योतिषकी कोई विशेष बात नहीं है। केवल ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गुरु, सौर, सावन, चान्द्र, और नाक्षत्र नामके ९ प्रकारके कालमानोंका वर्णन है जिनमेंसे केवल पिछले पांच मानोंका व्यवहार साधारणतया होता है। इस

प्रकार प्रकट है कि विज्ञानभाष्यमें अबतक जो कुछ लिखा गया है उससे पाठकोंको प्राचीन ज्योतिष सिद्धान्तके समझनेमें प्रायः पूरी सहायता मिल सकती है। शेष दो अध्यायों का भाष्य तथा भूमिका लिखनेके लिए लेखक इस समय असमर्थ है क्योंकि ज्योतिषोपनिषदध्यायके विज्ञान-भाष्यमें जयपुर, दिल्ली, काशी आदिके मानमन्दिरों तथा उन अर्वाचीन यंत्रों का वर्णन करना आवश्यक है जो आजकलके वैज्ञानिक आविष्कारों पर अवलम्बित है और जिनसे आकाशीय पिंडोंका वेध तथा समयका ज्ञान बहुत ही सूक्ष्मताके साथ किया जा सकता है। इन यंत्रोंका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए किसी उत्तम अर्वाचीन वेधशाला का दर्शन करना तथा उससे अच्छी प्रकार परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। परन्तु इस कामके लिए इस समय अवकाश और धन दोनोंका अभाव है।

भूमिकामें लेखकको यह दिखलानेकी अभिलाषा है कि हमारे भारतीय ज्योतिषशास्त्रका विकास किस प्रकार हुआ, प्राचीन कालके अन्य देशों चीन, यूनान, मिश्र, बैबिलन, अरब आदिके ज्योतिष शास्त्रोंसे इसका कैसा सम्बन्ध था, इस समय इसकी क्या स्थिति है और इसमें किस प्रकारके सुधार करनेकी आवश्यकता है। इस कामके लिए उन देशोंके ज्योतिष शास्त्रका अध्ययन करना आवश्यक है जो कलकत्ता, पूना, जयपुर, हैदराबाद, अलीगढ़, और काशीके पुस्तकालयोंमें ही सम्भव हो सकता है। इसके लिए भी धन और समय दोनोंकी आवश्यकता है जो इस समय लेखककी सामर्थ्यके बाहर है। इसलिए लेखक उदार पाठकोंसे कुछ समयके लिए बिदा मांगता है और आशा करता है कि ईश्वरकी कृपा हुई तो दो चार वर्षमें वह फिर उनकी सेवा करनेके लिए उपस्थित होगा।

आजसे लगभग १० वर्ष पहले जब यह काम हाथमें लिया गया था यह आशा नहीं थी कि विज्ञानभाष्यका इतना बड़ा आकार हो जायगा। परन्तु गुरुजनों और मित्रोंकी कृपा और प्रोत्साहनसे यह ज्यों त्यों करके यहांतक पहुँच गया। इसलिए मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। इस सम्बन्धमें सबसे पहले मैं 'विज्ञानपरिषद्' तथा 'विज्ञान' के जन्मदाता श्रद्धेय आचार्य रामदास गौड़ एम्-ए० का अत्यन्त आभारी हूँ जिनके चरणोंमें बैठनेसे मुझे हिन्दी लिखनेका ज्ञान तथा ज्योतिषका अध्ययन करनेका प्रोत्साहन मिला। फिर 'विज्ञानके' भूतपूर्व सम्पादक अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गव एम्०एस-सी० को धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है जिन्होंने इस भाष्यकी उपयोगिता समझकर इसे 'विज्ञान' में क्रमशः प्रकाशित करना आरंभ किया। लखनऊके नवलकिशोर संस्कृत पाठशालाके भूतपूर्व प्रधानाध्यापक ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदीका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरा उत्साह उस समय बढ़ाया जब यह भाष्य 'विज्ञान' में ही परिमित था। विज्ञान परिषद्के प्रधान मंत्री प्रो० सालिगराम भार्गव एम्० एस-सी० तथा 'विज्ञानके' वर्तमान सम्पादक अध्यापक ब्रजराज एम्० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी० और श्रीयुत सत्यप्रकाश जी एम्० एस-सी० को भी मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बहुत कठिनाईके समयमें विज्ञानको जीवित रखकर उसके द्वारा विज्ञान-भाष्यको यहां तक छपनेमें सहायता की।

बलिया
विजया दशमी,
संवत् १९८८ वि०

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

विषय-सूची

उदयास्ताधिकार

पाताधिकार

भूगोलाध्याय

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६९	पादटिप्पणी	Ceutury	Century
९७०	८	Achenrar	Achernar
९७६	१८	श्रवक	श्रवण
१०१६	१७	२०	१०
१०२०	१	ातकाल	पातकाल
,,	९	स्थरी	स्थिरी
१०२९	२	समम	समय
१०३९	२	भुवनान्येष	भुवनान्येव
१०४३	ब्रह्मांड वंशवृत्त	कमन्द्रियाँ	कर्मेन्द्रियाँ
१०४८	१३	धारणात्मिकाशाक्त	धारणात्मि-का शक्ति
१०७८	चित्र के नीचे	चित्र नं० १२७	चित्र नं० १२८
१०८०	३	घड़ा	घड़ी
,,	२२	कुरुक्षेत्र	कुरुदेश
१०८२	४	ध्रव	ध्रुव
१०८९	चित्रके नीचे	चित्र नं० १२८	चित्र नं० १२९

उदयास्ताधिकार नामक नवां अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्यके निकट आ जानेके कारण ग्रहों और नक्षत्रोंके अदृश्य होनेका विचार। २-३ श्लोक—ग्रहोंके उदय और अस्त होनेकी दिशा। ४-५ श्लोक—ग्रहोंका कालांश जाननेकी रीति। ६-६ श्लोक—ग्रहोंके परम कालांश। १०-११ श्लोक—यह जाननेकी रीति कि किसी इष्ट-कालमें उदय या अस्त होनेको कितने दिन शेष हैं या बीत गये हैं। १२-१५ श्लोक—किस तारेका क्या परमकालांश है। १६-१७ श्लोक—तारेके दृश्य या लोप होनेके दिनको जाननेकी रीति। १८ श्लोक-उन तारोंके नाम जो कभी अदृश्य नहीं होते।]

इस अध्यायमें यह बतलाया गया है कि ग्रहों और तारों का उदय और अस्त कब होता है और कैसे जाना जाता है। यहां उदय और अस्तके अर्थ साधारण उदय और अस्तके अर्थोंसे भिन्न है। साधारणतः जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि पूर्व क्षितिजके ऊपर आ जाते हैं तब इनका उदय समझा जाता है और जब ये पच्छिम क्षितिजके नीचे चले जाते हैं तब इनका अस्त समझा जाता है। यह पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण होता है जिसे पुराने आचार्य प्रवह-गति कहते थे। इसके सिवा जब ग्रह चन्द्रमा या तारे सूर्यके बहुत पास हो जाते हैं जिससे वे सूर्योदयके लगभग पूर्व क्षितिजके ऊपर आते हैं और सूर्यास्तके लगभग पच्छिम क्षितिजके नीचे चले जाते हैं तब भी वे अस्त कहे जाते हैं। ऐसी दशामें वे सूर्यके तीव्र प्रकाशके

कारण देखे नहीं जा सकते। जिस समय वे सूर्यके निकट आने के कारण अदृश्य हो जाते हैं उस समय से वे अस्त समझे जाते हैं और जिस समय वे सूर्यसे इतनी दूर हो जाते हैं कि सूर्योदयके कुछ पहले या सूर्यास्तके कुछ पीछे देख पड़ने लगते हैं उस समय उनका उदय समझा जाता है। इस अधिकारमें इसी प्रकारके उदय अस्तकी बातें बतलायी गयी हैं। पाश्चात्य ज्योतिषी इसको (heliacal rising and setting) कहते हैं।

अध्यायका प्रयोजन—

अथोदयास्तमययोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते ।
दिवाकरकराक्रान्त मूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥१॥

अनुवाद—(१) सूर्यके प्रकाशसे आक्रान्त होनेके कारण अथवा दब जानेके कारण अल्प प्रकाशवाले पिंडोंका जो उदय अस्त होता है उसके जाननेकी रीति बतलायी जाती है।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या ऊपरकी जा चुकी है।

उदय और अस्त की दिशा—

सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीव कुजार्कजाः ।
ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौवक्रिणौ तथा ॥२॥
ऊनाः विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवाः ।
व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ॥३॥

अनुवाद—(२) जब गुरु, मंगल और शनि के भोगांश सूर्यके भोगांशसे कुछ अधिक होते हैं तब इनका पच्छिममें अस्त होता है और जब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कुछ कम होते हैं

तब इनका पूर्वमें उदय होता है। इसी प्रकार वक्री शुक्र और बुधका भी उदय अस्त होता है, अर्थात् जब वक्री शुक्र और बुधके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक होते हैं तब इनका पच्छिममें अस्त और कम होते हैं तब पूर्वमें उदय होता है। (३) चन्द्रमा, (मार्गी) बुध और शुक्रके भोगांश जब सूर्यके भोगांशसे कम होते हैं तब ये पूर्वमें अस्त होते हैं और जब ये तीव्र गतिके कारण सूर्यसे कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब पच्छिममें उदय होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकोंमें संक्षेपमें यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल बुध इत्यादिके भोगांशोंसे अथवा स्पष्ट स्थानोंसे मोटी रीतिसे कैसे जाना जा सकता है कि कौन ग्रह किस दिशामें उदय या अस्त होगा। इस कामके लिए ग्रहोंके दो भाग कर दिये गये हैं। एक भागमें गुरु, मंगल और शनि हैं जिनकी गति सूर्यकी गतिसे मंद है और दूसरे भागमें बुध, शुक्र और चन्द्रमा हैं जिनकी गति सूर्यकी गतिसे तीव्र हैं। इनमें भी बुध और शुक्रकी गतियोंमें विशेषता होनेके कारण कुछ भिन्नता है।

गुरु, मङ्गल और शनिकी अपेक्षा सूर्य अधिक चलता है इसलिए सूर्य ही गुरु मङ्गल और शनिकी ओर बढ़ता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य इनके इतना निकट पहुँच जाता है कि ये अदृश्य हो जाते हैं तब सूर्यके भोगांशसे इनका भोगांश अधिक रहता है क्योंकि भोगांश की नाप पच्छिमसे पूरबकी ओर होती है। अदृश्य होनेके पहले ये तीनों ग्रह सूर्यास्तके पीछे पच्छिम क्षितिजके पासही देख पड़ते हैं और वहीं गोधूली

प्रकाशकी तीव्रताके कारण अदृश्य हो जाते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये तीन ग्रह पच्छिममें अस्त होते हैं। कुछ दिनमें जब सूर्य इनसे आगे बढ़ जाता है और इनका भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम हो जाता है तब ये फिर पूर्वमें सूर्योदयके कुछ पहले दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि पूर्वमें इनका उदय होता है।

जब वक्री बुध और शुक्रके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक होते हैं तब ये सूर्यास्तके उपरान्त पच्छिम क्षितिजमें देख पड़ते हैं और वहीं अदृश्य हो जाते हैं। कुछ दिनमें ये ग्रह अपनी वक्रगतिके कारण सूर्यकी दूसरी ओर बहुत शीघ्र चले जाते हैं और इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम हो जाते हैं ऐसी दशामें ये सूर्योदयके पहले पूर्व क्षितिजमें फिर दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि वक्री बुध और शुक्र भी पच्छिममें अस्त और पूर्वमें उदय होते हैं।

परन्तु चन्द्रमा तथा मार्गी बुध और शुक्रकी गति सूर्यकी गतिसे अधिक होती है इसलिए जब ये सूर्यकी ओर बढ़ते हुए उसके पास इतना पहुँच जाते हैं कि अदृश्य हो जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे कम होते हैं और ये पूर्व क्षितिजमें ही सूर्योदयके पहले अदृश्य होते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये पूर्वमें अस्त होते हैं। जब ये सूर्यके आगे बढ़ जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्यके भोगांशसे अधिक हो जाते हैं और सूर्यास्तके उपरान्त पच्छिम क्षितिजमें दीखने लगते हैं इसलिए कहा जाता है कि चन्द्रमा और मार्गी बुध और शुक्र पच्छिममें उदय होते हैं।

कालांश जाननेकी रीति—

सूर्यास्तकालिकौ पश्चात् प्राच्यामुदयकालिकौ ।
दिवा चार्क ग्रहौ कुर्याद्‌ दृक्कर्माथ ग्रहस्यतु ॥ ४॥
ततो लग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः ।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः ॥५॥

अनुवाद—(४) यदि पच्छिममें किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेका समय जानना हो तो अनुमानसे जाने हुए दिनके सूर्यास्त कालके सूर्य और ग्रहको स्पष्ट करे और पूरबमें किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेका समय जानना हो तो उस दिनके सूर्योदयकालके सूर्य और ग्रहको स्पष्ट करे तथा ग्रहका दृक्कर्म संस्कार करे। (५) दृक्कर्म संस्कृत ग्रह और सूर्यके उदय लग्नोंके असुओंका अन्तर निकाले और इसको ६० से भाग दे तो ग्रहका पूर्वमें उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश ज्ञात होता है। यदि ग्रहका पच्छिममें उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश जानना हो तो सूर्य और ग्रहके भोगांशमें ६ राशि जोड़नेसे जो आवे उनके लग्नोंके असुओंके अन्तरको ६० से भाग देकर कालांश जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—सूर्यके उदय होनेसे जितने समय पहले कोई ग्रह पूर्व क्षितिजमें आता है अर्थात् उदय होता है उस समय को उस ग्रहका कालान्तर कहते हैं। लग्न कालकी गणना सूक्ष्मता के लिए असुओंमें की जाती हैं औरविषुवद्-वृत्तकी एक कला का उदय एक असुमें होता है। इसलिए ६० कलाका उदय ६०

असुओंमें होता है। परन्तु ६० कला एक अंशके समान है। इस लिए सूर्य और ग्रहके उदयकालोंके अन्तरको जो प्रायः असुओंमें होता है और जिसे ५ वें श्लोकमें लग्नान्तर-प्राण या लग्नान्तरासु कहा गया है ६० से भाग देनेपर जो आता है उसको अंशोंमें समझ लेना चाहिए। इसीको ग्रहका कालांश कहते हैं।

पृष्ठ ८४६ में बतलाया गया है कि यह जाननेके लिए कि ग्रह किस समय क्षितिजमें लग्न होता है इसके स्पष्ट भोगांशमें आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करना चाहिए क्योंकि स्पष्टाधिकारके अनुसार ग्रहका जो भोगांश आता है उससे तो केवल यह मालूम होता है कि ग्रह अपनी कक्षामें कहां है। परन्तु ग्रहकी कक्षा क्रान्तिवृत्त से भिन्न होती है इसलिए जिस समय ग्रहका क्रान्तिवृत्तवाला विन्दु क्षितिज पर आता है उस समय ग्रहका बिम्ब क्षितिज पर नहीं वरन् अपने शरके अनुसार कुछ आगे या पीछे उदय होता है (देखो चित्र १०७, १०८) जिसका ज्ञान दृक्कर्म संस्कारसे ही होता है। इसी लिए चौथे श्लोकमें पहले दृक्कर्म संस्कार करनेको कहागया है। दृक्कर्म संस्कार करने पर जब ग्रहके क्षितिज पर आनेका समय ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तभी यह जाना जा सकता है कि सूर्योदयसे कितना पहले वह ग्रह पूर्व क्षितिजमें लग्न होता है।

परन्तु जब ग्रहका उदय या अस्त पच्छिममें होता है तब सूर्यास्तकालिक सूर्य और ग्रह का स्पष्ट किया जाता है क्योंकि तब यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि सूर्यास्तसे कितने समय पीछे ग्रहका अस्त होता है। इस कामके लिए भी ग्रहमें

दृक्कर्म संस्कारकी आवश्यकता पड़ती है जैसा कि उदय लग्न के समयकी जाती है। अब दृक्कर्म संस्कृत ग्रह अथवा भास्करा-चार्यजी के शब्दोंमें दृग्ग्रह और सूर्यके अस्तलग्नासुओं का अन्तर जानना चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि जिस समय सूर्य अस्त होता है उस समयसे कितने असु उपरान्त इष्ट ग्रह का बिम्ब पच्छिम क्षितिज पर आता है। इन असुओं को ६० से भाग देनेपर अस्त समयके कालांश अथवा अस्तांशका ज्ञान हो जाता है। परन्तु ५ वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि अस्तकालिक सूर्य और दृग्ग्रहके भोगांशोंमें ६ राशि या १८० अंश जोड़कर दोनोंके लग्नासुओंका अन्तर निकाले। इसका कारण यह है कि जिस समय सूर्य अस्त होता रहता है उस समय पूर्व क्षितिजमें क्रान्तिवृत्तका वह विन्दु लग्न होता है जो सूर्यसे १८० अंश आगे रहता है। इसी प्रकार जब दृग्ग्रह अस्त होता रहता है तब भी पूर्व क्षितिजमें वह विन्दु लग्न रहता है जो दृग्ग्रहसे १८० अंश आगे है। इसलिये यदि यह मालूम हो जाय कि सूर्य और दृग्ग्रहके अस्तकालोंमें पूर्व क्षितिजके लग्नोंके उदयासुओंमें क्या अन्तर होता है तो भी अस्तांश या कालांशका ज्ञान हो सकता है।

ग्रहोंके परम-कालांश—

एकादशामरेज्यस्य तिथिसंख्यार्कजस्य च।
अस्तांशा भूमिपुत्रस्य दशसप्ताधिकास्ततः ॥६॥

पश्चादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ् महत्तया।
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः॥ ७ ॥

एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकैः ।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥८॥
एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः ।
भवन्ति लोके खचराभानुभाग्रस्तमूर्तयः ॥ ९ ॥

अनुवाद—(६) गुरुका परमकालांश ११, शनिका १५ और मङ्गलका १७ है। (७) शुक्रका बिम्ब बड़ा देख पड़नेके कारण पच्छिममें अस्त होनेका और पूर्वमें उदय होनेका परम कालांश ८ है परन्तु बिम्ब छोटा देख पड़नेके कारण इसके पूर्वमें अस्त होनेका और पच्छिममें उदय होनेका परमकालांश १० है। (८) इसी प्रकार वक्री और शीघ्र गति वाला बुध जब सूर्यसे १२ कालांश पर रहता है तब पच्छिममें उसका अस्त और पूर्वमें उदय होता है। परन्तु इसका पूर्वमें अस्त होने और पच्छिममें उदय होनेका कालांश १४ है। (९) सूर्यके प्रकाशसे ग्रस्त होनेके कारण अथवा दब जानेके कारण यदि किसी ग्रहका किसी समयका कालांश उसके परमकालांशसे अधिक हुआ तो उस समय वह ग्रह देख पड़ता है और कम हुआ तो नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें ग्रहोंके कालांशोंकी वह सीमा बतलायी गयी है जिससे अधिक होनेपर ग्रह देख पड़ते हैं और कम होने पर नहीं देख पड़ते। इसलिए इस सीमाको परमकालांश कहा जा सकता है। प्रत्येक ग्रहका परम कालांश भिन्न है इसका कारण यह है कि जिस ग्रहका बिम्ब बड़ा होता है वह सूर्यके पास होनेपर भी सुगमता पूर्वक देखा जा सकता

है और जिसका बिम्ब छोटा होता है वह कुछ कठिनाईसे देखा जा सकता है। दूरके ग्रहोंमें बृहस्पतिका बिम्ब सबसे बड़ा है इसलिए इसका परम कालांश ११ माना गया है अर्थात् यदि सूर्योदयसे ११ अंश या ११० पल या ४४ मिनट पहले बृहस्पति उदय हो अथवा सूर्यास्तसे इतना ही समय पीछे अस्त हो तो यह प्रातःकाल या सायङ्कालके संधि-प्रकाश में भी देखा जा सकता है। इसलिए जब बृहस्पतिका कालांश घटते घटते ११ हो जाता है तब यह पच्छिम क्षितिजमें अदृश्य हो जाता है। इसके बाद जब इसका कालांश घटते घटते शून्य हो जाता है तब यह सूर्यके साथ उदय या अस्त होता है। इस समयसे इसका कालांश बढ़ने लगता है और जब तक ११ अंश नहीं होता तब तक यह अदृश्य रहता है क्योंकि सूर्यके तीव्र प्रकाशमें यह देखा नहीं जा सकता। इसीको साधारण बोल चालमें गुरु-आदित्य अथवा 'गुरु-बादिक' भी कहते हैं। यह अवधि साधारणतः १ महीनेकी होती है। इस अवधिमें हिन्दू लोग विवाह, मुंडन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं करते।

शनिका बिम्ब गुरुके बिम्बसे छोटा और मङ्गलके बिम्बसे बड़ा होता है इस लिए शनिका परमकालांश १५ और मङ्गलका १७ माना गया है। परन्तु शुभ कामोंमें इनके उदय अस्त क विचार नहीं किया जाता है।

शुक्रके परमकालांश ८ और १० माने गये हैं इसका कारण यह है कि जब शुक्र वक्री होकर पच्छिममें अस्त होता है और पूर्वमें उदय होता है तब पृथ्वीसे इसका अन्तर बहुत कम रहता है क्योंकि यह सूर्य और पृथ्वीके बीचमें रहता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १५१—१५४)। निकट रहनेसे इसका बिम्ब

बहुत बड़ा देख पड़ता है इसलिए यह सन्धि प्रकाशमें बहुत देर तक देखा जा सकता है। इसकी सीमा ८ कालांश ३२ मिनट या ८० पलकी मानी गयी है अर्थात् जब सूर्यास्त के उपरान्त ३२ मिनट से भी कम समयमें शुक्र अस्त होता है तब नहीं देख पड़ता और कहा जाता है कि शुक्र पच्छिममें अस्त हो गया। इसके बाद जब शुक्र सूर्योदयसे ३२ मिनट पहले उदय होने लगता है तब यह फिर देख पड़ने लगता है और कहा जाता है कि पूर्वमें शुक उदय हो गया। यह अवधि एक सप्ताहसे अधिक नहीं होती क्योंकि जब शुक्र वक्री रहता है तब शुक्र और सूर्यका अन्तर दोनोंकी गतियोंके योगके समान प्रतिदिन घटता या बढ़ता है इसलिए शुक्र बहुत जल्द सूर्यके पीछे चला जाता है।

परन्तु जब शुक्र पूर्वमें अस्त और पच्छिममें उदय होता है तब इसका परम कालांश १० होता है क्योंकि इस समय यह पृथ्वीसे बहुत दूर सूर्यकी दूसरी ओर रहता है देखो चित्र २१, २२। दूर रहने से शुक्र का बिम्ब छोटा देख पड़ता है इसलिए यह संध्याप्रकाशमें उतनी देर तक नहीं देख पड़ता जितनी देर तक वक्री होनेपर देख पड़ता है। जब यह पूर्वमें अस्त होता है तब मार्गी रहता है अर्थात् इसकी गति उसी ओरको होती है जिस ओरको सूर्य चलता हुआ देख पड़ता है इस लिए इन दोनोंका अन्तर दोनोंकी गतियोंके अन्तरके समान प्रति दिन घटता या बढ़ता है। इसलिए शुक्रके अस्त होनेकी यह अवधि दो महीनेके लगभग की होती है।

जब तक शुक्र अस्त रहता है तब तक भी हिन्दुओंमें विवाह, मुण्डन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं किये जाते।

शुक्रकी तरह बुध भी जब वक्री रहता है तब पृथ्वीके निकट रहनेके कारण बड़ा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १२ होता है। परन्तु जब यह पृथ्वीसे बहुत दूर सूर्यकी दूसरी ओर रहता है। तब छोटा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १४ होता है।

बुधके अस्त होनेका विचार विवाह, मुण्डन इत्यादिमें नहीं किया जाता।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार ग्रहोंके उदय और अस्त होनेकी गणना किस प्रकार की जाती है और इनके परम कालांश क्या हैं। अब यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं, एक तो यह कि क्या कालांश जाननेकी यह रीति शुद्ध है, दूसरे यह कि क्या ये परमकालांश ठीक हैं। इसका उत्तर देना इसलिए सुगम है कि इसकी जांच इन ग्रहों के प्रत्यक्ष दर्शनसे की जा सकती है। क्योंकि इनके उदय अस्त-की परिभाषा ही ऐसी है कि जब तक ये सूर्यके निकट होनेके कारण बिना किसी यंत्रकी सहायताके देखे न जा सकें तभी तक इनको अस्त समझना चाहिये अन्यथा उदय। इस कसौटी पर कसनेसे तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त अथवा अन्य किसी भारतीय*ज्योतिष सिद्धान्तके आधार पर निकाले

*आचार्य केतकरका ज्योतिर्गणित भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तके आधार पर नहीं बनाया गया है वरन् पाश्चात्य सिद्धान्तोंके आधार पर बनाया गया है जिनमें अर्वाचीन आविष्कारोंकी भी सहायता लीगयी है।

बुध उदय या अस्तकालोंमें तो कभी कभी दस दस पन्द्रह पन्द्रह दिनका अन्तर पड़ जाता है। यह प्रकट है कि कालांश की शुद्ध शुद्ध गणना तभी संभव है जब ग्रहोंका स्पष्ट भोगांश और शर बिलकुल शुद्ध हों। परन्तु भारतीय सिद्धान्तोंके आधार पर जाने गये भोगांश और शर ठीक नहीं होते जैसा कि पिछले अध्यायोंके अनेक स्थानोंमें बतलाया जा चुका है। उदाहरणके लिये (पूर्णिमान्त) चैत्र कृष्ण ११ भौमवार सम्वत् १९८३ वि० तदनुसार २९ मार्च सन् १९२७ की मध्य रात्रि कालके ५ तारा-ग्रहोंके निरयन भोग ६ पंचांगोंके अनुसार दिये जाते हैं जिनसे यह भी पता लगेगा कि ग्रहोंकी गणनामें हमारे यहां भिन्न भिन्न मतों के अनुसार कितना भेद पड़ता है:—

	मंगल			बुध			गुरु			शुक्र			शनि		
	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क
विश्व पंचांग[1]	१	२५	३८	१०	२१	०	१०	२६	५०	०	१८	३६	७	६	२६
भारतभूषण पंचांग[2]	१	२५	४०	१०	१६	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
गणेशदत्त शर्मा का पंचांग[3]	१	२५	४०	१०	१६	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
नवलकिशोर प्रेस का पंचांग[4]	१	२६	५२	१०	२१	४७	१०	२४	४४	०	१५	४८	७	१४	१८
विक्रम विजय पंचांग[5]	१	२५	४०	१०	१७	५८	१०	२२	४२	०	१६	३७	७	१४	२०
ज्योतिर्गणित के अनुसार[6]	१	२६	५३	१०	२२	२०	१०	२३	५४	०	१५	३५	७	१४	४६

प्रत्येक ग्रहके भोगांशोंकी तुलना करनेसे यह प्रकट हो जाता है कि शुद्ध सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार निकाले हुए भोगांश ज्योतिर्गणित अथवा दृग्गणितसे निकाले हुए भोगांशों से बहुत भिन्न है। गुरु और शनिके भोगांश तो पांच पांच छः छः अंश भिन्न हैं इसके प्रतिकूल मकरंद सारणीके अनुसार जाने हुए भोगांश दृग्गणितसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इसलिए

१—शुद्ध सूर्यसिद्धान्तके अनुसार बनाया हुआ काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयसे प्रकाशित तथा प० मदनमोहन मालवीय, ज्योतिषाचार्य पं० रामयत्न ओझा, पं० रामव्यास पाण्डेय, पं० पूर्णचन्द्र त्रिपाठी इत्यादि द्वारा सम्पादित

२—मकरंद सारणीके अनुसार बनाया हुआ काशीके ज्योतिषाचार्य पं० रामविहारी द्विवेदी तथा श्री रामानन्द मिश्र द्वारा विरचित तथा पं० रामयत्न ओझा द्वारा अनुमोदित ?

३—यह भी मकरंद सारणीके अनुसार बनाया गया और पं० बलदेव मिश्रात्मज पं० गणेशदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित।

४—पं० रामप्रसाद सिद्धान्तीके पुत्र श्री पं० श्यामविहारी द्वारा बनाया गया।

५—सूर्यसिद्धान्त संस्कृतं मकरंदीयम् काश्यपवृत्तीयं दृग्गणितैक्य विषै रलंकृतम् जबलपुरीय प० श्री लक्ष्मीप्रसाद विद्याभूषण विरचितम्

६—आचार्य वेंकटेश बापू केतकरके ज्योतिर्गणितके अनुसार लेखक द्वारा गणना किया हुआ परन्तु अयनांश २२ अंश ४१ कला मानकर, इसलिये दृग्गणितके अनुसार शुद्ध है केवल अश्विनीका आदि विन्दु सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार स्थिर किया गया है।

ग्रहोंके उदय अस्तका विचार सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार कदापि ठीक नहीं हो सकता। इसके सिवा यह तो दिखलाया ही जा चुका है कि दृक्कर्म संस्कारकी रीति भी स्थूल है। इसलिए यह सिद्ध है कि उदय अस्तका विचार करनेके लिए हमको दृग्गणित सिद्ध मूलाङ्कोंसे ही काम लेना चाहिये और इसके लिए या तो ज्योतिर्गणितसे काम लिया जाय जो पाश्चात्य ज्योतिषसिद्धान्तके आधारपर बनाया गया है अथवा नया स्वतन्त्र सिद्धान्त तैयार किया जाय, क्योंकि नाविक पंचांगोंके आधार पर ग्रहोंका उदय अस्त जानकर अपने धार्मिक कृत्यों, मुण्डन, विवाह इत्यादिका निश्चय करना उचित नहीं जान पड़ता।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि ग्रहोंका उदय अस्त जाननेके लिए कालांश जाननेकी प्राचीन रीतिमें ही स्थूलता है। अब यह बतला देना भी आवश्यक है कि ग्रहोंके परम कालांशके परिमाणमें भी आजकल कितना मतभेद है। उदाहरणके लिये हम इसी वर्षके गुरु और शुक्रके उदय अस्तके कालोंको लेकर अगले पृष्ठ पर दिखलाते हैं कि किसने कितना परमकालांश माना है।

इस कोष्ठकसे यह स्पष्ट है कि काशीके दोनों पंचागोंके अनुसार शुक्रास्त और शुक्रोदयके दिन एक है परन्तु गुरुके अस्तकालके दिनमें एक दिनका अन्तर है। इसी प्रकार आंध्रके शास्त्रशुद्ध ऐश्वर्यवर्द्धक पंचांग, बागलकोट के केतकी पंचाग और पूनाके चित्रशाला पंचाग में शुक्र तथा गुरुके उदय और अस्तके दिन एक हैं। इससे जान पड़ता है कि काशीके पंचागवालों

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरुकाउदय-काल
काशी	बालकृष्ण शास्त्री का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, ८५ २६ मई १६२८ ई०	अधिक श्रावण शु० १३, ८५; ३० जुलाई २८	चैत्र शुक्ल ३, ८५ विक्रमी २४ मार्च १६२८ई०	वैशाख शुक्ल ८, ८५ वि० २७ अप्रल १६२८ई०
,,	विश्वपंचांग काशी विश्व विद्यालयका	ज्येष्ठ शुक्ल १०, २६ मई	अ० श्रा० शु० १३; ३० जुलाई	चैत्र शुक्ल २, २३ मार्च	वैशाख शु० ८, २७ अप्रैल
लखनऊ	रामप्रसाद सिद्धान्तीका नवल किशोर प्रेसका	ज्येष्ठ शुक्ल २, २१ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	चैत्र शुक्ल ४, २५ मार्च	वैशाख शु० ७, २६ अप्रैल
औंध	शास्त्रशुद्ध ऐक्य वर्द्धक पंचांग	आ० कृ० ३,६ जून*	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
बागल-कोट	केतकी पंचांग	,, ,,	,, ,,	??	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल

*यहाँ कृष्ण पक्ष पूर्णिमान्त गणनाके अनुसार लिखा गया है, अमान्त गणनासे यह ज्येष्ठ कृष्ण है जो महाराष्ट्र प्रान्तमें प्रचलित है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरुका अस्तकाल	गुरुका उदय काल
पूना	चित्रशाला पंचांग	आ० कृ० ३, ६ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
”	पंचांग प्रवर्तक कमेटी का	ज्ये० शु० १३, १ जून	श्रा० शु० १५, १ अगस्त	” ”	वैशाख शु० ३, २२ अ ैल
”	शंकर शास्त्रीका	ज्ये० शु० १४, २ जून	अ० श्रा० शु० ६, २६ जुलाई	” २, २३ मार्च	वैशाख शु० ४, २३ अप्रैल
मुंबई	बालकृष्ण तुकारामका	” १५,३ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	” १, २२ ”	वैशाख शु० २, २२ अप्रैल
”	गुजराती पत्राच्या न्यूस प्रेसमें चैत्री पंचांग	” ३, २२ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	” ४, २५ ”	वैशाख शु० ६, २५ अप्रैल

ने इन ग्रहोंके परम कालांश एक मतसे कुछ माना है और महाराष्ट्रके तीन पंचांगवालोंने एक मत होकर कुछ माना है। काशी के विश्वपंचांगसे यह सिद्ध होता है कि इसमें ग्रहोंका उदय अस्त १९२८ ई० के नाविक पंचागके आधार पर स्थिर किया गया है। केतकी पचांग ज्योतिर्गणितके अनुसार बनाया गया है जो अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्तसे मिलता जुलता है इसलिए यह सहज ही जाना जा सकता है कि आचार्य केतकर तथा इनके अनुयाइयोंने गुरु और शुक्रके परमकालांश क्या माना है।

अब हम १९२८ ई० के नाविक पचांगसे शुक्रके उदय और अस्त कालके दिनके सूर्य और शुक्रके विषुवांश और क्रान्तिसे परमकालांश जानने की रीति लिखते हैं:—

तारीख	सूर्यका विषुवांश	सूर्यकी क्रान्ति	शुक्रका विषुवांश	शुक्रकी क्रान्ति
	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला
२९ मई	४ २४ १६.५९	२१ ३७ ३७.६	३ ४७ २.६७	१९ १२ १९.४
३०जुलाई	८ ३७ ४६.८६	१८ ३१ ८.८	९ ११ ३७.२६	१७ ३७ ९.१
६ जून	४ ५७ ३.३२	२२ ३९ ३८.२	४ २७ ५४.५९	२१ २० १८.७
२८जुलाई	८ २९ ५७.३८	१८ ५९ ३२.९	९ १ ३९.९	१८ १८ ६.५

२६ मई को सूर्यकी क्रान्ति २१ अंश ३७ कला ३७.६ विकला अथवा २१°३८′ है और शुक्रकी क्रान्ति १६ अंश १२ कला १६·४ विकला अथवा १६°१२′ है। यह जाननेके लिए कि सूर्य और शुक्र किस समय क्षितिज पर आवेंगे पहले इनके चरकाल जानना आवश्यक है (देखो चित्र ६० पृष्ठ ४५५-५६)। काशीका अक्षांश २५°२०′ है।

उदयकालिक सूर्यकी चरज्या = स्परे २१°३८′ × स्परे २५°२०′

= ·३६६६ × ·४७३७

= ·१८७६

∴ चरांश = १०°५०′

∴ चरकाल = ४३ मिनट २० सेकंड

सूर्यकी क्रान्ति उत्तर है इसलिए सूर्यके विषुवांशसे यह चरकाल घटाने पर यह ज्ञात होगा कि सूर्योदयके समय विषुवद् वृत्तका कौनसा विन्दु पूर्वमें लग्न है (देखो चित्र ६०)

	घं०	मि०	से०
सूर्यका विषुवांश	४	२४	१७
चरकाल		४३	२०
अन्तर	३	४०	५७

इसलिए सूर्योदयकालमें विषुवद्वृत्तका वह विन्दु पूर्वमें लग्न है जो वसंत सम्पातसे ३ घन्टा ४० मि० ५७ सेकंड या ३ घन्टा ४१ मिनट आगे है।

उदयकालिक शुक्रकी चरज्या = स्परे १६°१२′ × स्परे २५°२०′

= ·३४८२ × ·४७३७

= ·१६४६

∴ चरांश = ६° ३०′

∴ चरकाल = ३८ मिनट

	घं०	मि०
शुक्रका विषुवांश	३	४७
चरकाल		३८
अंतर	३	६

इसलिए शुक्र जिस समय पूर्व क्षितिजपर आवेगा उस समय विषुवद् वृत्तका वह विन्दु पूर्व में लग्न होगा जो वसंत सम्पातसे ३ घन्टा ६ मिनट आगे है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यके लग्नकालमें विषुवद्वृत्त-का ३ घन्टा ४१ मिनट लग्न था इसलिए सूर्य और शुक्रके लग्नकालोंमें ३ घन्टा ४१ मिनट—३ घन्टा ६ मिनट=३२ मिनट का अन्तर होगा। इसलिए विश्वपंचांगके अनुसार पूर्व में अस्त होनेके समय शुक्रका परमकाल ३२ मिनट और परम-कालांश ८ है। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि नाविक पंचांगके जो विषुवांश ऊपरके कोष्टकमें दिये गये हैं वे ग्रीनिच के २६ मईके मध्यम मध्याह्न कालके हैं जो काशीके साढ़े पांच बजे संध्याके लगभगके हैं। यथार्थमें इस दिनके काशीके सूर्योदय कालके विषुवांशों और क्रान्तियोंसे काम लेना चाहिए परन्तु शुक्र और सूर्यकी गतियोंमें बहुत थोड़ा अन्तर है इसलिए इन दोनोंका सापेक्ष अन्तर प्रातःकाल भी प्रायः उतना ही समझ लेनेमें कोई हर्ज नहीं है जितना सायंकालके लिए समझा गया है।

दूसरी बात और भी विचार करनेकी है। त्रिप्रश्नाधिकारमें बतलाया गया है कि वातावरणके कारण प्रकाशमें वर्तन हो

जाता है जिससे सूर्य यथार्थ उदयकालसे दो ढाई मिनट पहले ही देख पड़ने लगता है (देखो पृष्ठ ५४७)। इसलिए ऊपरकी गणनासे शुक्रका जो परमकाल ३२ मिनट होता है वह यथार्थमें ३० ही मिनट या उससे भी आधा मिनट कम ठहरता है।

अब देखना चाहिए कि ६ जूनको शुक्रका कालांश क्या है। इसके लिए प्रातःकालके विषुवांश और क्रान्तिसे काम लिया जायगा क्योंकि इससे अधिक शुद्धता होगी। यहां सेकंड और विकलाओंकी गणना नहीं की जायगी।

	सूर्य				शुक्र			
	विषुवांश		क्रान्ति		विषुवांश		क्रान्ति	
पूना की	घंटा	मिनट	अंश	कला	घंटा	मिनट	अंश	कला
५ जूनकी संध्यामें	४	५३	२२	३३	४	२३	२१	६
६ जूनकी संध्यामें	४	५७	२२	४०	४	२८	२१	२०
६ जूनके सूर्योदयकालमें	४	५५	२२	३६	४	२५.५	२१	१३

पूनाका अक्षांश १८°३०′।

∴ पूना में सूर्यकी चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २२°३६

= ·३३४६ × ·४१६३

= .१३९३

∴ चरांश = ८°

∴ चरकाल = ३२ मिनट

इसलिये सूर्योदयकालमें विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा ५५ मिनट—३२ मिनट = ४ घन्टा २३ मिनट

शुक्रकी चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २१°१३′

= ·३३४६ × ·३८८२

= ·१२९९

∴ चरांश = ७° २८′

∴ चरकाल = ३० मिनटके लगभग

इसलिए जिस समय शुक्र क्षितिजस्थ होगा उस समय विषुवद् वृत्तीय लग्न होगा

४ घन्टा २५॥ मिनट—३० मिनट = ३ घन्टा ५५॥ मिनट

परन्तु सूर्योदय कालमें विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा २३ मिनट

इसलिए चित्रशाला पंचांग या केतकी पंचांगके अनुसार शुक्रका परमकाल हुआ

४ घन्टा २३ मिनट—३ घन्टा ५५॥ मिनट = २७॥ मिनट

यदि इससे २॥ मिनट घटा दिया जाय, क्योंकि वर्तनके कारण सूर्योदय गणनाकालसे २ या ढाई मिनट पहले ही होता है, तो शुक्रका परमकाल २५ मिनट ही होता है जो सवा ६ अंशके समान हुआ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि दृश्य गणनासे भी शुक्रोदयकाल और शुक्रास्तकालमें बड़ी भिन्नता पड़ जाती है क्योंकि कोई परमकालांश कुछ मानता है और कोई कुछ। इसलिए इस बातकी बड़ी अवश्यकता है कि भारतवर्ष भरके ज्योतिषी मिलकर इस बातका निश्चय अवश्य करें कि किस ग्रहका

परम कालांश क्या माना जाय नहीं तो पंचांगोंकी यह धांधली कभी बंद नहीं हो सकती।

अब अधिक उदाहरण देकर विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है। शुक्रके परमकालांशके सम्बन्धमें आचार्य वेंकटेश बापू केतकरने अपने ज्योतिर्गणितके पृष्ठ ३३३ में जो लिखा है वह ज्योंका त्यों यहां दे दिया जाता हैः—

वातावरणे निर्मले सति हेमन्ततौं पश्चिमे कालांशान्तरे शुक्रो दृश्यते। प्रयत्ने कृते सार्धपञ्चमिते कालांशान्तरेऽपि द्रष्टुं शक्यते। परमस्मिन्प्रसङ्गे तत्तेजोहानिरियती जायते यत्केवलांस्तीक्ष्णेक्षणा ज्योतिर्विद एव तं द्रश्यन्ति।

बाल्य और वृद्धकाल

यह स्पष्ट है कि वातावरण सदैव निर्मल नहीं रहता। गरमीके दिनोंमें तो धूल इतनी रहती है कि क्षितिजके ऊपर सूर्य भी कुछ दूर तक नहीं देख पड़ता इस लिए ऐसी दशामें शुक्र या गुरु को देखना बड़ा कठिन होता है। दूसरी बात यह है कि देखने वाले की दृष्टि की मंदी और तीव्रतासे भी ग्रहोंके देखनेमें दो तीन दिनका अंतर हो सकता है। इन सब कारणों से ग्रहोंके उदय या अस्त होनेके दिनसे दो तीन या चार दिन आगे पीछे तक वे अदृश्य हो सकते हैं। जान पड़ता है इसी कारण पुराने आचार्योंने गुरु और शुक्रके बाल वृद्धकाल का विचार किया है परन्तु इसमें भी एक मत नहीं है जैसा कि मुहूर्त चिंतामणिमें लिखा है :—

पुरःपश्चाद्भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम्
पक्षं पंच दिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥ ४७॥

ते दशाहं द्वयोःप्रोक्तं कैश्चित्सप्तदिनं परैः ।
त्र्यहं स्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥२८॥*

गुरु और शुक्रके बाल्यकाल और वृद्धकालमें भी बहुतसे शुभकर्मोंका वैसे ही निषेध है जैसे इनके अस्तकाल में ।†

उदय या अस्त का विचार कालांश से होना चाहिए या उन्नतांश से ?

इस सम्बन्धमें एक बात और भी विचार करनेके योग्य है । ग्रहोंके उदय अस्तके विषयमें अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया है कि जब ग्रह सूर्यके इतना पास आजाते हैं कि प्रातः या सायंकालके संधिप्रकाश (twilight) के कारण देख नहीं पड़ते तभी कहा जाता है कि वे अस्त होगये । परन्तु सन्धिप्रकाश की तीव्रता और सीमा सब ऋतुओं और स्थान में एक सी नहीं रहती । इस बातका कोई भी अनुभव कर सकता है कि हमारे यहाँ जाड़ेके दिनोंमें संधिप्रकाश की सीमा बढ़ जाती है और गरमीके दिनोंमें घट जाती है । इसका कारण यह है कि संधिप्रकाश का सम्बन्ध क्षितिजके नीचे गये हुए सूर्यके नतांशसे होता है जो सूर्यकी क्रान्ति और इष्ट स्थानके अक्षांश पर आश्रित है (देखो पृष्ठ ४२६ सूत्र १) । अनुभवसे सिद्ध हुआ है कि जब तक सूर्य क्षितिजके नीचे १८ अंश से अधिक नहीं होता तब तक इसके प्रकाशका कुछ न कुछ अंश वातावरणके द्वारा लौटकर भूतलपर आता रहता है । सूर्यके अस्तकालसे लेकर उस समय तक जब तक वह क्षितिजके नीचे १८ अंशसे अधिक नहीं जाता जो मन्द प्रकाश मिलता है उसीको सन्धि प्रकाश कहते हैं ।

---

* संस्कार प्रकरण

† देखो मुहूर्त चिंतामणि शुभाशुभ प्रकरण श्लोक ४६,४७

इसी प्रकार सूर्यके उदयकालसे पहले जब वह क्षितिजसे १८ अंश नीचे हो जाता है तबसे प्रातःकालिक संधि-प्रकाशका आरंभ होता है। यह प्रकट है कि जब सूर्य १८ अंश क्षितिज-से नीचे रहता है तब यह खस्वस्तिकसे ९०+१८=१०८ अंश नीचे होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय सूर्यका पूर्वनतांश १०८ अंश होता है उस समयसे संधिप्रकाशका आरंभ होता है और जिस समय उसका पूर्वनतांश ९० अंश होता है उस समय तक प्रातःकालिक संधिप्रकाश रहता है। इसी प्रकार जब तक सूर्यका पश्चिम-नतांश ९० से १०८ रहता है तब तक सायंकालिक संधि-प्रकाश रहता है।

पृष्ठ ४२९ के सूत्र (१) में बतलाया गया है कि नतांश और नतकालका क्या सम्बन्ध है और यह अक्षांश और क्रान्ति पर किस प्रकार आश्रित है। इस सूत्र में नतांशकी जगह १०८, तथा इष्ट स्थानके अक्षांश और इष्ट दिनकी सूर्यकी क्रान्तिके मान उत्थापित किये जाय तो जो नतकाल आवेगा उससे सूर्यका उदयकालिक या अस्तकालिक नतकाल घटा दिया जाय तो उस दिनके संधिप्रकाशका परिमाण मालूम हो जायगा। उदय या अस्तकालका नतकाल जाननेके लिए नतांशका परिमाण ९० अंश ३५ कला लेना पड़ेगा क्योंकि उदय या अस्त होते हुए सूर्य या किसी ग्रहका प्रत्यक्ष नतांश ९० होता है परन्तु वातावरणके वर्तनके कारण यथार्थ नतांश ३५ कला और बढ़ जाता है (देखो पृष्ट ५४७-५२) इसलिये सूर्यका उदय या अस्तकालिक नतांश यथार्थ में ९०°३५′ होता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि संधिप्रकाश सब ऋतुओं में और सब स्थानों में एक सा नहीं होता इसलिए ग्रहोंके दर्शन और लोपका दिन जाननेके लिए सब स्थानों और सब ऋतुओंके लिए एक ही ग्रहका परम कलांश भिन्न-भिन्न मानना पड़ेगा क्यों कि जहाँ संधि प्रकाश देर तक रहेगा वहां उसी परम कलांशसे काम न चलेगा जो थोड़े संधि प्रकाशके लिए काम दे सकता है। इन सब बातोंका विचार करनेसे यही युक्ति युक्त जान पड़ता है कि ग्रहों के लोप और दर्शन का विचार उनके उन्नतांश से किया जाय न कि कालांश से जैसा कि आचार्य केतकर जी पृष्ठ २३३ में लिखते हैं:—

सर्वे ग्रहाः शीघ्रकेन्द्रगत्या सूर्यमुपेत्य कानिचिद्दिनान्यदृश्या भवन्ति। इयं चमत्कृती रविग्रहयोरुदयास्तमययोः कालयोरन्तरमाश्रयत इति पूर्वाचार्याणां मतं न समञ्जसम्। यतः संध्यारुणदीप्तिः सूर्यस्य क्षितिजादधस्तनान्नतांशाननुसरति न च कालांशान्। यत्र देशे २५° अक्षांशास्तत्र विषुवद्दिवसे संधिप्रकाशः सूर्यस्योदयास्तकालात्प्राक् पश्चात् ३ घ० ४० पल वर्तते। परमयनप्रवृत्तिदिवसे स एव ४ घड़ी ४० पल भवति। एतयोः कालांशाः क्रमेण २२°, २८° भवन्ति। अतएव सिद्धं यदेकैरेव कालांशैर्यद्दर्शनादर्शन गणितं पूर्वाचार्यैरुक्तं तदुपपत्ति विरुद्धं स्थूलं चेति। अतो ग्रहाणां लोपदर्शन गणितं तेषामुन्नतांशाश्रयेणैव कार्यम्।

आचार्य केतकरके मतसे शुक्रका उदयास्तकालिक उन्नतांश ६°·५ और गुरुका ११° है। देखो ज्योतिर्गणित पृ० ३५१

उदाहरण—काशीमें सायन मकर संक्रान्ति, सायन मेष संक्रांति और सायन कर्क संक्रान्तिके दिन संधि प्रकाशकी अवधि क्या होती है?

काशीका अक्षांश २५° १८′

सायन मकर संक्रान्ति तथा सायन कर्क संक्रान्तिके दिन सूर्यकी क्रान्ति २३° २७′ (देखो पृष्ठ ४५१) और सायन मेष या तुला संक्रान्तिके दिन सूर्यकी क्रान्ति शून्य होती है।

सायन कर्क संक्रान्तिके दिनका सन्धि-प्रकाश जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है—

बतलाया गया है कि संधि प्रकाशके आरंभ या अन्तमें सूर्य का नतांश १०८ होता है इसलिए ४२६ पृष्ठके सूत्र (१) के अनुसार

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८^\circ - \text{ज्या } २५^\circ १८' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \times \text{कोज्या } २३^\circ २७'}$$

$$= \frac{-\text{ज्या } १८^\circ - \text{ज्या } २५^\circ १८' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \times \text{कोज्या } २३^\circ २७'}$$

$$= \frac{-\cdot ३०९० - \cdot ४२७४ \times \cdot ३९७९}{\cdot ९०४१ \times \cdot ९१७५}$$

$$= \frac{-\cdot ३०९० - \cdot १७०१}{\cdot ८२९५}$$

$$= \frac{-\cdot ४७९१}{\cdot ८२९५}$$

$$= -\cdot ५७७६$$

यहां कोज्या नतकाल ऋणात्मक है इसलिए नतकालांश ९० अंशसे अधिक है। यदि यह ९० अंशसे अ अंश अधिक हो तो

कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ
= − ·५७७६

∴ अ = ३५° १७′

∴ संधि प्रकाशके आरंभ कालका नतकाल
= ९०° + ३५° १७′ = १२५° १७′

पृष्ठ ५४९-५० के अनुसार काशीमें सूर्योदयकालिक नतकाल
= १०१° ५० ′ + ४३′ = १०२° ३३′

इसलिए संधिप्रकाश काल = १२५° १७′ — १०२° ३३′
= २२° ४४′ = १ घंटा ३० मि० ५६ सेकंड

सायन मकर संक्रान्तिके दिनका संधिप्रकाश काल—

इस समय सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होती है इसलिए उपर्युक्त सूत्रमें ऋण चिन्ह धन हो जायगा (देखो पृष्ठ ४३१) और संधिप्रकाशके आरम्भका नतकाल नीचे लिखे समीकरणसे सिद्ध होगा—

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{-\text{ज्या } १८° + \text{ज्या } २५° १८' \times \text{ज्या } २३° २७'}{\text{कोज्या } २५° १८' \times \text{कोज्या } २३° २७'}$$

$$= \frac{-·३०९० + ·१७०१}{·८२९५}$$

$$= \frac{-·१३८९}{·८२९५}$$

$$= -·१६७५$$

∴ कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ
= − ·१६७५

∴ अ = ९° ३८′

∴ संधिप्रकाशके आरम्भकाल का नतकाल

$= ९०° + ६°३८' = ९६°३८'$

पृष्ठ ५५० के अनुसार सूर्योदयकालिक नतकाल

$= ७८° १०' + ४३' = ७८°५३'$

∴ संधि प्रकाशकाल $= ९६°३८' - ७८°५३' = २०°४५'$

$= १$ घंटा २३ मिनट

सायन मेष या तुलासंक्रान्तिके दिन सन्धि प्रकाशकाल—

इस दिन सूर्यकी क्रान्ति शून्य होती है इसलिए ज्या क्रांति भी शून्यके समान होगी परन्तु कोज्या १ होगी इसलिए संधि-प्रकाशके आरम्भ कालका नतकाल इस सूत्रसे जाना जायगा।

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८°}{\text{कोज्या } २५°१८'}$$

$$= \frac{- \text{ ज्या } १८°}{·९०४१}$$

$$= \frac{-·३०९}{·९०४०}$$

$$= -·३४१८$$

∴ कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ

$= -·३४१८$

∴ अ $= १९°५६'$

∴ संधि प्रकाशके आरंभका नतकाल $= ९० + १९°५६'$

$= १०९°५६'$

पृष्ठ ५५१ के अनुसार सूर्योदय का नतकाल $९०°३८'·७$ या $९०°३९'$ है। इसलिए

संधिप्रकाशकाल $= १०९°५६' - ९०°३९' = १९° २०'$

$= १$ घंटा १७ मिनट २० सेकंड

इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी स्थान पर संधि प्रकाश काल सब ऋतुओंमें एकसा नहीं होता। ऊपर जो गणनाकी गयी है उसमें सूर्य उस समय क्षितिजपर समझा गया है जिस समय सूर्यका केन्द्र क्षितिज पर आता है परन्तु सूर्यका ऊपरी बिम्ब १ मिनटके लगभग पहलेही क्षितिजको छू लेता है क्योंकि सूर्यका बिम्बार्ध १६ कलाके लगभग होता है। इस कारण संधि प्रकाश काल १ मिनट और कम हो जाता है—

उदयास्तकालके कितने दिन बीते हैं या शेष हैं—

तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तर विभाजिताः ।
दिनादितत्फलं लब्धभुक्तियोगेन वक्रिणः ॥१०॥
तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादश शतोद्धृते ।
स्यातां कालगतीताभ्यां दिनादि गत गम्ययोः ॥११॥

अनुवाद—(१०) ग्रहके इष्टकालिक कालांश और परमकालांश के अंतरको कलाओंमें लिखकर सूर्य और ग्रहकी दैनिक कालगतियोंके अन्तरसे (यदि ग्रह मार्गी हो) और योगसे (यदि ग्रह वक्री हो) भाग देने से जो आता है वह दिनोंकी संख्या है। (११) सूर्य या ग्रह जिस राशिमें हो उसके लग्नासुओंको स्पष्ट दैनिक गतिसे गुणा करके गुणनफलको १८०० से भाग देने पर जो प्राप्त होता है वही ग्रहकी कालगति होती है। सूर्य और ग्रहकी कालगतियों (के अन्तर या योग) से ही उदय या अस्तकालके गत या गम्य दिन जाने जाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—यदि किसी दिन यह जानना हो कि किसी ग्रहके उदय या अस्त होनेको कितने दिन हैं या उदय अथवा

अस्त होनेके उपरान्त कितने दिन बीत गये हैं तो उस दिनका ग्रहका कालांश ४-५ श्लोकोंके अनुसार जान लेना चाहिए जिससे यह मालूम हो जाता है कि ग्रह सूर्योदयसे कितने पहले उदय होता है या सूर्यास्तसे कितना पीछे अस्त होता है।

यदि यह कालांश परमकालांशसे अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रहके भोगांशसे अधिक हुआ—और यह ग्रह मार्गी बुध या शुक्र है तो समझ लेना चहिये कि अभी इसके अस्त होनेमें कुछ दिन शेष है परन्तु यदि यह ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि इसके उदय हुए कुछ दिन बीत गये हैं। परन्तु यदि कालांश अधिक तथा सूर्यका भोगांश ग्रहके भोगांशसे कम हुआ और ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि अभी इनके अस्त होनेमें कुछ दिन शेष हैं। इसके विपरीत यदि कालांश परमकालांशसे कम तथा सूर्यका भोगांश ग्रहके भोगांशसे अधिक हुआ—तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध या शुक्रके अस्त हुए कुछ दिन बीत गये और मङ्गल, गुरु या शनि तथा वक्री बुध या शुक्रके उदय होनेमें कुछ दिन शेष हैं। परन्तु यदि सूर्यका भोगांश भी ग्रहके भोगांशसे कम हुआ तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध और शुक्रके उदय होनेमें कुछ दिन शेष हैं तथा मङ्गल, गुरु, शनि और वक्री बुध या शुक्रके अस्त हुए कुछ दिन बीत गये हैं। सब दशाओंमें इन दिनोंकी संख्या जाननेके लिए कालांश और परमकालांशका अन्तर निकालना चाहिए और देखना चाहिए कि यह अन्तर कितने दिनमें घट कर शून्य हो जायगा या शून्य से बढ़ते बढ़ते इतना हुआ है। ऐसा करनेके लिए इस अन्तरको सूर्य और इष्ट ग्रहकी दैनिक

गतियोंके अन्तरसे भाग देना चाहिए यदि ग्रह मार्गी हो परन्तु यदि वक्री हो तो इनकी दैनिक गतियोंको जोड़ लेना चाहिए जैसा कि ग्रहयुत्यधिकारमें बतलाया गया है। परन्तु सूर्य या ग्रहकी दैनिक गति साधारणतः क्रान्तिवृत्तीय होती है और कालांश विषुवद्वृत्तीय होता है इसीलिये क्रान्तिवृत्तीय दैनिक गतियोंको विषुवद्वृत्तीय में बदलने के लिए ११ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य या ग्रह जिस राशिमें हो उसके लग्नासुओंको सूर्य या ग्रहकी दैनिक गतिसे गुणा करके १८०० से भाग देना चाहिए क्योंकि राशिके उदय होनेका समय उसके लग्नासुओंके समान होता है इसलिए ग्रहकी जितनी दैनिक गति होती है उसके उदय होनेका समय भी उसी अनुपातसे समझना चाहिए। दैनिक गति छोटी होनेके कारण साधारणतः कलाओं में लिखी जाती है इसीलिए एक राशिको भी १८०० कलाओंमें लिखा जाता है। इससे ग्रहकी जो दैनिक गति आती है वह विषुवद्वृत्तीय हो जाती है इसी लिए इसको कालगति कहा गया है क्योंकि इससे कालका पता सहज ही लग जाता है। बीजगणितकी भाषामें १०-११ श्लोकोंके नियमको इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

इष्ट दिनका ग्रहका कालांश ∽ ग्रहका परमकालांश

= कालांशान्तर......(१)

∽ यह अन्तरका चिन्ह है और सूचित करता है कि इसके दहिने बायेंकी संख्याओंमें जो बड़ी हो उससे छोटीको घटाना चाहिये।

किसी ग्रहकी दैनिक कालगति

$$= \frac{\text{ग्रहकी दैनिक गति} \times \text{ग्रहकी राशिके लग्नासु}}{१८००} \ldots\ldots(२)$$

गत या गम्य दिनोंकी संख्या

$$= \frac{\text{कालांशान्तर}}{\text{सूर्यकी कालगति} \mp \text{ग्रहकी कालगति}} \ldots\ldots(३)$$

यदि ग्रह वक्री हो तो अन्तिम समीकरणमें धनका चिह्न रखना चाहिए नहीं तो दोनोंका अन्तर निकालना चाहिए। यहा ऋणके चिह्नकी जगह अंतरका चिह्न अधिक युक्तियुक्त है क्योंकि किसी ग्रहकी कालगति सूर्यकी कालगतिसे अधिक होती है और किसीकी कम।

ग्रहकी कालगति जाननेका जो नियम दिया गया है वह कुछ स्थूल है इसका कारण यह है कि ग्रहकी गति क्रान्तिवृत्ति पर नहीं होती वरन अपने कक्षावृत्त पर होती है जो क्रान्तिवृत्त से कुछ भिन्न है परन्तु इससे विशेष हानि नहीं है। यदि ग्रहका विषुवांश और क्रान्ति मालूम कर ली जांय तो विषुवांश में प्रतिदिनका जो अन्तर होता है वही कालगति होती है। विषुवांश जान लेनेपर ग्रहका कालांश भी सुबिधा और शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है क्योंकि फिर दृक्कर्मकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए मेरी सम्मतिमें ग्रहों या तारोंका उदय अस्त और युतिकी गणना करनेके लिए ग्रहों या तारोंके भोगांशकी जगह विषुवांश के ज्ञानकी अधिक आवश्यकता है जिसकी शुद्ध शुद्ध जानकारी अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त और यन्त्रोंकी सहायतासे ही हो सकती है। इस बातके लिए आव-

श्यकता है एक वेधशाला की, जहां हमारे ज्योतिषी ग्रहों और तारोंका वेध करके इनके स्थानों और मूलाङ्कोंका ठीक ठीक पता लगा सकें।

तारों के परम कालांश—

स्वात्यगस्त्यमृगव्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः
अभिजिद्ब्रह्महृदय त्रयोदशभिरंशकैः ॥१२॥
हस्तश्रवण फाल्गुन्यः श्रविष्ठा रोहिणीमघाः।
चतुर्दशांशकै दृश्या विशाखाश्विनि दैवतम् ॥१३॥
कृत्तिकामैत्र मूलानि सार्पं रौद्रर्क्षमेव च।
दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढा द्वितयं तथा ॥१४॥
भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यात् त्रिःसप्तकांशकैः।
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु ॥१५॥

अनुवाद—(१२) स्वाती, अगस्त्य, मृगव्याध या लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्म हृदय तारोंके परम कालांश १३ हैं। (१३) हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा और अश्विनीके परम कालांश १४ हैं। (१४) कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़, और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंके परम कालांश १५ हैं। (१५) सूक्ष्म होनेके कारण भरणी, पुष्य और मृगशिराके परम कालांश २१ हैं। इससे अधिक होनेपर वे दृश्य और कम होने पर अदृश्य होते हैं। शेष नक्षत्रोंके परम कालांश १७ हैं।

विज्ञान भाष्य—१५ वें श्लोकमें जिन शेष नक्षत्रोंके लिए संकेत है वे वही हैं जिनकी चर्चा नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकारमें हुई है परन्तु जिनके नाम यहां नहीं दिये गये हैं। तारोंके इन कालांशोंसे यह भी प्रकट होता है कि हमारे आचार्योंके मतसे कौन तारा चमकमें किस श्रेणीका है। चमकमें प्रथम श्रेणीके तारे १२ वें श्लोकोंमें दिये गये हैं जिनके कालांश १३ हैं। दूसरी श्रेणीमें वे तारे आते हैं जो १३ वें श्लोकमें दिये गये हैं और जिनके कालांश १४ हैं। तीसरी श्रेणीके तारे १४ वें श्लोकमें लिखे गये हैं जिनके कालांश १५ हैं। इनके सिवा १५ वें श्लोकमें जो तारे आये हैं उनकी श्रेणीका ठीक ठीक पता नहीं लगाया जा सकता।

आजकल चमकके अनुसार तारोंका विभाग बहुत ही सूक्ष्म रीतिसे किया जाता है। अंधेरी रातमें बिना किसी यन्त्रकी सहायताके तेज आँखवाले मनुष्य सारे आकाशमें जितने तारे देख सकते हैं उनकी संख्या ६००० से अधिक नहीं है। इन ६ हजार तारोंको ६ श्रेणियों (magnitudes) में विभक्त किया गया है। इन श्रेणियोंका विभाग इस प्रकार किया गया है कि प्रथम श्रेणीका कोई विशेष तारा छठीं श्रेणीके किसी विशेष तारेसे चमकमें १०० गुना होता है। इससे यह फल निकलता है कि किसी श्रेणीका तारा अपने नीचे वाली श्रेणीके तारेसे २.५११९ गुना चमकीला होता है अर्थात् १ली श्रेणीका तारा २री श्रेणीके तारेसे २.५११९ गुना चमकीला होता है, दूसरी श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारेसे २.५११९ गुना चमकीला होता है परन्तु पहली श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारेसे

२.५११९ × २.५११९=६.३०६६ गुना चमकीला होता है इत्यादि। यह तो हुई उन तारोंकी बात जिन्हें तेज आँख वाले बिना किसी यन्त्रकी सहायताके देख सकते हैं। दूरदर्शक यन्त्रसे १५वीं श्रेणी तकके तारे देखे गये हैं। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि जो तारे एक श्रेणीमें हैं वे भी सब समान चमक के नहीं हैं। पहली श्रेणीमें जो तारे रखे गये हैं उनकी संख्या २० से अधिक नहीं हैं परन्तु इनमें सबसे अधिक चमकीला लुब्धक है। उसके बाद अगस्त्य का नम्बर आता है। इन दोनोंकी चमकमें भी इतना अन्तर है कि कोई भी सहज ही देख सकता है। इसलिए अधिक सूक्ष्म गणना करनेके लिए प्रत्येक श्रेणीमें दस और विभाग किये गये हैं। यह तो प्रकट है कि तारेकी चमक जितनी ही अधिक है उसकी श्रेणीकी क्रम संख्या उतनी ही छोटी है इसलिए प्रथम श्रेणीके सबसे चमकीले तारे लुब्धककी श्रेणी ऋणात्मक और—१·४ है और इसकी चमक ९·१ मानी गयी है। श्रेणी और चमक का सम्बन्ध नाचे की सारिणी*से सहज ही समझमें आ सकता है:—

६ठीं श्रेणीके	तारेकी	चमक	=	१	
५वीं	”	”	”	=	२.५ गुनी
४थी	”	”	”	=	६.३ ”
३री	”	”	”	=	१५.८ ”
२री	”	”	”	=	३९.६ ”

*सर नारमन लाकयरके (Elementary Lessons in Astronomy) पृष्ठ १० से उद्धृत।

१ली श्रेणीके तारेकी चमक = १०० गुनी

१ली श्रेणीके सबसे चमकीले तारे लुब्धककी चमक } = ४०० "

सूर्यकी चमक = ६४०००००००००० गुनी

किसी तारेकी चमक सदैव एकसी नहीं रहती इसलिए पुरानी और नयी पुस्तकों में प्रथम श्रेणीके २० तारोंके क्रममें भी दो चार जगह भिन्नता हो गयी है। इस भिन्नताका कारण यह भी है कि चमक परखनेकी कसौटी भी पहले कुछ स्थूल थी और अब सूक्ष्म हो गयो है। इस बातका पता नीचेकी सारणी† से चलेगा :—

नाम	श्रेणी	चमक	नयीश्रेणी*
सूर्य	—२६.५		
पूर्ण चन्द्रमा	—१२.०		
शुक्र	— ३.०	३६.८	
लुब्धक α canis majoris, sirius	— १.४	६.१	– १.५८
अगस्त्य α Argus, canopus	— ०.८	५.२	—०.८६

† देखो The Twentieth Ceutury Atlas of Popular astronomy by Heath, second edition pp. 112

* यह १६२६ ई० के Nautical almanac के अनुसार है।

नाम	श्रेणी	चमक	नयीश्रेणी
ब्रह्म हृदय α Aurigae, capella	०.१	२.३	०.२१
स्वाती α Bootis, Arcturus	०.२	२.१	०.२४
α centauri ...	०.२	२.१	०.०६
अभिजित α Lyrae, Vega	०.२	२.१	०.१४
β Orionis, Regel ...	०.३	१.९	०.३४
α Eridani, Achenrar ...	०.४	१.७	०.६०
प्रश्वा α canis minoris, Procyon	०.५	१.६	०.४८
β centauri	०.७	१.३	०.८६
α orionis, Betelguese ...	०.९	१.१	परिवर्तन शील
α crucis	०.९	१.१	
श्रवण α aquilae, Altair ...	०.९	१.१	०.८९
रोहिणी α tauri, Aldebaran	१.०	१.०	१.०६
चित्रा α Virginis, spica ...	१.१	०.९	१.२१

नाम	श्रेणी	चमक	नयीश्रेणी
पुनर्वसु α Geminorum, Pollux	१.२	०.८	१.२१
ज्येष्ठा α scorpii, Antares	१.२	०.८	१.२२
मघा α Leonis, Regulus	१.३	०.८	१.३४
कुम्भज α Piscis Australis, Fomalhaut	१.३	०.८	१.२६
α cygni, Deneb ...	१.४	०.७	१.३३

पूर्ण चन्द्रमासे सूर्य ६३१००० गुना चमकीला है। चौथे स्तम्भमें जो नयी श्रेणी दी गयी है उससे प्रकट होता है कि कई तारोंके क्रममें अन्तर पड़ गया है। इसके अनुसार अगस्त्य-के बाद (centauri) और अभिजित आते हैं न कि ब्रह्महृदय जैसा कि पुरानी श्रेणीमें दिखलाया गया है। इसी प्रकार अन्य तारोंके समन्धमें भी समझ लेना चाहिए।

गतगम्यदिन जाननेकी २ रीति—

अष्टादशशताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः।
विभज्यलब्धाः क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यताथवा ॥१६॥

अनुवाद—(१६) अथवा दृश्यांश (कालांश) को १८०० से गुणा करके राशिके लग्नासुओंसे भाग देनेसे जो क्षेत्रांश, (भोगांश) आवे उससे भी दृश्य या अदृश्य होनेका दिन जाना जा सकता है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १० वें और ११ वें श्लोकोंमें बतलाये हुए नियमका विलोम है। वहां कालांशांतरको दैनिक काल-गतियोंके अन्तरसे भाग देनेको कहा गया है और यहां बतलाया गया है कि दैनिक गतिसे दैनिक कालगति कैसे जानी जा सकती है। यहां दैनिक काल-गति जाननेकी आवश्यकता नहीं वरन् कालांशांतरकोही क्रान्तिवृत्तीय भोगांशान्तरमें बदलनेके लिए बतलाया गया है। इसलिए इसकी उपपत्ति वही है जो वहां बतलायी गयी है। यदि यह श्लोक ११ वें श्लोकके बाद दिया गया होता तो अधिक उपयुक्त होता क्योंकि इसका सम्बन्ध १५ वें श्लोकसे तो बहुत कम है।

तारोंका उदय अस्त जानना—

प्रागेषामुदयः पश्चादस्तो दृक्कर्म पूर्ववत् ।
गतैष्य दिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि ॥१७॥

अनुवाद—(१७) तारोंका पूर्वमें उदय और पच्छिममें अस्त होता है। तारोंका आद्य दृक्कर्म संस्कार पहलेकी तरह करना चाहिए और उदयास्तका गत-गम्य दिन जाननेके लिए सूर्य की ही गति से काम लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—नक्षत्रोंमें कोई गति नहीं देख पड़ती इसलिए सूर्य ही उनके पास पहुँचता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य उनके इतना पास हो जाता है कि वे इसके प्रकाशमें दब जाते

हैं तभी उनका अस्त समझा जाता है। इसलिए इनका अस्त सदैव पच्छिममें होता है जैसा कि मंदगामी मंगल, गुरु और शनि ग्रहोंके साथ होता है। जब सूर्य इनके इतना आगे बढ़ जाता है कि वे देख पड़ने लगते हैं तभी उनका उदय समझा जाता है और इस समय यह सूर्योदयके पहले पूर्व क्षितिजमें देख पड़ते हैं।

यह पहलेही कहा जा चुका है कि नक्षत्रोंकी क्रान्ति नहीं बदलती इसलिये इनका कालांश जाननेके लिए केवल आक्षदृक्कर्म संस्कारकी आवश्यकता होती है।

अभी बतलाया गया है कि उदय अस्तका गत-गम्य दिन जाननेके लिए सूर्य और ग्रह की कालगतियोंके अन्तरसे कालांशान्तरको भाग दिया जाता है। परन्तु नक्षत्रोंमें गति शून्य होती है इस लिए केवल सूर्यकी गतिसे ही कालांशान्तरको भाग देनेकी आवश्यकता पड़ती है।

कभी अस्त न होने वाले तारे—

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वाती वैष्णव वासवाः।
अहिर्बुध्न्यमुदक्कस्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥१८॥

अनुवाद—(१८) अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद बहुत उत्तरमें होनेके कारण सूर्यके प्रकाशसे नहीं छिपते।

विज्ञान भाष्य—जब सूर्य इन तारोंके विषुवांश पर या इसके निकट आता है तब उससे इनका अंतर उत्तरकी ओर इतना अधिक होता है कि ये सूर्यके उदयास्त कालसे इतना पहिले

तारोंके नाम	विषुवांश			क्रान्ति उत्तर			सूर्यकाविषुवांश			सूर्य की क्रान्ति			सूर्यकी क्रान्तिकी
	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	दिशा और ता०
अभिजित्	१८	३४	३२	३८	४३	०	१८	३६	१६	२३	११	१८	दक्षिण, ३० दि०
ब्रह्म हृदय	५	११	२६	४५	५१	४०	५	१२	३४	२३	०	८	उत्तर, १० जून
स्वाती	१४	१२	२५	१९	३३	५	१४	१३	५	१३	२३	६	द०, २६ अक्टूबर
श्रवण	१६	४७	१९	८	४०	४७	१६	४७	१८	२१	६	४१	द०, १५ जनवरी
धनिष्ठा	२०	३६	२०	१५	३६	३८	२०	३७	५६	१८	३०	२४	द०, २७ जनवरी

उदय या अस्त होते हैं कि देख पड़ते हैं इसलिए सूर्यके प्रकाशसे यह कभी लुप्त नहीं हो सकते। यह बात ६७४ पृष्ठ की सारणी* से और भी स्पष्ट होती है:—

इससे प्रकट है कि सूर्यकी क्रान्ति केवल ब्रह्महृदयके सामने उत्तर होती है अन्यथा दक्षिण है जब कि तारोंकी क्रान्ति सदैव उत्तर है। ब्रह्म हृदय और सूर्यका क्रान्त्यन्तरभी २३ अंशके लगभग है। अब देखना है कि काशी या प्रयागमें ब्रह्म-हृदयका चरकाल क्या है।

चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा

∴ ब्रह्महृदयकी चरज्या = स्परे ४५°५६′ × स्परे २५°२५′

= १.०३३१ × .४७५२

= .४९०९

∴ चरांश = २९°२४′

∴ चरकाल = १ घण्टा ५८ मिनटके लगभग

इस दिन सूर्यका चरकाल ४७ मिनटके लगभग होता है। दोनोंकी क्रांति उत्तर है। इसलिए ब्रह्महृदयका उदय सूर्योदय कालसे १ घण्टा ५८ मिनट−४७ मिनट = १ घण्टा ११ मिनट पहले होगा और इसका अस्त सूर्यास्तसे इतना ही पीछे होगा इसलिए इस दिन ब्रह्महृदय प्रातःकाल और सायङ्काल दोनों समय देखा जा सकता है। जिस दिन सूर्योदयकालमें यह तारा पूर्व क्षितिजमें लग्न होता है उस दिन तो इसका दैनिक अस्त सूर्योदय कालसे १६ घण्टेके उपरान्त होगा जब सूर्य को अस्त

* १९१६ के नाविक पंचांगके अनुसार

होनेमें १४ घण्टेसे अधिक नहीं लग सकता। इसलिए इस दिन भी यह सायंकालमें अच्छी तरह देखा जा सकता है। इसी प्रकार जिस दिन यह सूर्यास्त कालमें पच्छिम क्षितिजमें लग्न होता है उस दिन सूर्योदयसे २ घण्टे से भी अधिक पहले उदय होकर लोगोंको दर्शन देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि काशी प्रयागके उत्तरके देशोंमें तो यह कभी अदृश्य नहीं हो सकता, हाँ उन स्थानोंमें जिनका उत्तर अक्षांश २० अंशसे कम है, यह कुछ दिनोंके लिए अवश्य अदृश्य हो जायगा इसलिए यह जगन्नाथ पुरीमें प्रत्येक दिन देखा जा सकता है परन्तु बम्बईमें नहीं।

शेष तारोंमें श्रवण ऐसा तारा है जिसकी उत्तर क्रान्ति बहुत कम है। इसलिए देखना चाहिये कि इसके लिए यह नियम कहां तक ठीक है।

काशी प्रयागमें श्रवणका चरकाल = १७ मिनटके लगभग
" सूर्यका चरकाल = ४३ " "

दोनोंकी क्रान्ति भिन्न हैं इसलिए इस दिन सूर्योदयसे १७ + ४३ मिनट = १ घण्टा पहले श्रवणका उदय होगा। परन्तु श्रवकका कालांश ५६ मिनट है इसलिये यह अच्छी तरह देखा जा सकता है। परन्तु काशी प्रयागके दक्षिणके देशोंके लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

इसी प्रकार अन्य तारोंके बारेमें भी जाना जा सकता है।

इस प्रकार उदयास्ताधिकार नामक ९ वें अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

शृङ्गोन्नत्यधिकार नामक दसवाँ अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक १—चन्द्रमाका उदय अस्त जाननेकी विधि पहलेकी तरह है और कालांश १२ हैं। श्लोक २-४-शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाका दैनिक अस्त-काल जाननेकी रीति। श्लोक ५-कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका दैनिक उदयकाल जाननेकी रीति। श्लोक ६-८-सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अन्तर जाननेकी रीति। श्लोक ६—चन्द्रमाके शुक्ल भागका बिम्ब जानने की रीति। श्लोक १०-१४-चन्द्रमाके शुक्ल भागका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक १५—कृष्ण पक्षमें चन्द्रबिम्बका परिलेख खींचनेका नियम।

इस अध्यायमें चन्द्रमाका उदयास्तकाल जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इससे पहलेके अध्यायमें केवल उस प्रकार के उदय अस्तका वर्णन है जिसमें ग्रह सूर्यके बहुत पास आजानेसे अदृश्य हो जाता है। परन्तु इस अध्यायमें इस प्रकारके उदय अस्तके सिवा चन्द्रमाका दैनिक उदयास्तकाल जाननेकी रीति भी है। फिर यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि किस दिन चन्द्र-बिम्बका कितना भाग प्रकाशित रहता है और उसका आकार कैसे खींचा जा सकता है। शुक्ल पक्षके आरम्भमें अथवा कृष्ण पक्षके अन्तमें चन्द्रमाके प्रकाशित या शुक्ल भागका आकार शृङ्गकी तरह होता है और उत्तर या दक्खिनकी तरफ उठा रहता है इसीलिए इस अध्यायका नाम शृङ्गोन्नत्यधिकार है।

यहां यह याद दिलानेकी आवश्यकता है कि चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान सूर्यसिद्धान्तकी गणनाकी रीतिसे जाने गये स्थान से बहुत भिन्न होता है जैसा कि स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २७२-२८७ में अच्छी तरह दिखलाया गया है। इसके सिवा चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति भी सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे ठीक नहीं होती। इन सब कारणोंसे इस अध्यायके लिए दृग्गणितके मूलाङ्कोंसे ही काम लेना चाहिए नहीं तो सूर्य-सिद्धान्तके मूलाङ्कोंके द्वारा चन्द्रमाके उदयास्तका जो समय ज्ञात होगा वह प्रत्यक्ष से १५,१६ मिनट आगे पीछे होगा। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिषका संशोधन करनेके लिए एक अच्छी वेधशाला हो जिसमें चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रोंका सूक्ष्मसे सूक्ष्मवेध लेकर इनके मूलाङ्क फिरसे स्थिर किये जांय। ऐसे काममें भी नाविक पंचांग के आश्रित होना किसी प्रकार वांछनीय नहीं है।

चन्द्रमाका उदयास्तकाल और कालांश—

उदयास्त विधिः प्राग्वत्कर्तव्यः शीतगोरपि।
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद्दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम् ॥१॥

अनुवाद—(१) चन्द्रमाके भी उदय और अस्त होनेका समय उदयास्तधिकारके श्लोक ४, ५ में बतलायी गयी रीतिसे जानना चाहिए। जब इसका कालांश सूर्यसे १२ अंश पीछे होता है तब यह पच्छिम में दृश्य होता है और पहले होता है तब पूर्व में अदृश्य हो जाता है।

विज्ञान-भाष्य—इस पर विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि जैसे और ग्रहोंका उदयास्तकाल जाना जाता है वैसे ही चन्द्रमाका भी । चन्द्रमाका ऐसा उदय अस्त चान्द्र-मासमें केवल एक बार होता है । चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र है इसलिए चन्द्रमाका अस्त पूर्वमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको होता है और उदय पच्छिममें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके उपरान्त सन्ध्याकालमें होता है ।

दैनिक उदयास्तकाल जानने की रीति—

रवीन्द्वोः षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः ।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिकाः ॥२॥
तन्नाडिकाहते भुक्ती रवीन्द्वोः षष्टिभाजते ।
तत्फलान्वित ये भूयः कर्तव्या विवरासव ॥३॥
एवं यावत् स्थिरी भूता रवीन्द्वोरन्तरासवः ।
तैः प्राणैरस्तमेतीन्द्रः शुक्लेऽर्कास्तमयात्परम् ॥४॥

अनुवाद—(२) (शुक्ल पक्षके जिस दिन चन्द्रमाका अस्त काल जानना हो उस दिनके सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करके और चन्द्रमामें आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करके) सूर्यके भोगांश और चन्द्रमाके दृक्कर्म संस्कृत भोगांशमें छ छ राशि जोड़ने से जो आवे उनके उदय लग्नोंके अन्तरासुओं को जान ले । यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशिमें हों तो इनके भोगांशोंके अन्तर की कला बना लेना पर्याप्त होगा (२) इन उदय लग्नोंके अन्तरासुओं की घड़ी बना

कर इससे सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियोंसे गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे। सूर्यकी गतिसे जो लब्धि मिले उसको सूर्यके भोगांशमें और चन्द्रगति से जो लब्धि मिले उसे चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ कर इनका लग्नान्तर काल पहले की तरह फिर निकाले। (४) इस प्रकार कई बार करनेसे लग्नान्तर काल स्थिर हो जाता है। इतने ही समय पर शुक्ल पक्षमें सूर्यास्तके उपरान्त चन्द्रमाका अस्त होता है।

विज्ञान-भाष्य—किसी किसी ग्रन्थमें इन तीन श्लोकोंके स्थानमें केवल एक श्लोक है जिसका पूर्वार्ध २ रे श्लोकका पूर्वार्ध है और उत्तरार्ध ४ थे श्लोक का उत्तरार्ध। इसलिए किसी किसीके मतसे २ रे श्लोकके उत्तरार्धसे लेकर ४ थे श्लोकके पूर्वार्ध तककी ४ पंक्तियां प्रक्षिप्त हैं। पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी, पं० माधव पुरोहित अथवा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र जी ने इन चार पंक्तियोंको लिख तो दिया है परन्तु इनका अर्थ नहीं किया है और न इनके विषयमें कुछ लिखा ही है। हां, आचार्य रङ्गनाथजी की संस्कृत टीकामें जिसका सम्पादन भी पं० बलदेव प्रसाद जी ने अपनी हिन्दी टीकाके साथ किया है इसकी चर्चा अच्छी तरह है जहाँ लिखा है—

१ श्लोक मध्य एकराशावित्यादि रवीन्दोरित्यन्त रासव इत्यन्त श्लोक द्वयं केनचिन्मन्दमतिना समयोऽसकृदेव साध्य इति शिष्य-धीवृद्धिद तन्त्रोक्तं सुबुद्धि मन्येनायुक्तमपि युक्तं मत्वानिक्षिप्तम्।

---

१. श्री सूर्यसिद्धान्त पृष्ठ १६७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस का छपा

स्वामी विज्ञानानन्द सम्पादित बंगलाके सूर्यसिद्धान्तमें ये दो श्लोक मूल संस्कृत श्लोकोंके साथ नहीं दिये गये हैं वरन् बङ्गलाकी टीकामें हैं और वहां बतलाया गया है कि ये प्रक्षिप्त क्यों हैं।

चन्द्रशेखर सिंह सामन्तके सिद्धान्त-दर्पणमें ३ रा श्लोक ज्यों का त्यों उद्धृत[1] किया गया है और चौथे श्लोकके पूर्वार्ध के अर्थको कई श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक लिखकर उत्तरार्ध भी दे दिया गया है। इसके उपरान्त यह श्लोक[2] लिखा गया है—

अत्रार्क साबनत्वं हि द्वयोस्तात्कालिकी कृतौ
तत्कृतौ केवलस्येन्दोः प्राणानामार्त्ता मता
सूर्यास्तकालिकौ तौ चेद्ग्राह्यौ ते चंद्रसावना ॥११॥

जिससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्रशेखरसिंह सामन्त ने सूर्यसिद्धान्तके प्रक्षिप्त कहे जाने वाले श्लोकोंके डेढ़ श्लोकों को बहुत आवश्यक समझा है। यथार्थ में यह है भी आवश्यक जैसा कि अभी दिखलाया जायगा। इसलिए मेरी समझमें इसको प्रक्षिप्त कह कर उड़ा देना और इसका अर्थ ही न करना उचित नहीं है क्योंकि यदि यह प्रक्षिप्त हो तो भी अनुचित नहीं है क्योंकि इसके अनुसार गणना न करनेसे तो चन्द्रमाके

---

१. देखो योगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त-दर्पण पृष्ठ १३३

२. " " " १३४, श्लोक १०, ११

अस्तकालमें १ घड़ी या २४ मिनट तक का अन्तर पड़ सकता है। आचार्य रङ्गनाथजीने अपनी टीका १५२५ शाके[१] में की थी इसलिए यह विवाद सवा तीन सौ वर्ष पहलेका है कि यह प्रक्षिप्त है या नहीं। मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि इन श्लोकों का क्या अर्थ है। श्लोक २ के पूर्वार्धमें तो संक्षेपमें उदयास्ताधिकारके ४थे और ५वें श्लोकोंमें बतलाये गये नियमकी ओर संकेत है जो बिलकुल ठीक है। उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा एकही राशिमें हों तो इन दोनोंके दृक्कर्म-संस्कृत-भोगांशोंके अन्तर को ही कालांश समझ कर जान लेना चाहिए कि सूर्यास्तके उपरांत कितने समय पर चन्द्रमाका अस्त होगा। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब चन्द्रमा सूर्यसे इतने थोड़े अन्तर पर रहता है कि ये दोनों एकही राशिमें हों तब इनके लग्नान्तरासुओंमें जो अन्तर होता है वह इनके भोगांशोंके अंतरसे बहुत भिन्न नहीं होता इसलिए सुगमताके लिए यह स्थूल नियम बतला दिया गया है।

इसके बाद श्लोक ३ में असकृत्कर्म (approximation) से चन्द्रमाका अस्तकाल सूक्ष्मतापूर्वक जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इसका कारण यह है कि २ रे श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार चन्द्रमाके अस्तकालका जो समय आता है वह ठीक नहीं होता क्योंकि चन्द्रमाकी गति बहुत तीव्र होती है इसलिए सूर्यके अस्तकालमें चन्द्रमाका जो भोगांश होता है

---

१. देखो वेंकटेश्वर प्रेसका सूर्यसिद्धान्त पृष्ठ २४९

उससे चन्द्रमाके अस्तकालका भोगांश कुछ बढ़ जाता है जिससे वह कुछ देरमें अस्त होता है। सूर्यसे चन्द्रमा जितना ही अधिक दूर रहता है उसीके अनुपातमें चन्द्रमाके अस्त होनेमें बिलम्ब लगता है। शुक्लपक्षकी त्रयोदशी या चतुर्दशीके दिन तो यह बिलम्ब २० मिनटके लगभग हो जाता है क्यों कि इस दिन सूर्यास्तसे १०, ११ घण्टेसे भी अधिक समयमें चन्द्रमाका अस्त होता है और इतने समयमें इसकी गति ५, ६ अंशके लगभग होती है जिससे इसके अस्त होनेमें २० से २४ मिनट तकका बिलम्ब हो सकता है। यही जाननेके लिए कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमामें ६ राशि जोड़नेसे जो लग्ना-न्तरासु आवे उसकी घटिका बनाकर अर्थात् असुओंको ६ से भाग देकर पल और पलोंको ६० से भाग देकर घड़ी बनाकर इसको सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियोंसे गुणा कर दे और गुणनफलको ६० से भाग दे दे तो यह मालूम हो जायगा कि लग्नान्तरासुओंमें सूर्य और चन्द्रमामें कितनी गति हुई। क्योंकि जब ६० घड़ीमें सूर्य और चन्द्रमाकी गति दैनिक गतिके समान होती है तो लग्नान्तरासुओंमें इसीके अनुपातसे होगी। यह गति जान लेनेपर इसे सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़कर और योगफलमें ६ राशि और जोड़कर इनके लग्नोंके अन्तरासु फिर निकाले। इस प्रकार २, ३ बार असकृत्कर्म करनेसे जब अन्तर स्थिर हो जाय तब सूर्यास्तसे उतने ही समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

यहां एक बात विचारणीय है। जब सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमा एक बार स्पष्ट कर लिये गये और पहली बार यह मालूम कर लिया गया कि सूर्यास्तकालसे इतने समय

उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होगा तब इसमें और चन्द्रमाके प्रत्यक्ष अस्तकालमें जो अन्तर पड़ेगा वह केवल चन्द्रमा की गतिके कारण होगा इसलिए असकृत्कर्मके लिए केवल चन्द्रमा की गतिको सूर्यास्तकालिक चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ना चाहिए न कि सूर्यकी गतिको भी परन्तु नियममें सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों को जोड़नेको कहा गया है। सूर्य की गति को भी जोड़नेसे जो समय आवेगा वह नाक्षत्र-काल नहीं होगा वरन् सावन काल होगा परन्तु पहला अन्तर नाक्षत्र कालमें आता है। इस लिए नाक्षत्रकाल और सावनकाल का योग नहीं हो सकता। इसलिए उचित यह है कि केवल चन्द्रमाकी गतिका असकृत्कर्म किया जाय। परन्तु सूर्यकी गति लेनेसे अधिकसे अधिक अन्तर २ मिनट का हो सकता है क्यों कि १२ घन्टेका नाक्षत्र काल १२ घण्टेके सावनकाल से केवल २ मिनट अधिक होता है। इसलिए इतनी भूलके लिए नियम को ही प्रक्षिप्त समझ कर निकाल देना बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।

कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका उदयकाल जानना—

भगणार्धं रवेर्दत्वा कार्यास्तद्विवरासवः।
तैःप्राणैः कृष्णपक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत् ॥५॥

अनुवाद—(५) सूर्यास्तकालिक सूर्यके भोगांशमें ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसके लग्नकाल और सूर्यास्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमाके लग्नकालके अन्तरासुओंसे असकृत्कर्मके द्वारा जो समय आता है सूर्यास्तसे उतने ही समय उपरान्त कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका पूर्व क्षितिजमें उदय होता है।

विज्ञान-भाष्य—कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका भोगांश सूर्यास्तकालिक सूर्यके भोगांशसे १८० अंशसे अधिक होता है इसलिए सूर्यास्तके उपरान्त पूर्व क्षितिजमें चन्द्रमाका उदय होता है। यह जानने के लिए सूर्यास्तकालके सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश जानकर केवल सूर्यके भोगांशमें ६ राशि जोड़ना चाहिए क्योंकि चन्द्रमाका उदय तो पूर्व क्षितिजमें होता ही है इस लिए केवल यह जानने की आवश्यकता है कि सूर्यास्तकालमें पूर्व क्षितिजमें कौन राशि लग्न है और इसके उपरान्त चन्द्रमा कितने समयमें लग्न होगा। इस क्रियासे जो समय आवेगा उस समय चन्द्रमाका उदय नहीं होगा क्योंकि इतने समयमें चन्द्रमा अपनी गतिसे और पूर्व हो जायगा। इससे कितना अन्तर पड़ जायगा यह जानने के लिए तीसरे श्लोकमें बतलाये गये नियमसे असकृत्कर्म करना होगा। यहां भी केवल चन्द्रमाकी गतिसे ही असकृत्कर्म करना चाहिए।

सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अन्तर जाननेकी रीति—

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषो दिक् साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥६॥
मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदार्कघ्नाक्षजीवायां शोध्या योज्या च दक्षिणा ॥७॥
शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहुः स्वदिङ्मुखः।
कोटिः शंकुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिर्भवेत् ॥८॥

अनुवाद—(६) सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्ति जानकर यदि इनकी दिशाएं एक हैं तो इनकी ज्याओंका

अन्तर करे और भिन्न हों तो योग करे। सूर्यसे चन्द्रमा जिस दिशामें हो वही दिशा इस अंतर या योगकी भी समझे अर्थात् यदि चन्द्रमा सूर्यसे दक्षिण हो तो अन्तर या योगकी दिशा दक्षिण समझे और उत्तर हो तो उत्तर समझे। (७) इस योग या अन्तरको चन्द्रमाके तात्कालिक छाया कर्णसे गुणा कर दे। यदि दिशा उत्तर हो तो इस गुणनफलको १२ और अक्षज्याके गुणनफलमें घटा दे और दक्षिण हो तो जोड़ दे। (८) इस शेष या योगफलको लम्बज्यासे भाग दे दे और लब्धिको इष्ट दिशाका भुज समझे। चन्द्रमाके शंकु अर्थात् नतांश-कोटिज्याको कोटि मानकर भुज और कोटिके वर्गोंके योगफलका वर्गमूल निकालनेसे जो आवे उसे कर्ण समझना चाहिए। यही कर्ण सूर्य और चन्द्रमाका सूत्रात्मक या रेखात्मक अंतर है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है :—

यदि सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिज्याओं का अंतर प मान लिया जाय तो ६ ठे श्लोक के अनुसार

प=चन्द्र कान्तिज्या ± सूर्य क्रान्तिज्या,

सातवें और आठवें श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार

$$\text{भुज} = \frac{\text{प} \times \text{चन्द्रछायाकर्ण} \pm \text{१२ अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

कोटि=चन्द्रमाका शंकु अर्थात् चन्द्रमाकी नतांशकोटिज्या

$$\therefore \text{कर्ण} = \sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$$

छठें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियोंके अन्तर या योगकी ज्याको लेकर ७वें श्लोकके अनुसार काम करना चाहिये परन्तु यह नियम तभी लागू हो

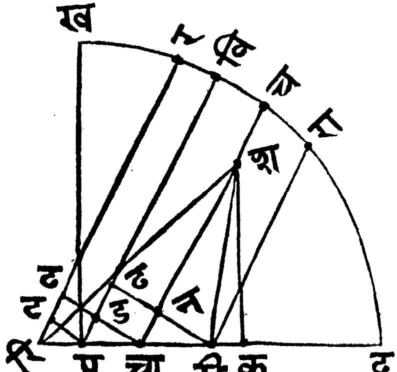
सकता है जब सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियां बहुत कम हों क्योंकि किसी कोण और उसकी ज्यामें अन्तर तभी बहुत कम होता है जब उस कोणका मान कम हो। इसलिये अनुवाद में क्रान्तियोंके योग या अन्तर की जगह क्रान्तिज्याओंका योग या अन्तर कहा गया है।

इसी तरह ७ वें श्लोकके पूर्वार्धमें 'मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण' कहा गया है जिसका अर्थ है मध्याह्नकालिक चन्द्रमा का छायाकर्ण, परन्तु यह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता इसलिए इसको सूर्यास्तकालिक अथवा जिस समय की शृङ्गोन्नति जाननी हो उस समय का चन्द्रमाका छायाकर्ण ही समझना उचित है। स्वामी विज्ञानानन्द जी तथा आचार्य रङ्गनाथ जी ने भी इसका अर्थ यही किया है और बतलाया है कि यदि एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकके समय को १ दिन माना जाय तो सूर्यास्तका समय मध्याह्न कहा जा सकता है। परन्तु मध्याह्नका शब्द यहां भ्रमात्मक है क्योंकि मध्याह्नका साधारण अर्थ १२ बजे दिन का ही लिया जाता है। इसलिए श्लोकमें मध्याह्न शब्द उचित नहीं है।

उपपत्ति—सूर्यास्तकालमें सूर्यसे चन्द्रमाका जो रेखात्मक अन्तर होता है उसीको यहां कर्ण कहा गया है और उसीको जाननेकी रीति बतलायी गयी है। सूर्यास्तकालमें चन्द्रमा आकाशमें जिस विन्दु पर हो उसका धरातलसे जो लम्बान्तर (perpendicular distance) होता है उसे ही यहां कोटि कहा गया है परन्तु यह भारतीय प्रथाके अनुसार उन्नतांशज्या अथवा नतांश-कोटिज्याके समान होता है और नतांश-कोटिज्या का दूसरा नाम शंकु भी है (देखो पृष्ठ ४१९) इसलिए

कोटिको शंकु कहा गया है। इसी कोटिके आधारबिंदुसे सूर्यका जो रेखात्मक अंतर धरातल पर होता है उसे ही भुज या बाहु कहा गया है जिसको जाननेकी रीति श्लोक ६, ७ और ८ के पूर्वार्ध में बतलायी गयी है।

यहां एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिए। इस नियम से तभी काम लिया जा सकता है जब सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमाको यामोत्तरवृत्तके तल (plane) में समझ लिया जाय अर्थात् चन्द्रमा द्रष्टासे जिस दिशामें हो उसे दक्षिण या उत्तर दिशा समझनी चाहिए और चन्द्रमाके भुज कोटि और कर्णको भी यामोत्तरवृत्तके तलमें समझना चाहिए। यह सब बातें* चित्र ११५ से अच्छी तरह समझ में आ जायगी।



चित्र ११५

*यह चित्र स्वामी विज्ञानानन्दके बङ्गला सूर्यसिद्धान्तसे लिया गया है।

प = क्षितिज का पश्चिम विन्दु

द = " का दक्षिण विन्दु

पद = पश्चिम विन्दुसे दक्षिण विन्दु तकका क्षितिज का चतुर्थांश

ख = खस्वस्तिक

र रि = सूर्यके अहोरात्र वृत्तका खंड जो याम्योत्तर वृत्त और पश्चिम क्षितिजके बीचमें है जब कि सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है।

रा री = सूर्यके अहोरात्रवृत्त का खंड जब क्रान्ति दक्षिण हो।

रि, री = पश्चिम क्षितिजके विन्दु जहां सूर्य अस्त होता है।

च चा = चन्द्रमाके अहोरात्र वृत्तका खंड जो याम्योत्तर वृत्त और पश्चिम क्षितिजके बीचमें है।

विप = विषुवद्वृत्त का चतुर्थांश जो याम्योत्तरवृत्त और क्षितिजके बीच है।

श = सूर्यास्तकालका चन्द्रमाका स्थान जब कि यह याम्योत्तरवृत्तसे पश्चिम होता है।

शक = चन्द्रमासे क्षितिज तल पर लम्ब या चंद्र-शंकु या कोटि।

शरि वा शरी = सूर्यसे चन्द्रमाका रेखात्मक अंतर या कर्ण।

करि या करी = भुज; पट और चाठ सूर्यके अहोरात्र वृत्त पर लम्ब हैं।

इस चित्रमें याम्योत्तर-वृत्तके तल खदप पर क्षितिजके ऊपर के खगोलका वह अंश दिखलाया गया है जो पश्चिम क्षितिज के सूर्यास्त विन्दुसे लेकर दक्षिण विन्दु तक फैला हुआ है। इसी लिए चन्द्रमाका स्थान श याम्योत्तर वृत्तसे पश्चिम होते हुए भी याम्योत्तर वृत्तपर ही जान पड़ता है और चन्द्रमाके शंकु, भुज, कर्ण याम्योत्तर-वृत्तके तल पर देख पड़ते हैं। सूर्य और चन्द्रमाके अहोरात्रवृत्त तथा विषुवद्वृत्तका चतुर्थांश भी याम्योत्तरवृत्त के ही तल पर दिखलाये गये हैं। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि पद क्षितिजके दक्षिणार्ध और याम्योत्तरवृत्त की छेद रेखा (projection) है र रि और च चा इष्ट कालके सूर्य और चन्द्रमाके अहोरात्रवृत्त हैं। ग गी भी सूर्यका अहोरात्रवृत्त है जब क्रान्ति दक्षिण होती है। इसलिए विर सूर्य की उत्तर क्रान्ति, विच चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति और त्रि ग सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति है। खवि इष्ट स्थानका अक्षांश और विद लम्बांश है। अहोरात्र वृत्तों और क्षितिजके बीचके कोण भी लम्बांशके समान हैं।

चित्रसे प्रकट है कि चन्द्रकर्ण $\text{शरि}^2 = \text{शक}^2 + \text{करि}^2$

इसमें शक इष्टकालिक चन्द्रमाका शंकु है जिसकी गणना चन्द्रमाके नतकालसे त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४२७ के सूत्र(क) अथवा पृष्ठ ४३१ के सूत्र (ग) के अनुसार सहज ही जाना जा सकता है और करि चंद्रमाका भुज है जिसको जाननेकी रीति ऊपरके ढाई श्लोकोंमें बतलायी गयी है।

करि=रिचा+चाक, जिसमें रिचा सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंके अन्तर पर आश्रित है और चाक चन्द्रमाके उन्नतांश पर।

समकोण त्रिभुज चाठरि में भारतीय रीतिके अनुसार,

$$\frac{\text{चाठ}}{\text{ज्या चारिठ}} = \frac{\text{चारि}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{चारि} = \frac{\text{चाठ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ज्या चारिठ}}$$

परन्तु चाठ = चाड + ड ठ = चन्द्रक्रान्तिज्या + सूर्यक्रान्ति-ज्या और ज्या चारिठ = लम्बज्या

$$\therefore \text{चारि} = \frac{(\text{चंद्रक्रान्तिज्या} + \text{सूर्यक्रान्तिज्या})\ \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी प्रकार समकोण त्रिभुज शकचा में

$$\frac{\text{चाक}}{\text{ज्या चाशक}} = \frac{\text{शक}}{\text{ज्या शचाक}}$$

परन्तु कोण शचाक = लम्बांश और कोण चाशक लम्बांश का पूरक है इसलिए यह अक्षांशके समान हुआ और शक चंद्रमाका शंकु है इस लिए,

$$\text{चाक} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

यहां चाक और चारि के मान कलाओं में है क्योंकि भारतीय रीतिसे ज्याके मान कलाओंमें होते हैं। परन्तु परिलेख के लिए नाप अंगुलोंमें की जाती है इसलिए इसको अंगुलोंमें बदलनेके लिए यह मान लेना होगा कि चन्द्रमाका शंकु शक १२ अंगुल है और इसका तात्कालिक अंगुलात्मक छायाकर्ण

त्रिज्या अर्थात् ३४३८ के समान है। यदि मान लिया जाय कि चारि और चाक के अंगुलात्मक मान क्रमानुसार त और थ हैं तो नीचे लिखे तीन अनुपात सिद्ध होते हैं—

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}=\frac{\text{शक}}{१२}=\frac{\text{चारि}}{\text{त}}=\frac{\text{चाक}}{\text{थ}}$$

$$\therefore \text{त}=\frac{१२\times\text{चारि}}{\text{शक}}=\frac{१२\times\text{चारि}\times\text{छायाकर्ण}}{१२\times\text{त्रिज्या}}$$

$$=\frac{१२\times(\text{चंद्रक्रांतिज्या}+\text{सूर्यक्रांतिज्या})\text{त्रिज्या}\times\text{छायाकर्ण}}{१२\times\text{त्रिज्या}\times\text{लम्बज्या}}$$

$$=\frac{\text{छायाकर्ण}\times(\text{चंद्रक्रांतिज्या}+\text{सूर्यक्रांतिज्या})}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी तरह $\text{थ}=\frac{१२\times\text{चाक}}{\text{शक}}=\frac{१२\times\text{शंकु}\times\text{अक्षज्या}}{\text{शक}\times\text{लम्बज्या}}$

$$=\frac{१२\,\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

क्योंकि शक और शंकु एक ही वस्तु है।

यहां चंद्रमा और सूर्यकी क्रांतिज्याएं जोड़ी गयी हैं क्योंकि इनकी क्रांतियोंकी दिशाएं भिन्न हैं। यदि दोनोंकी क्रांतियोंकी दिशा एक ही हो तो अंतर निकालना पड़ेगा जैसे यदि सूर्य रा पर हो तो अंतर निकालना पड़ेगा क्योंकि इस दशामें

$$\text{करी}=\text{चाक}-\text{चारी}$$

इस प्रकार ६—८ श्लोकों की उपपत्ति सिद्ध हुई।

चन्द्रबिम्बका शुक्ल भाग जाननेकी रीति—

सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः ।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभिः स्फुटम् ॥९॥

अनुवाद—चंद्रमाके भोगांशसे सूर्यका भोगांश घटानेसे जो आवे उसकी कला बनाकर ९०० से भाग देने पर जो आता है वह अंगुलोंमें चंद्रमाका शुक्ल भाग होता है। इसको चंद्रमाके तात्कालिक अङ्गुलात्मक बिम्बसे गुणा करके १२ से भाग देने पर स्फुट शुक्ल भागका मान अंगुलोंमें आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—पूर्ण चंद्रमाका मध्यम बिम्ब १२।अङ्गुलका माना गया है। जिस समय चंद्रमा पूर्ण होता है उस समय यह पूरा शुक्ल देख पड़ता है और जिस समय अमावस्या होती है उस समय चंद्रमाके शुक्ल भागका अभाव रहता है। जैसे जैसे चन्द्रमा सूर्यसे आगे बढ़ता है तैसे तैसे इसका शुक्ल भाग भी बढ़ता जाता है और अन्तमें पूर्णिमा कालमें इसका पूरा बिम्ब शुक्ल देख पड़ता है। ऐसी दशामें चन्द्रमाका सूर्यसे अन्तर १८० अंश या १८०×६०=१०८०० कला होता है इस लिए चंद्रमाके शुक्ल भागका परिमाण इस प्रकार हुआ कि जब सूर्यसे चन्द्रमा १०८०० कला आगे जाता है तब इसका शुक्ल भाग १२ अंगुलके समान होता है इस लिए जब किसी कालमें चन्द्रमा सूर्यसे अ कला आगे हो तब उसका शुक्ल

$$\text{भाग} = \frac{\text{अ} \times १२}{१०८००} = \frac{\text{अ}}{९००} \text{ अंगुल}$$

परन्तु यह मध्यम बिम्बमानसे लगाया गया है। स्पष्ट बिम्ब इससे भिन्न होता है जिसकी गणना चन्द्रग्रहणाधिकार (पृष्ठ ६८७-८६) के अनुसार करनी चाहिए। जब स्पष्ट बिम्ब-का मान अगुलोंमें आजाय तब फिर अनुपात करना चाहिए कि जब मध्यम बिम्ब १२ अङ्गुल का होता है तब इष्ट शुक्ल भागा $\frac{अ}{६००}$ अङ्गुल होता है, इसलिए जब स्पष्ट बिम्ब च है

$$\text{तब शुक्ल भाग} = \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{अ}{६००} \div १२$$

$$= \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{अ}{६००} \times \frac{१}{१२}$$

यह नियम स्थूल है क्योंकि चंद्रबिम्बके शुक्ल भाग की वृद्धि तिथि वृद्धिके अनुपातमें नहीं बढ़ती जैसा कि अभी प्रकट होगा। चंद्रमाके शुल्क भागकी नोकोंको शृङ्ग (cusp या horn) कहते हैं। दोनों शृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा चंद्रबिम्ब के उस वृत्तका व्यास है जो उसके प्रकाशित भागको अप्रकाशित भागसे अलग करता है। इसलिए यह चंद्र सूर्यके केन्द्रों को मिलानेवाली रेखासे समकोण पर होता है। यह उस वृत्तका भी ब्यास है जो चंद्रमाके द्रष्टाके सामने वाले भागको उसके दूसरी ओर वाले भागसे अलग करता है। इसलिए यह द्रष्टा और चन्द्रकेंद्रको मिलानेवाली रेखासे भी समकोण पर होता है। जब दोनों शृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा द्रष्टा और चंद्रकेन्द्र तथा सूर्य और चंद्र केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखाओंके समकोण पर होती है तब यह उस तल (plane)

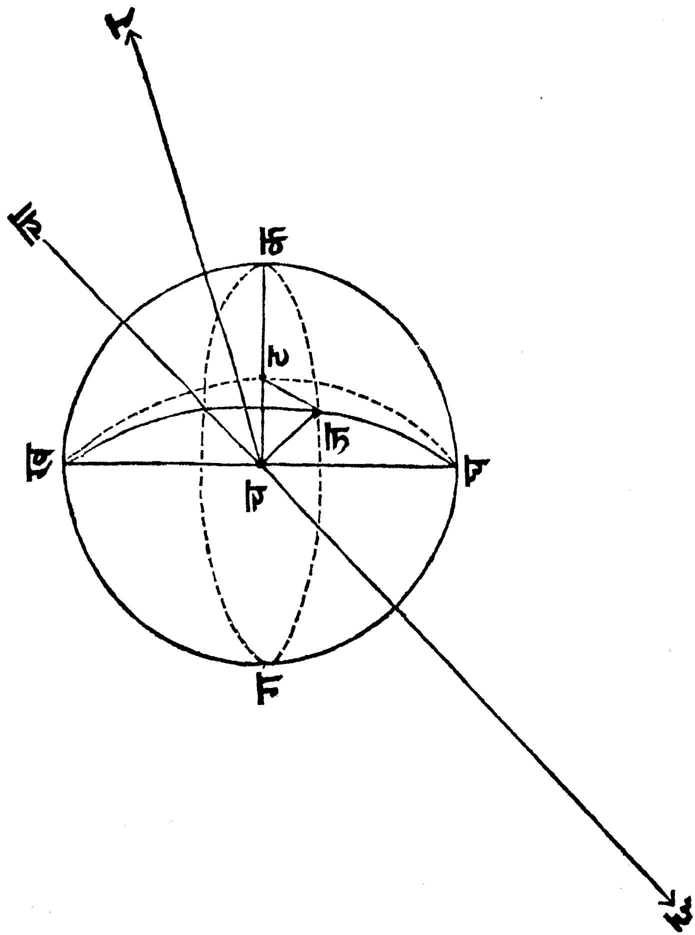
के भी समकोण पर होगी जो द्रष्टा चंद्रकेन्द्र और सूर्यकेन्द्र से होकर जाता है अर्थात् सूर्य और चंद्रकेन्द्रोंसे होकर जानेवाला महावृत्त (great circle) शृङ्गोंको मिलानेवाले व्यासको दो समान भागोंमें काटता है। यह महावृत्त क्षितिज-तलसे जो कोण बनाता है वह बहुत परिवर्त्तनशील है इसलिए चंद्रमाका शृङ्ग भिन्न भिन्न मासोंमें भिन्न भिन्न रीतिसे झुका रहता है अर्थात् कभी क्षितिज-तलके समानान्तर होता है और कभी लम्ब की दिशा में।

चद्रमाके दृश्य गोलार्धका शुक्ल भाग दो वृत्तार्धों के बीच में होता है जिनमेंसे एक वृत्तार्ध द्रष्टाके सामनेवाले चंद्रबिम्ब का होता है और दूसरा सूर्य के सामनेवाले चंद्रबिम्बका। द्रष्टाके सामनेवाले चंद्रबिम्बका वृत्तार्ध सूर्य की ओर किनारे पर होता है। परन्तु सूर्य के सामनेवाले चंद्रबिम्बका वृत्तार्ध भीतरकी ओर होता है और द्रष्टाको तिरछी (obliqvely) दिशामें देख पड़ता है इसलिए यह दीर्घ वृत्तार्धके आकारका देख पढ़ता है। क्योंकि किसी वृत्तका छेद (projection) तिरछी रेखामें देखने पर दीर्घ वृत्त (ellipse) होता है। इसकी जांच कोई मनुष्य एक गोल चूड़ी और दीपकसे सहज ही कर सकता है। चूड़ी लेकर दीवाल और दीपकके बीचमें इस प्रकार थामना चाहिए कि चूड़ीका तल दीवालके समानान्तर हो और दीपकका केन्द्र, चूड़ीका केन्द्र और दीवाल पर चूड़ी की छाया का केन्द्र समसूत्रमें दीवालके तलसे समकोण पर हो। ऐसी दशामें चूड़ी की छाया गोल होगी। यदि चूड़ी इसी जगह थामे हुए तिरछी कर दी जाय जिससे इसका तल दीवालसे

समानान्तर न रहे अथवा चूड़ीके तलको दीवालके समानान्तर रखते हुए चूड़ीको नीचे ले जांय या ऊपर उठा दें जिससे तीनोंके केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा दीवाल की लम्ब दिशामें न हो तब दीवाल पर चूड़ी की जो छाया पड़ेगी वह बिलकुल गोल न होगी वरन् दीर्घवृत्तके आकार की होगी। पहली दशामें छायाके दीर्घवृत्तका दीर्घअक्ष सम दिशा (horizontal) में होगा और दूसरी दशामें ऊर्ध्वाधर (vertical)। इसी प्रकार चंद्रबिम्बके शुक्ल भाग की भीतरी सीमा दीर्घवृत्तार्ध होती है जिसका दीर्घअक्ष चंद्रबिम्बके व्यासके समान होता है और लघुअक्ष सदैव परिवर्त्तनशील। अब यह बतलाया जायगा कि सूर्य और चंद्रमाके स्थानोंके अनुसार शुक्लभाग की वृद्धि या क्षीणता किस प्रकार होती है।

मान लो कि च चंद्रमाका केन्द्र, च द द्रष्टाकी दिशा, क ख ग घ चंद्रबिम्बका वह तल जो द्रष्टाकी दिशासे समकोण पर है, च र सूर्यकी दिशा और ख ज घ चद्रबिम्बका वह तल है जो च र दिशासे समकोण पर है। चंद्र-पृष्ठका जो खण्ड ख क घ और ख ज घ वृत्तार्धोंके बीच में है वही चन्द्रबिम्बका शुक्ल भाग है जो द्रष्टाको देख पड़ता है। परन्तु ख ज घ वृत्तार्धको द्रष्टा तिरछा देखता है इसलिए यह क ख ग घ तल पर प्रलम्बित (projected) होकर दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ के रूपमें देख पड़ता है। यही दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ चंद्र बिम्बके शुक्ल भागकी

चित्र ११६ Hugh Godfray M. A. की A Treatise on Astronomy से लिया गया है।



चित्र ११६

भीतरी सीमा है। यहां च ज चंद्रगोलकी त्रिज्या है इसलिए च क के समान है और च ट च ज का छेद्य है इसलिए

च ट=च ज कोज्या ज च ट

=च क कोज्या र च चा

क्योंकि कोण ज च ट चंद्रमा के उन तलोंके बीचका कोण है जो द्रष्टा और सूर्यकी दिशाओंसे समकोण पर हैं इस लिये यह द्रष्टाकी दिशा द च चा और सूर्यकी दिशा च र के बीचके कोण र च चा के समान है। इसलिए

ट क=च क—च ट

=च क—च क कोज्या र च चा

=च क (१—कोज्या र च चा)

=च क उत्क्रमज्या र च चा

कोण र च चा का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि त्रिभुज द च र का यह वहिः कोण है और इसके तीन भुज द च, च र और द र क्रमानुसार द्रष्टासे चंद्रमा, चंद्रमासे सूर्य और द्रष्टासे सूर्यकी दूरियां है जो ज्ञात हो सकती हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि शुक्ल भागका मान तिथि-वृद्धि के अनुपातके अनुसार नहीं बढ़ता जैसा कि ६ वें श्लोकमें बतलाया गया है। क्योंकि किसी कोणकी उत्क्रमज्याका मान उस कोणकी वृद्धिके अनुपातसे नहीं बढ़ता, जैसे यदि कोण दूना हो जाय तो उसकी उत्क्रमज्या भी दूनी नहीं हो जाती (देखो पृष्ठ १७८)।

शृङ्गोन्नति जाननेका परिलेख—

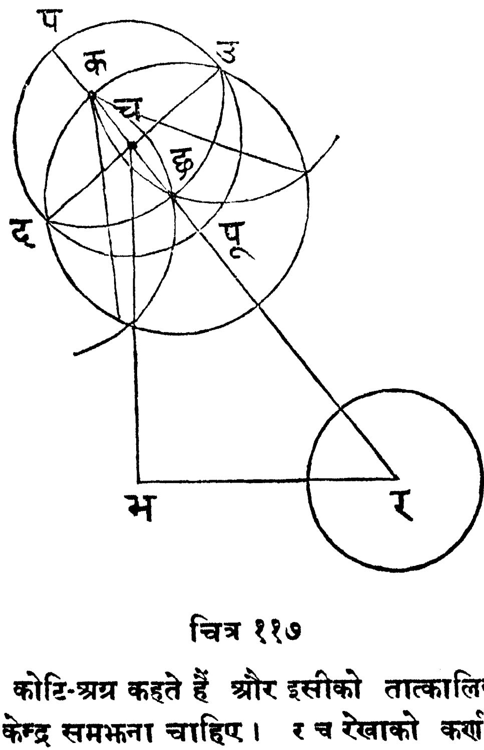
दत्त्वार्कसंज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम् ।
ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यगम् ॥१०॥
कोटिकर्णयुताद्विन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत् ।
कर्णसूत्रेण दिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत् ॥११॥
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्बयोगादन्तर्मुखं नयेत् ।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥१२॥
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद्विन्दुं त्रिस्पृग् लिखेद्धनुः ।
प्राग्बिम्बं यादृगेव स्यात्तादृक तत्र दिने शशी ॥१३॥
कोट्या दिक्साधनात्तिर्यक् सूत्रान्ते शृङ्गमुन्नतम् ।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साकृतिः ॥१४॥
कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथासितम् ।
दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमं मण्डलं विधोः ॥१५॥

अनुवाद—(१०) समतल भूमिमें सूर्यको सूचित करनेवाला विन्दु लिखकर इससे भुजकी दिशामें भुजके समान रेखा खींचकर इसके अग्र विन्दुसे पच्छिमकी ओर १२ अंगुल की कोटि रेखा खींचे और इस कोटि रेखाके अग्रविन्दुको सूर्यको सूचित करनेवाले विन्दुसे मिलाकर कर्ण खींचे। (११) कोटि और कर्णके संपात-विन्दुको केन्द्र मान कर तात्कालिक चंद्रबिम्बके समान एक वृत्त बनावे। पहले इसकी परिधिपर कर्ण रेखाके आधारपर दिशाओंके चिह्न बनावे। (१२) कर्ण रेखा और चन्द्रबिम्बके सम्पात विन्दुसे केन्द्रकी

ओर कर्ण-रेखापर चन्द्रमाके शुक्ल भागका चिह्न बनावे। इस चिह्न और चन्द्रबिम्ब के उत्तर दक्षिण विन्दुओंसे दो मत्स्य बनावे। (१३) इन मत्स्योंके मध्यसे जाने वाली रेखाओं-के सम्पात विन्दुको केन्द्र मानकर एक धनु खींचे जो तीनों विन्दुओंको अर्थात् शुक्लाग्र विन्दु और उत्तर दक्षिण विन्दुओं-को स्पर्श करे। इस धनु और चन्द्रबिम्बके पूर्व भागके बीच-में जैसा चित्र होता है वैसा ही चन्द्रमा उस दिन देख पड़ता है। (१४) अब कोटिके आधारपर चन्द्रबिम्बकी परिधि पर दिशाओंके चिह्न बनावे। कोटि रेखासे समकोण बनानेवाली और चन्द्रबिम्बके केन्द्र से जानेवाली रेखाके ऊपर शुक्ल भाग-का जो शृङ्ग रहेगा वही उन्नत देख पड़ेगा और आकाशमें चन्द्रमाकी आकृति वैसी ही देख पड़ेगी। (१५) कृष्णपक्षमें सूर्यकी राशिमें ६ राशि जोड़नेसे जो आवे उसे चन्द्रमाके भोगांशसे घटाकर चन्द्रबिम्बके असित अर्थात् अप्रकाशित भागका साधन उसी प्रकार करना चाहिए। यहां भुजकी दिशा उलटी होती है और चन्द्रबिम्बके पच्छिम भागमें काले भागकी वृद्धि होती है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि चन्द्रमाके शुक्ल भागका परिलेख किस प्रकार बनाया जाता है। मान लो काग़ज़का पृष्ठ समतल भूमि या पट्टी है जिस पर परिलेख बनाना है और र विन्दु रविका स्थान है (देखो चित्र ११७)। यदि ६-८ श्लोकोंके अनुसार जाने हुए भुज-का मान र भ के समान हो और इसकी दिशा दक्षिण हो तो र विन्दुसे दक्षिणकी ओर, और उत्तर हो तो उत्तरकी ओर र भ के समान एक रेखा खींचो जिसका भ सिरा भुज-अग्र कहा जा

सकता है। इस भुज-अग्रसे पच्छिमकी ओर कोटिके समान अर्थात् १२ अंगुल के समान एक रेखा च तक खींचो। इस च



चित्र ११७

विन्दुको कोटि-अग्र कहते हैं और इसीको तात्कालिक चन्द्र-बिम्बका केन्द्र समझना चाहिए। र च रेखाको कर्ण कहते हैं जिसकी चर्चा ८वें श्लोकमें की गयी है। च को केन्द्र मानकर तात्कालिक चन्द्रबिम्बके व्यासार्ध च पू पर एक वृत्त खींचो जो परिलेखमें चन्द्रबिम्ब सूचित करता है। कर्ण-रेखाको इतना बढ़ाओ कि वह चन्द्रबिम्बके दूसरी ओर प तक पहुंच

जाय। च विन्दुसे जाती हुई एक लम्ब रेखा प पू पर खींचो जो चन्द्रबिम्बके उ, द विन्दुओं पर पहुँचे। इन उ, पू, द, प विन्दुओंको चन्द्रबिम्बकी क्रमानुसार उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पच्छिम दिशाएं समझो। ९वें श्लोकके अनुसार आये हुए चन्द्रमाके शुक्ल भागका जो परिमाण हो पू से उतनी ही दूरी पर च की ओर एक विन्दु छ रखो। उ छ द विन्दुओंसे होता हुआ जो धनु खींचा जायगा वही चन्द्रमाके शुक्ल भागका भीतरी किनारा है और उस दिन चन्द्रमाके शुक्ल भागकी वही आकृति होगी जो उ छ द और उ पू द धनुओंके बीचमें है। उ छ द धनु खींचनेके लिए यह रीति बतलायी गयी है कि उ को केन्द्र मानकर छ पर धनु खींचो और छ को केन्द्र मानकर उ पर धनु खींचो; इन दोनों धनुओंके योग-विन्दुओंको मिलानेवाली रेखा खींचो। इसी प्रकार द और छ विन्दुओं पर भी धनु खींच कर उनके योग-विन्दुओंको मिलानेवाली रेखा खींचो। यह दोनों रेखाएं जहां चन्द्रबिम्बके भीतर काटें उसको केन्द्र मानकर छ बिन्दु पर जो धनु खींचा जायगा वह उ छ द विन्दुओंको स्पर्श करेगा और वही चन्द्रमाके शुक्ल भागका भीतरी किनारा होगा।

उ, छ, द, बिन्दुओंपर जानेवाले वृत्तका केन्द्र जाननेकी रीति रेखागणितकी रीतिसे मिलती जुलती है। क्योंकि धनुओंके योग बिन्दुओंको मिलानेवाली रेखाएं उ छ और द छ रेखाओंकी समविभाजक लम्ब रेखाएं हैं जिनका सम्पात् बिन्दु उ छ द वृत्तका केन्द्र है। चित्रमें क विन्दु इसी रीतिसे स्थिर किया गया है। अब क को केन्द्र मानकर क छ त्रिज्या से उ छ द धनु खींचा गया और उ छ द पू क्षेत्रकी आकृति जानी गयी जो

चन्द्रमाके शुक्ल भागकी आकृति है जिसमें उ द चन्द्रमाके शृङ्ग हैं।

यह जाननेके लिए कि कौन शृङ्ग उन्नत अर्थात् उठा हुआ है चन्द्र-बिम्बकी दिशाओंमें दूसरी कल्पना करनेको १४वें श्लोकमें कहा गया है। परन्तु मेरी समझमें इसकी आवश्यकता नहीं है। कोटि-अग्र च से भुज भ र के समानान्तर एक रेखा खींचो। जो शृङ्ग इस रेखाके ऊपर होता है वही उन्नत कहा जाता है। दिये हुए चित्रमें उत्तर शृङ्ग उन्नत है।

चित्रसे स्पष्ट है कि यदि भुजकी दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रमाका उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और भुजकी दिशा उत्तर हो तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत होगा। परन्तु यदि भुज शून्य हो अर्थात् न उत्तर हो, न दक्षिण, तो चन्द्रमाका कोई शृङ्ग उन्नत न होगा वरन् सम होगा।

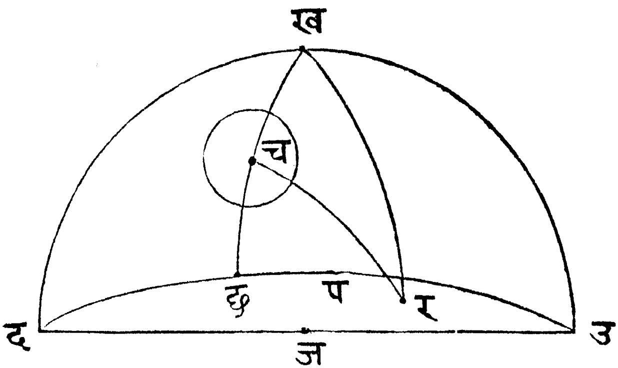
यह बतलाया जा चुका है कि शुक्ल भागकी वृद्धि जानने की जो रीति दी गयी है वह स्थूल है और उ छ द धनु भी वृत्तकी परिधिका अंश नहीं है वरन् दीर्घवृत्तकी परिधिका अंश है। इसलिए परिलेखकी यह रीति स्थूल है परन्तु काम चलानेके लिए पर्याप्त है।

कृष्ण पक्षके लिए नियममें जो संशोधन किया गया है उससे चन्द्रमाके असित भागका ज्ञान होता है। परन्तु मेरी समझमें यदि सूर्योदय कालिक सूर्यकी राशिसे चन्द्रमा की राशि घटाकर शुक्ल भागकी गणनाकी जाय और परिलेख बनाया जाय तो अधिक अच्छा है।

अब संक्षेपमें यह बतला देना उचित होगा कि शुद्ध गणितकी रीतिसे शृङ्गोन्नतिकी गणना कैसेकी जाती है :—

शृङ्गोन्नतिकी गणनाकी नवीन रीति—

सूर्य और चन्द्र बिम्बोंके केन्द्रोंसे जानेवाले महावृत्तसे चन्द्रशृङ्गोंको मिलानेवाली रेखा समकोण बनाती है। खमध्य और चन्द्र बिम्बके केन्द्रसे जानेवाला महावृत्त अर्थात् दृङ्मण्डल पहले महावृत्तसे जो कोण बनाता है वही शृङ्गोन्नति के कोणके समान होता है इस लिए शृङ्गोन्नति जाननेके लिए इसी कोणके जाननेकी आवश्यकता होती है जो गोलीय त्रिकोणमितिके एक सूत्रके अनुसार जिसकी चर्चा



चित्र ११८

उ ख द = यामोत्तर वृत्त

ख = खमध्य

ज = देखनेवाले का स्थान

उ ज द = उत्तर-दक्षिण रेखा

उ प द = पश्चिम क्षितिज

च = पश्चिम गोल में चन्द्रमा का स्थान

र = अस्त हुए सूर्य का स्थान

ख च = चन्द्रमा का नतांश

ख र = सूर्य का नतांश

च र = सूर्य और चन्द्रमा के बीच का अन्तर

∠र ख च = सूर्य और चन्द्रमा के दिगंशोंका अन्तर

त्रिप्रश्नाधिकारमें कई स्थानोंपर की गयी है सहज ही मालूम हो सकता है। यदि सूर्य और चन्द्रमाके विषुवांश और क्रांति मालूम हों तो विषुवांशसे विषुवकाल और नतकाल जाने जा सकते हैं और नतकाल, क्रान्ति तथा अक्षांशसे पृष्ठ ४२६ के सूत्र (१) से नतांश और इससे पृष्ठ ४०४ में दिये हुए सूत्रसे दिगंश जाने जा सकते हैं। चित्र ११८ से विदित होता है कि इनके आधार पर शृङ्गोन्नति कैसे जानी-जा सकती है :—

गोलीय त्रिकोण मितिके सूत्रके अनुसार,

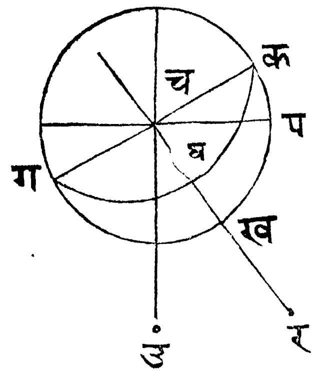
$$\text{कोज्या च र} = \text{कोज्या ख र} \times \text{कोज्या ख च} + \text{ज्या ख र} \times \text{ज्या ख च} \times \text{कोज्या } \angle \text{र ख च}$$

इस सूत्रसे जब च र आ जाय तब,

$$\text{कोज्या } \angle \text{ख च र} = \frac{\text{कोज्या खर} - \text{कोज्या ख च} \times \text{कोज्या च र}}{\text{ज्या ख च} \times \text{ज्या च र}}$$

कोण ख च र को १८० अंशसे घटानेपर जो कोण आवेगा वही शृङ्गोन्नतिका कोण होगा क्योंकि यह ∠ छ च र के समान है। यदि चन्द्रमासे सूर्य उत्तर होगा तो उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और दक्षिण होगा तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत रहेगा। यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके दिगंश एक होंगे तो शृङ्ग सम

होगा। इतना जान लेनेपर चन्द्रमाके शृङ्गोन्नतिका परिलेख इस प्रकार खींचना चाहिए जैसा चित्र ११६ से प्रकट होता है।



चित्र ११६

च = चन्द्र बिम्ब का केन्द्र

उ च = चन्द्र केन्द्रका ऊर्ध्व वृत्त (दृङ्मण्डल)

र च = सूर्य की दिशा

क ख ग घ = चन्द्रमाका शुक्ल भाग

∠उ च र = शृङ्गोन्नति का कोण = ∠क च प

यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करनेसे शृङ्गोन्नतिकी गणना ठीक नहीं हो सकती क्योंकि सूर्य-सिद्धान्तके ध्रुवाङ्कोंमें कुछ स्थूलता आ गयी है। इसलिए उचित है कि ग्रहोंके ध्रुवाङ्क शुद्ध वेध द्वारा फिर से स्थिर किये जायं।

इस प्रकार शृङ्गोन्नत्यधिकार नामक दसवें अध्यायका विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

पाताधिकार नामक ग्यारहवां अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक १-२—वैधृति और व्यतीपात पातोंकी परिभाषा। श्लोक ३-५—दोनों पातोंका स्वरूप और प्रभाव। श्लोक ६ सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करे। श्लोक ७-८—यह जानना कि पातकाल बीत चुका है अथवा होनेवाला है। श्लोक ९-११—सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां कब सामान होती हैं। श्लोक १२-१३—स्पष्ट क्रान्तिसे शुद्ध पातकाल जानना। श्लोक १४-१५—पातकाल का आरम्भ, मध्य और अंत कब होता है। श्लोक १६-१८—पातकालमें क्या करना चाहिये। श्लोक १९—पात दो बार कब होते हैं, और अभाव कब होता है। श्लोक २०—पंचांग संबंधी व्यतीपात योग जानना। श्लोक २१—भसंधि और गंडांत काल की परिभाषा। श्लोक २२—पात और गंडांतकाल किस लिए निषिद्ध हैं। श्लोक २३—उपसंहार।

इस अधिकारमें गणित ज्योतिष के साथ साथ फलित ज्योतिष का भी समावेश है। यही इसकी विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसके बाद जो तीन अध्याय आवेंगे उनका नाम 'अधिकार' नहीं है वरन् 'अध्याय' है। इस अधिकार में जिन पातों की चर्चा है उनको महापात भी कहते हैं।

वैधृति और व्यतीपात की परिभाषा—

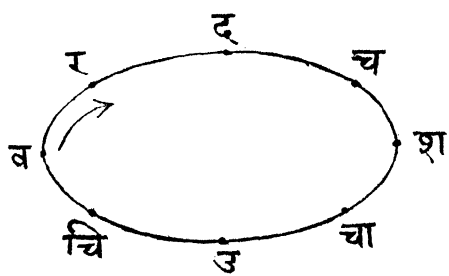
एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥१॥

विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समास्तद्वा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतिः ॥२॥

अनुवाद-(१) जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में होते हैं और जब इनके भोगांशोंका योग १२ राशिके समान होता है तब दोनोंकी क्रान्तियां समान होनेसे वैधृति नामक पात होता है। (२) जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनोंमें होते हैं और जब इनके भोगांशोंका योग ६ राशि के समान होता है तब इनकी क्रान्तियां समान होनेसे व्यतीपात नामक पात होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियां समान होती हैं तभी वैधृति और व्यतीपात नामक पात होते हैं अर्थात् जब विषुद्वृत्त से सूर्य और चन्द्रमाकी दूरियां समान होती हैं तभी वैधृत और व्यतीपात होते हैं। परंतु सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां समान होते हुए भी दोनों उत्तर हो सकती हैं या दोनों दक्षिण; अथवा एक उत्तर और दूसरी दक्षिण। अब यह देखना है कि यह दशा कब होती है। जब सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है तब इसकी क्रान्ति शून्य होती है। यह घटना वर्षमें दो बार होती है—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तिके दिन। सायन मेषसे सायन कर्क तक सूर्यकी उत्तर क्रान्ति शून्यसे बढ़ते बढ़ते आजकल २३ अंश २७ कला तक हो जाती है। सायन कर्क से घटने लगती है और सायन तुला तक घट कर शून्य फिर हो जाती है। सायन तुलासे क्रान्ति दक्षिण हो कर सायन मकर तक बढ़कर २३ अंश २७ कला हो जाती है। सायन मकरसे सायन मेषतक घटते घटते शून्य हो जाती है। जब सूर्य सायन

मकरसे आगे बढ़ता है तब यह उदय या अस्त होनेके समय क्षितिज पर उत्तरको ओर खसकता हुआ देख पड़ता है और यह गति सायनकर्क तक देखी जाती है इसी लिए सायन मकर संक्रान्तिसे सायनकर्क संक्रान्ति तकके समयको उत्तरायण कहते हैं। परन्तु सायनकर्क संक्रान्तिके उपरान्त सूर्य क्षितिजपर दक्षिण की ओर खसकता हुआ देख पड़ता है इसी लिए सायनकर्क संक्रान्तिसे सायन मकर संक्रान्ति तकके समयको दक्षिणायन कहते हैं। चन्द्रमा भी सूर्यको तरह अपने लगभग एक मास के चक्करमें आधे मास तक उत्तरायण और आधे मास तक दक्षिणायन रहता है परन्तु इसकी कक्षा क्रान्तिवृत्तसे कुछ भिन्न होनेके कारण तथा इसकी कक्षा और क्रान्तिवृत्तके सम्पात स्थानों राहु और केतुसे स्वयम् वक्री होनेके कारण इसके उत्तरायण और दक्षिणायनका समय स्थिर करना कुछ कठिन है। परन्तु मोटे हिसाबसे यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं है कि जब चन्द्रमा सायन मकर राशिके निकट आता है तब यह उत्तरायण होता है और जब सायनकर्क राशिके निकट आता



चित्र १२०

है तब दक्षिणायन होता है क्योंकि चन्द्र-कक्षा और क्रान्तिवृत्त-के बीचका कोण अर्थात् चन्द्रमाका परमशर केवल ५°९′ के लगभग है। दिये हुए चित्र १२० से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मान लो दिया हुआ दीर्घवृत्त क्रान्तिवृत्त है और इसके व और श विन्दु क्रमसे वसन्त और शरद सम्पात हैं जहाँ विषुवद्वृत्त क्रान्तिवृत्तसे मिलता है। सरलताके लिए विषुवद् वृत्त नहीं दिखलाया गया है। यदि मान लिया जाय कि चन्द्रमाकी कक्षा क्रान्तिवृत्त ही है तो यह स्पष्ट है कि जब सूर्य और चन्द्रमा व और श विन्दुओंसे समान दूरी पर होंगे तभी दोनोंकी क्रान्तियां समान होंगी। अब देखना है कि चन्द्रमा के एक फेरेमें यह घटना कितनी बार हो सकती है। मान लो र सूर्य का स्थान वसंत-सम्पात व और दक्षिणा-यन विन्दु द के बीचमें किसी जगह है। जब चन्द्रमा भी र पर रहेगा अर्थात् अमावास्याके दिन, तब दोनोंकी क्रान्तियां एक ही रहेंगी। जब चन्द्रमा च, चा और चि पर रहेगा तब भी दोनोंकी क्रान्ति समान रहेंगी यदि वर=चश=शचा=चिव। परन्तु जब चन्द्रमा चा विन्दु पर रहेगा तब पूर्णिमा होगी। सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार पातकालिक क्रान्तिसाम्यके लिए अमावस्या और पूर्णिमाके दिनका विचार नहीं किया जाता इसलिए जब चन्द्रमा च और चि पर रहेगा तभी क्रान्ति साम्यका योग आवेगा।

पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका योग ३६० अंश हो तब वैधृति नामक

पात होता है। यह दशा तभी हो सकती है जब सूर्य र, च, चा या चि पर हो तो चन्द्रमा क्रमसे चि, चा, च या र पर हो क्योंकि तभी वसंत सम्पात व से सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों-का योग ३६० अंश हो सकता है। चित्रसे स्पष्ट है कि र और चि स्थान उत्तरायण विन्दु उ, वसंत सम्पात व और दक्षिणायन बिन्दु द के बीच में है इस लिए र और चि दोनों उत्तरायण हैं। इसी प्रकार च, चा दोनों दक्षिणायन हैं। इसी लिए १ले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयनमें हों और दोनों के (सायन) भोगांशोंका योग ३६० अंश हो तभी वैधृति पात होता है। इसके प्रतिकूल जब दोनों भिन्न अयनमें हों और भोगांशोंका योग १८० अंश हो तब व्यतीपात होता है। चित्रमें यदि सूर्य और चन्द्रमा र, च पर हों तो दोनोंके भोगांशोंका योग १८०° होगा और चा, चि पर हों तो भी दोनों के भोगांशों का योग ३६० + १८० अंश अथवा १८० अंश होगा। परन्तु र और च अथवा चा और चि स्थान भिन्न अयनोंमें है, इस लिए व्यतीतपात नामक क्रान्तिसाम्य योग तभी होता है जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनोंमें हों और सूर्य वसंत-सम्पातसे जितना आगे या पीछे हो उतना ही चन्द्रमा शरद सम्पात से पीछे या आगे हो।

दोनों पातोंका स्वरूप और स्वभाव—

तुल्यांशुजालसम्पर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतः* ।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥ २ ॥

---

*वेंकटेश्वर प्रेसवाले और बंगला संस्करणमें प्रवहावृतः पाठ है।

विनाशयति पातोऽस्मिल्लोकानामसकृद्यतः ।
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतिः ॥४॥
सकृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः ।
सर्व्वानिष्टकरो रौद्रो भूयोभूयः प्रजायते ॥५॥

अनुवाद—(३) क्रान्ति-साम्य-कालिक सूर्य और चन्द्रमाकी समान किरणोंके मिलनेसे और उनकी दृष्टि रूपी क्रोधसे उत्पन्न अग्नि प्रवह वायु से प्रज्वलित होकर संसारके लिए अशुभ फल उत्पन्न करती है। (४) जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियां समान होती हैं तब यह पात संसार को बारंबार नाश करता है। इसे व्यतीपात और वैधृति कहते हैं। (५) यह पात रंग में काला, कठिन शरीरवाला, लाल नेत्रवाला, बड़ा पेटवाला, सबका अशुभ करने वाला और भयंकर है और बार बार उत्पन्न होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकोंमें दोनों पातोंका बड़ा भयंकर चित्र खींचा गया है परंतु तो भी काशीके अच्छे अच्छे पंचांगोंमें भी इनकी चर्चा बहुत कम रहती है। बम्बई प्रान्तके भी पंचांगोंमें इनकी चर्चा नहीं देख पड़ती। हां, गुजरातीके 'प्रत्यक्ष पंचांग' में इसका विचार अवश्य रहता है। इससे जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धांत के इन महापातोंका विचार फलित ज्योतिषी लोग बहुत कम करते हैं।

व्यतीपात और वैधृति नाम के योग भी होते हैं। पहले की क्रम संख्या १७ और दूसरे की २७ है। व्यतीपात नामक योगका सम्बन्ध व्यतीपात नामक पातसे कुछ भी नहीं है परन्तु वैधृत योगका सम्बन्ध इस नामके पातसे उस समय

अवश्य रहा होगा जब वसंत-सम्पात अश्विनी नक्षत्रके आदि स्थान में था।

सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करनी चाहिए—

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधिसंस्थयोः।

दृक्तुल्यसाधितांशादि युक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥६॥

अनुवाद—(६) त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीतिसे छाया सूर्य का भोगांश जानकर इससे स्पष्टाधिकारकी रीतिसे जाने हुए स्पष्ट सूर्यको घटाकर अयनांश निकाले और यह अयनांश स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों में जोड़े। अयनांश-संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् सायन सूर्य और सायन चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ जब १२ राशि या ६ राशि हो तब इन दोनों की स्पष्ट क्रान्ति निश्चय करनी चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—यह जानने के लिए कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब समान होती है, सायन सूर्य और सायन चन्द्रमाके भोगांश जानने की आवश्यकता है इसी लिए स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमामें अयनांश जोड़ने की विधि बतलायी गयी है। इस रीतिसे क्रान्ति-साम्य का जो समय आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्तसे भिन्न है। इस विषयकी और बातें चित्र १२० के साथ ही बतला दी गयी हैं।

यह जानना कि पात-काल बीत गया है या आनेवाला है—

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ।

यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥७॥

ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुध्यति ॥८॥

अनुवाद—(७) सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानने के बाद यह देखना चाहिये कि चन्द्रमा वसंत-संपातसे विषम पदमें है या सम पदमें। यदि चंद्रमा विषम पदमें हो और इसकी विक्षेप-संस्कृत क्रान्ति अर्थात् स्पष्ट क्रान्ति सूर्यकी स्पष्ट क्रान्तिसे अधिक हो तो समझना चाहिये कि पातकाल बीत गया है, (८) और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि पातकाल आनेवाला है। परन्तु यदि चंद्रमा समपदमें हो तो इसका उलटा समझना चाहिये अर्थात् समपदमें चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्तिसे अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल आनेवाला है और कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल बीत गया है। यदि चंद्रमाके विक्षेप या शरसे इसकी क्रान्ति कम हो और घटाना पड़े तो ऊपरके नियममें विषमपदके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह समपदके बारेमें समझना चाहिये और समपदके बारेमें जो कहा गया है वह विषमपदके बारेमें समझना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—ओज और युग्मपद अथवा विषम और समपद की चर्चा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १८६—८७ में अच्छी तरह हुई है। यहां वसंत-संपात बिन्दुसे सायनकर्क बिन्दु या दक्षिणायन बिन्दु तक प्रथम पद, दक्षिणायन बिन्दुसे शरद सम्पात बिन्दु तक द्वितीय पद, शरद सम्पातसे सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु तक तृतीय पद और उत्तरायण बिन्दुसे वसंत सम्पात तक चतुर्थ पद है। प्रथम और तृतीय पदों को

विषम या ओज पद और द्वितीय तथा चतुर्थ पद को सम पद या युग्म पद कहा गया है।

चित्र १२० से स्पष्ट है कि जब चन्द्रमा विषमपद अर्थात् व द या श उ में कहीं रहेगा तब व्यतीपात या वैधृति के लिए सूर्यको क्रमानुसार द श या उ व में होना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि सूर्य या चन्द्रमाकी क्रान्ति विषम पदमें बढ़ती रहती है और समपदमें घटती रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषम पदमें और सूर्य सम पदमें होता है तब चन्द्रमाकी क्रान्ति बढ़ती रहती है और सूर्यकी घटती रहती है। इसलिए ६ठें श्लोकसे पातकालका जो स्थूल समय निकाला जाता है उस समय यदि चन्द्रमाकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिसे अधिक है तो चन्द्रमाकी क्रान्ति और बढ़ती जायगी और सूर्यकी क्रान्ति घटती जायगी। इसलिए दोनोंकी क्रान्ति इस समयसे पहले ही समान हो चुकी है और पातकाल बीत गया है। इसके विरुद्ध यदि चन्द्रमाकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिसे कम हो तो चंद्रमाकी क्रान्ति बढ़ती रहनेके कारण वह समय आनेवाला है जब दोनोंकी क्रान्ति समान होगी और तभी पातकाल होगा। इसी तरह जब चंद्रमा समपदोंमें होगा तब सूर्य विषम पदोंमें होगा। ऐसी दशामें चंद्रमाकी क्रान्ति घटती और सूर्यकी बढ़ती रहेगी। इसलिए यदि चन्द्रक्रान्ति अधिक है तो घटते घटते सूर्यकी क्रान्तिके बराबर हो जायगी और पातकाल श्लोक ६ से निकाले हुए समयके बाद आवेगा। परन्तु यदि चन्द्र-क्रान्ति कम हो तो पातकाल बीता हुआ समझना चाहिए।

८वें श्लोकके उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि यदि विक्षेपसे मध्यक्रान्ति घटाकर स्पष्ट क्रांति आती हो तो ऊपर

बतलाए हुए नियमसे भिन्न नियम काममें लाना होगा क्योंकि यदि मध्य क्रांति और शरकी दिशा भिन्न है तो सीधे ही यह नहीं बतलाया जा सकता कि चंद्रक्रांति बढ़ रही है या घट रही है। ऐसी दशामें १ दिन आगे और पीछेकी क्रांति जानने से ही काम चलेगा।

असकृत्कर्मसे तुल्य क्रांतियोंका स्थान निश्चय करना—

क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते ।
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥ ९ ॥
शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगति ताडितम् ।
चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥१०॥
तद्वच्छशाङ्क पातस्य फलं देयं विपर्ययात् ।
कर्मैतदसकृत्तावद्यावत्क्रान्ती समे तयोः ॥ ११ ॥

अनुवाद—(९) सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिज्याको त्रिज्यासे गुणा करके परम क्रान्तिज्यासे भाग देना चाहिये। लब्धियोंके धनु बनाकर उनका अन्तर निकाले। इस अन्तरको या इसके आधेको चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ दे यदि पातकाल आनेवाला हो और (१०) यदि पातकाल बीत चुका हो तो उस अन्तर या उसके आधेको चन्द्रमाके भोगांशसे घटा दे। इस अन्तर या इसके आधे को जिसको जोड़ा या घटाया जाय उस दिनकी सूर्यकी गतिसे गुणा करके उस दिनकी चन्द्रगतिसे भाग देना चाहिए। जो लब्धि आवे उसे सूर्यके भोगांशमें उसी तरह जोड़ना या घटाना चाहिए जैसे चन्द्रमामें जोड़ा या घटाया है। (११) इसी प्रकार उस अन्तर या उसके आधेको चन्द्र-

पात अर्थात् राहुकी गतिसे गुणा करके चन्द्र गतिसे भाग देकर जो लब्धि आवे उसे राहुके भोगांशमें उलटे क्रमसे संस्कार दे अर्थात् यदि चन्द्रमामें अन्तर जोड़ा हो तो राहुमें घटाना चाहिए और घटाया है तो जोड़ना चाहिए। इन संस्कारोंके बाद सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति फिर जाननी चाहिए। यदि दोनों समान न हों तो फिर ९-१० श्लोकोंमें बतलायी गयी क्रिया करनी चाहिए। यह असकृत्कर्म (Method of approximation) तब तक करना चाहिए जब तक सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्ति समान न हो जायँ।

विज्ञान-भाष्य—९वें श्लोकके पूर्वार्धमें जो नियम बतलाया गया है वह स्पष्टाधिकारके २८वें श्लोकमें बतलाये गये नियमका विलोम है (पृष्ठ १८०-१८२)। यहाँ क्रान्तिज्या, त्रिज्या और परम क्रान्तिज्यासे भोगांश जाननेकी रीति है। इस रीतिसे जो भोगांश आवेगा वह ९० अंशसे कम होगा। इससे अधिक जाननेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि हमको तो यही देखना है कि वसंत या शरद् सम्पातसे सूर्य और चन्द्रमा कितनी दूर हैं। स्पष्ट क्रान्ति भिन्न होनेसे यह भोगांश भी भिन्न होंगे परन्तु एक दूसरेके निकट अवश्य होंगे। इन भोगांशों का जो अन्तर होगा उतना ही चन्द्रमा पातकालसे आगे या पीछे होगा। यदि पातकाल आनेवाला है तो यह अन्तर चन्द्रमाके भोगांशमें जोड़ना चाहिए क्योंकि उस समय तक चन्द्रमा इतना ही आगे बढ़ जायगा और यदि पातकाल बीत चुका है तो यह अन्तर चन्द्रमाके भोगांशसे घटाना चाहिए क्योंकि बीते हुए पातकालके समय चन्द्रमा इतना ही पीछे रहेगा। परन्तु सूर्य भी इतने समयमें कुछ न कुछ स्थान

छोड़ेगा। इसलिए पातकाल का सूर्य का स्थान भी स्पष्ट करना आवश्यक है। इसके लिए अनुपातसे काम लेना चाहिए कि जब चन्द्रमाकी दैनिक गति इतनी है तो सूर्यकी दैनिक इतनी है इसलिए जब चन्द्रमाकी गति उस अन्तरके समान होगी तब सूर्यकी गति क्या होगी अर्थात् चन्द्र दैनिक गति : चन्द्र अन्तर :: सूर्यकी दैनिक : सूर्य अन्तर। इस प्रकार जो अंतर आवे उसे सूर्यके भोगांशमें जोड़ना चाहिए यदि चंद्रमाका अंतर जोड़ा गया हो, नहीं तो घटाना चाहिए। इस प्रकार पात-कालमें सूर्य और चंद्रमाके स्पष्ट भोगांश मालूम हो जायंगे। इससे फिर सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट क्रांति जाननी चाहिये। परन्तु चंद्रमा की स्पष्ट क्रांति जाननेके लिए चंद्रमाका शर जानना आवश्यक है जो चंद्रमाके पात राहु या केतु पर अवलम्बित है और इतनी देरमें चंद्रपात भी वक्रीगतिसे अपना स्थान बदल देगा इस लिए उसी प्रकार अनुपातसे राहुका भी परिवर्तन जान लेना चाहिये। परन्तु इस परिवर्तनका संस्कार राहुमें विलोम रीतिसे करना चाहिए अर्थात् जब चंद्रमा और सूर्यमें जोड़ना हो तो इसमें घटाना चाहिये और घटाना हो तो जोड़ना चाहिये क्योंकि राहु की गति उलटी होती है। जब चंद्र-क्रांतिमें चंद्र-शर का संस्कार करके स्पष्ट क्रान्ति आ जाय तब देख पड़ेगा कि सूर्य की क्रांति अब भी कुछ भिन्न है। इन क्रान्तियोंसे ९-११ श्लोकोंमें बत-लायी गयी रीति को फिर दुहरावे और तब तक दुहरावे जब तक दोनों की क्रांति समान न हो जाय। इसी को असकृत्कर्म कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे कई जगह हो चुकी है।

९-११ श्लोकोंमें बतलाये गये नियम की इतनी व्याख्या

पर्याप्त है। यहाँ मुझे केवल इतना ही कहना है कि यह सब झंझट करने पर भी पातकाल का ठीक ठीक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि चंद्रमा की गति इतनी सरल नहीं है जैसी सूर्य-सिद्धान्त में बतलायी गयी है। इसका शुद्ध स्थान जाननेके लिए कई संस्कार करने पड़ते हैं जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार-में अच्छी तरह की गयी है। इस लिए यदि पातकाल का ठीक ठीक निर्णय करना हो तो आधुनिक वेधोंसे ही काम लेना चाहिए जिसके लिए आधुनिक सिद्धान्तके आधार पर सारणी आदि तैयार करनी चाहिये।

९वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि सूर्य और चंद्रमाके भोगांशोंके अंतर या इस अन्तरके आधे को जोड़ना या घटाना चाहिए। टीकाकारोंने लिखा है कि आधा तब लेना चाहिए जब अन्तर अधिक हो। इससे गणनामें तो कोई भेद नहीं पड़ता, केवल कुछ सरलता आ जाती है क्योंकि उद्देश्य तो यह है कि असकृत्कर्मसे वह समय जाना जाय जिस समय दोनों की क्रान्ति समान होती है।

पातकाल अर्धरात्रिसे पहले है या पीछे—

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ।
हीनेऽर्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१२॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियां जब समान होती हैं तभी पातकाल होता है। ९वें श्लोकके अनुसार जाना हुआ पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमाका भोगांश स्पष्टा-धिकार के अनुसार जाने हुए उस दिन के अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमाके भोगांशसे कम हो तो समझना चाहिए कि

ातकाल अर्धरात्रिसे पहले हो चुका है और अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रिके बाद होगा।

विज्ञान-भाष्य—चन्द्रमाका भोगांश सदैव बढ़ता रहता है इस लिए यदि पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का भोगांश अर्धरात्रि-कालिक स्पष्ट चन्द्रमा के भोगांशसे कम हो तो निश्चय है कि पातकाल अर्धरात्रिसे पहले हो चुका है और अधिक है तो अर्धरात्रिके बाद होगा।

पातकाल अर्धरात्रि से कितना पहले या पीछे है—

स्थरीकृतार्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः।
षष्टिघ्नाश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः॥१३॥

अनुवाद—उपर्युक्त नियमसे निश्चित किया हुआ पातकालिक चन्द्र-भोगांश और उस दिन के अर्धरात्रिकालिक चन्द्रभोगांश-के अंतरको कलाओंमें लिखकर साठसे गुणा करने और गुणनफलको अर्धरात्रिकालिक चन्द्रगतिसे भाग देनेसे जो लब्धि आवेगी उतनी ही घड़ी पहले या पीछे पातकाल हुआ है या होगा।

विज्ञान-भाष्य—पातकालिक चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चंद्रमाके भोगांशोंके अंतरसे यह मालूमहोगा कि पातकालिक चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमासे कितना पहले या पीछे था। फिर यह गणना करनी चाहिए कि अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा की दैनिकगति ६० घड़ीमें होती है तो वह अंतर कितनी घड़ी में हुआ होगा। इतना ही आगे या पीछे पातकाल होना चाहिए।

यदि सूर्य और चन्द्रकी गणना आधुनिक सिद्धान्त द्वारा बहुत सूक्ष्म की जाय तो भी इस नियमसे जो पातकाल

आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि पातकालिक गणना बहुत सूक्ष्म होती है और चन्द्रमाकी दैनिक गति इतनी अधिक होती है कि यदि अर्धरात्रिकालिक गतिको पातकालिक समझ लिया जाय जैसा कि इस नियममें समझा गया है तो सूक्ष्मता नहीं आ सकती क्योंकि यदि पातकाल और अर्धरात्रिकालमें बहुत अंतर है तो दोनों समयकी चन्द्रगतियां समान नहीं होंगी इसलिए मेरी समझमें यह अच्छा होगा कि इस नियमसे जो पातकाल आवे उस समय से दो घड़ी आगे और पीछे की चन्द्रगतियों से काम लिया जाय।

पातकालके आरम्भ और समाप्त होनेका समय जानना—

रवीन्दुमान योगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ।
तयोर्भुक्त्यान्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत् ॥१४॥
पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्ध वर्जितः ।
तस्य सम्भव कालः स्यात्तत्संयुक्तोन्त्यसंज्ञितः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) सूर्य और चन्द्र बिम्बोंके मानोंको जोड़कर आधा करे और इसको ६० से गुणा करके दोनोंकी गतियोंके अन्तरसे भाग दे दे तो लब्धि स्थित्यर्ध घड़ी होती है। (१५) इसको स्पष्ट पातकालसे जो पातका मध्यकाल होता है घटा देनेसे जो समय आता है उसी समय पातकालका आरम्भ होता है और जोड़नेसे जो समय आता है उसी समय पातकालका अन्त होता है।

विज्ञान भाष्य—स्थित्यर्धकी जो परिभाषा चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ६६५-६६८ में दी गयी है वही यहां भी समझनी चाहिए। पृष्ठ

६६७ में $\frac{६० \times च फ}{चा—रा}$ सूत्र दिया गया है। यदि इसमें च फ की जगह सूर्य और चन्द्र-बिम्बोंके योगका आधा रख दिया जाय तो पातकालका स्थित्यर्ध हो जायगा जिसे जाननेका नियम १४ वें श्लोकमें बतलाया गया है। १५वें श्लोकमें स्थित्यर्धसे आरम्भ और अन्तकाल उसी तरह जाना जाता है जिस तरह ग्रहणका स्पर्श और मोक्षकाल जाना जाता है।

इसका सार यह है कि जिस समय चन्द्रमा और सूर्यके बिम्बोंके किनारोंकी क्रान्ति समान होती है उस समयसे पातकालका आरम्भ होता है और जिस समय दोनों बिम्बोंके केन्द्रोंकी क्रान्ति समान होती हैं उस समय पातका मध्यकाल होता है जिसके जाननेकी रीति १३ श्लोकों तक बतलायी गयी है और जिस समय दोनों बिम्बोंके दूसरे किनारोंकी क्रान्तियां भी समान हो जाती हैं उस समय पातकालका अन्त होता है।

पातकालका प्रभाव और उसके योग्य कर्म—

आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽति दारुणः।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्व कर्म सुगर्हितः॥ १६॥
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्व कर्म विनाशकृत्॥ १७॥
स्नान दान जप श्राद्धव्रत होमादि कर्मभिः।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा॥ १८॥

अनुवाद—(१६) पातकालके आरंभसे अंत तकका समय बड़ा दारुण, प्रज्वलित, और अग्नि स्वरूप होता है। यह सब शुभ कार्यों के लिए निन्दित है। (१७) जब तक सूर्य बिम्बके

किसी विन्दुकी क्रान्ति चन्द्रबिम्बके किसी विन्दुकी क्रान्तिके समान होती है तब तक सब कर्मोंका नाश करनेवाले इस पातकी स्थिति रहती है। (१८) इस कालमें स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होम आदि कर्मोंसे अत्यन्त पुण्य प्राप्त होता है और इस कालके ज्ञानसे भी पुण्य होता है।

विज्ञान-भाष्य—जैसे पूर्णिमा, अमावास्या आदि कालोंमें स्नान, दान, जप आदि काम अच्छे समझे जाते हैं वैसे ही पातकालमें भी यह कर्म अच्छे बतलाये गये हैं और जिस प्रकार मुहूर्त-चिंतामणिमें बतलाये गये बहुतसे योगोंमें शुभ कर्म करना वर्जित है उसी प्रकार यहां भी। परन्तु ज्योतिषी लोग यथार्थमें इन महापातों का विचार कम करते हैं, वह शायद इसलिए कि इसकी गणना पुराने सिद्धान्तोंके आधार पर तो असम्भव ही है। इसी लिए पंचांगोंमें भी इनकी चर्चा नहींके बराबर रहती है। हिन्दू विश्वविद्यालयके विश्व-पंचांग में भी दो एक जगह चर्चा करके छोड़ दिया जाता है यद्यपि इसके लेखकोंको नाविक-पंचांगकी सहायतासे पातकालका जानना बड़ा सुगम होता है क्योंकि और बातोंमें तो ये नाविक पंचांगसे सहायता लेते ही हैं। १८वें श्लोककी अंतिम बात निस्संदेह बहुत सुन्दर है। उसमें यह बतलाया गया है कि पातकालके जाननेसे भी पुण्य होता है अर्थात् पातकालका शुद्ध शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना भी पुण्य कार्य है जो तभी संभव है जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादिकी गणना ठीक ठीक दृक्तुल्यतासे की जाय और ज्योतिष सिद्धान्तका पठन पाठन नवीन वैज्ञानिक रीतिसे किया जाय। केवल प्राचीन सिद्धान्तोंको ही सब कुछ समझना और उनमें देशकालके अनुसार संशोधन न करना तथा

शुद्ध वैज्ञानिक रीतिको निंदित समझना बुद्धिमानी नहीं है और न प्राचीन ज्योतिषाचार्योंकी पद्धतिके ही अनुकूल है।

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेद्धि तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥१६॥

अनुवाद—जब विषुवद् वृत्त के निकट अर्थात् वसंत संपात या शरद संपातके पास सूर्य चन्द्रमाकी क्रान्तियां समान होती हैं तब पात दो बार होते हैं। इसके विपरीत दशामें अर्थात् सायन कर्क या सायन मकर बिन्दुके समीप पातका अभाव होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा वसंत या शरद सम्पातके पास होते हैं तब इनकी क्रान्तियोंकी गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषुवद् वृत्तके दक्षिण होता है और सूर्य उत्तर तब दोनों की क्रान्तियां समान होती हैं। इसके बाद जब चन्द्रमा शीघ्र गतिके कारण उत्तर हो जाता है तब भी इसकी क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिके समान हो जाती है इस प्रकार क्रान्ति-साम्य दो बार एक ही दो दिनके बीचमें हो सकता है। परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों विषुवद् वृत्त से उत्तर रहेंगे तब अमावस्या का समय होगा और ऐसी दशामें पातकाल नहीं माना जाता जैसा कि पहिले और दूसरे श्लोकोंसे सिद्ध होता है। इसलिए जान पड़ता है कि केवल यह विशेषता बतलानेके लिए श्लोक १६ दिया गया है कि क्रान्ति-साम्य दो बार हो सकता है, दो ही एक दिन के अन्तर पर।

परन्तु यदि सूर्य सायन कर्क या सायन मकर बिन्दुओंके समीप हो तो इसकी क्रान्ति परम क्रान्तिके निकट रहती है।

यदि इस समय चन्द्रमा की क्रान्ति शर की दिशा भिन्न होनेके कारण कम हो तो क्रान्ति साम्य नहीं हो सकता और न वैधृति या व्यतीपातका ही संयोग घट सकता है।

तीसरे प्रकार का व्यतीपात जानने की रीति—

शशाङ्कार्कयुतेर्लिप्ता भभोगेन विभाजिताः।

लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातः तृतीयकः ॥२०॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों को जोड़कर कला बनावे और इसको ८०० से भाग दे दे। यदि लब्धि १७ के अन्त में हो अर्थात् १७ के निकट हो तो तीसरा व्यतीपात होता है।

विज्ञान-भाष्य—स्पष्टाधिकार के श्लोक ६५ में विष्कम्भादि २७ योगों के जाननेकी रीति दी हुई है। इनमें १७ वां योग व्यतीपात बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३१६)। इसीके जाननेकी रीति यहां भी दुहरायी गयी है। वह इसलिए, जिससे मालूम हो जाय कि इस अधिकारमें क्रान्ति-साम्यसे उत्पन्न जिन महापातोंकी चर्चा है उन्हींके समकक्ष व्यतीपात नामक योग भी होता है। इसी तर्कसे कहा जा सकता है कि २७ वें योग वैधृतिको भी वैधृति नामक महापातके समान समझना चाहिए।

यहां एक बात ध्यान देनेकी है। व्यतीपात और वैधृति योगोंकी गणना सूर्य और चन्द्रमाके निरयण भोगांशोंसे की जाती है परन्तु महापातोंकी गणना सायन भोगांशोंसे की जाती है। इसलिए यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि २० वें श्लोक में जो नियम दिया गया है उसमें सायन भोगांशोंका प्रयोग

करना चाहिए या निरयण। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीकामें तो अयनांश संस्कृत भोगांश अर्थात् सायन भोगांशसे ही गणना करनेको बतलाया गया है और इसीका अनुसरण पं० माधव-पुरोहित और पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी ने किया है। परन्तु स्वामी विज्ञानानन्दने अपनी बंगला टीकामें कोई चर्चा नहीं की है। मुझे जान पड़ता है कि यह व्यतीपात विष्कम्भादि योगोंका ही व्यतीपात है, उससे भिन्न नहीं है। इस लिए जिस प्रकार इन योगोंकी गणना होती है उसी प्रकार इस श्लोकमें बतलाये हुए व्यतीपातकी गणना करनी चाहिए अर्थात् निरयण भोगांशोंसे ही इसकी गणना होनी चाहिए तथा गूढ़ार्थ प्रकाशिकाके अयनांश-संस्कृत भोगांशोंको न लेना चाहिए। सायन भोगांश लेनेमें एक अड़चन और है। वह यह कि इससे जो व्यतीपात या वैधृति काल आवेगा वह विष्कम्भादि योगोंके व्यतीपात और वैधृतिसे भी भिन्न होगा। इस प्रकार एक मासमें चार चार व्यतीपात और वैधृति कालोंकी कल्पना करनी पड़ेगी जो ग्रन्थकारकी तर्क-शैलीसे भी अनुचित जान पड़ती है।

भसंधि और गंडान्त योग कब होता है—

सार्पेन्द्रपौष्ण्यधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः।
तदग्रभेष्वाद्यपादो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते॥ २१॥

अनुवाद—आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रोंके चौथे चरण नक्षत्र-सन्धि हैं और इनके आगेवाले नक्षत्रों मघा, मूल, और अश्विनीके प्रथम चरण गंडांत कहलाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—मुहूर्त-चिन्तामणि तथा अन्य मुहूर्त ग्रन्थोंमें

इनकी चर्चा विशेष प्रकारसे है। नक्षत्र-संधि या गंडांतमें जो संतान होती है उसके लिए साधारणतः कहा जाता है कि मूलमें हुई है। इसे अशुभ मानते हैं। बच्चा पैदा होनेके २७वें दिन जब वही गंडांत या भसंधि काल फिर आता है तब मूल-शान्ति के लिए विशेष प्रकारकी पूजाकी जाती है। यहां गंडांत की चर्चा करनेका अर्थ यही जान पड़ता है कि जो अशुभ फल महापातोंका होता है वही गंडांतका भी होता है जैसा कि अगले श्लोकसे प्रकट है। यह भसंधियां चौथी, आठवीं, और बारहवीं राशियोंके अंतिम भाग हैं और गंडांत पांचवीं, ९वीं और १ली राशियोंके आरंभिक भाग हैं।

व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा।
एतद्भसन्धित्रितयं सर्व कर्मसु वर्जयेत् ॥२२॥

अनुवाद—तीनों व्यतीपात, तीनों गंडांत और नक्षत्रसंधियां बहुत भयंकर होती हैं इस लिए ये सब शुभकामों में वर्जित हैं अर्थात् जब ये हों तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में वैधृत व्यतीपातकी चर्चा नहीं है परन्तु तर्क शैलीसे और पहलेके श्लोकोंसे जान पड़ता है कि वैधृति भी इसमें सम्मिलित है। टीकाकारोंने ऐसा ही किया भी है।

उपसंहार—

इत्येतत्परमंपुण्यं ज्योतिषां चरितं हितं।
रहस्यं महदाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

अनुवाद—मैंने यह परम पवित्र अत्यन्त रहस्ययुक्त और हितकर ज्योतिर्विज्ञान की कथा कही, अब और क्या सुनना चाहता है ?

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुषने मयासुरसे जिस ज्योतिर्विज्ञानकी कथा पहले अधिकारमें आरंभ की थी उसका अंत यहां हुआ। इस पर मयासुरने जो प्रश्न किये उसकी चर्चा आगे तीन अध्यायोंमें होगी। इस लिए यहां तक जो कुछ कहा गया है उसे सूर्य-सिद्धान्तका पूर्वार्ध कहते हैं। इसके आगे जो तीन अध्याय हैं उन्हें उत्तरार्ध कहते हैं। अब हम यहाँ संक्षेपमें यह बतला कर कि महापातोंकी गणना कैसेकी जाती है इस पूर्वार्धको समाप्त करेंगे।

पंचांगोंसे महापातोंका स्थूलकाल निश्चय करना—विष्कम्भादि २७ योगोंकी गणना पंचांगोंमें अवश्य रहती है। इनको जाननेकी रीति स्पष्टाधिकारके ६५ वें श्लोकमें बतलायी गयी है जो यह है—सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंको जोड़ कर कला बनाओ और इसको ८०० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उससे बीते हुए योगोंकी संख्या मालूम होती है और जो शेष बचता है उससे वर्तमान योग का ज्ञान होता है।

इस नियममें सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश अश्विनी नक्षत्रके आदि विन्दुसे नापे जाते हैं और महापातोंकी गणनाके लिए भोगांशोंकी नाप वसंत-संपात विन्दुसे की जाती है। यदि दोनोंके लिए भोगांशोंकी नाप वसंत-संपातसे होती तो महापातोंका समय जानना बड़ा सुगम होता क्योंकि जिस समय १४ वें योग हर्षण का आधा समय बीतता उस समय सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ १८० अंश होता और व्यतीपात

नामक पातकालका मध्यकाल होता और जिस समय वैधृति योगका अंत होता उसी समम वैधृति नामक पातका मध्यकाल होता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इसलिए इसमें थोड़ा सा संस्कार करना पड़ेगा। सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार अश्विनीका आदि-विन्दु आजकल जहाँ है वहाँ से वेध-द्वारा-सिद्ध वसंत-संपात विन्दु २२ अंश ४५ कलाके लगभग पच्छिम है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। यदि यहाँसे सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लिये जायं तो दोनोंका जोड़ ४५ अंश ३० कला अधिक होता है। व्यतीपातके लिए सूर्य और चन्द्रमाके सायन भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता है, इसलिए १८० अंश—४५ अंश ३० कला=१३४ अंश ३० कला=८०७० कला। यह अश्विनी नक्षत्रके आदि-विन्दुसे व्यतीपातकालिक सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंका जोड़ है। इसको ८०० कलासे भाग देने पर १० लब्धि और ७० कला शेष होते हैं। १० से सिद्ध होता है कि व्यतीपात कालमें गंड योग बीता रहता है और वृद्धि योग का आरम्भ हुआ रहता है। इसलिए स्थूल रूपसे व्यतीपात काल को निश्चय करनेके लिए जिस समय वृद्धि योगका आरम्भ होता है उसी समयके सूर्य चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति जानकर व्यतीपात कालकी सूक्ष्म गणना करनी चाहिए।

वैधृति नामक पातकालका निश्चय करनेके लिए ४५ अंश ३० कलाको ३६० अंशसे घटाना चाहिए। ऐसा करनेसे शेष आया ३१४ अंश ३० कला=१८८७० कला। इसको ८०० से भाग देने पर २३ लब्धि और ४७० कला शेष हुए, जिससे प्रकट होता है कि वैधृति नामक पातकाल में २३ वाँ योग शुभ बीता रहता है और २४वें योग शुक्ल का भी आधा बीत चुका रहता

है। इसलिए स्थूल रूपसे वैधृति नामक पात शुक्ल योगके आधे भाग पर होता है। इसलिए सूक्ष्म गणना करनेके लिए इसी समयके सूर्य, और चन्द्रमा की स्पष्टक्रान्ति जाननी चाहिए। इसके लिए सूर्य, चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट भोगांश, सूर्यकी क्रान्ति, चन्द्रमाकी मध्यमक्रान्ति और शर जानकर इसका संस्कार करके चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिए जिसकी रीति स्पष्टाधिकार पृ० २९१-२९५ में बतलायी गयी है। इसलिए उदाहरणमें इन सब बातोंके बतलानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यहां केवल यह दिखलाना पर्याप्त होगा कि सूर्य-सिद्धान्तके ध्रुवाङ्कोंसे महापातोंके समयकी गणना करना न तो सुगम ही है और न शुद्ध जब कि आधुनिक रीतिसे जाने हुए ध्रुवाङ्कोंसे यह बात शुद्धतापूर्वक जानी जा सकती है। मेरे पास इस समय १९२९ ई० का नाविक पंचांग मौजूद है इसलिए इसीकी सहायता से वैशाख शुक्ल १९८६ विक्रमीयके व्यतीपात नामक महापातकी गणना की जाती है।

१९८६ के वैशाख शुक्ल पक्ष में गंड योगका अंत १४ मई को ४२ घड़ी ४० पल पर होता है और इसके बाद वृद्धि योगका आरंभ होता है इसलिए १४ या १५ मई को व्यतीपात नामक महापात होगा: अब नाविक पंचांगसे यह देखना चाहिए कि इन तारीखोंमें किस समय सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्तियां समान होंगी। नाविक पंचांगके पृष्ट ५१ से जान पड़ता है कि १४ मईको सूर्यकी उत्तर क्रान्ति १८ अंश ३४ कला और ४२ विकला है तथा १५ मईको १८ अंश ४९ कला और ६ विकला है। परन्तु चन्द्रमाकी क्रान्ति १४ मईको

२२ अंश से अधिक है इसलिए १४ मईको व्यतीपात काल नहीं आवेगा परन्तु १५ मईकी शामको यह घटना हो सकती है क्योंकि,

	अंश	कला	वि०
१५ मई के मध्याह्न कालमें सूर्यकी क्रान्ति	१८	४९	६.१
१६ ,, ,, ,,	१९	३	१०.९
२४ घंटे में क्रान्तिगति		१४	४.८
१५ मई के सायंकाल ६ बजे चंद्रक्रान्ति	१८	५४	११.५
,, ,, ७ ,, ,,	१८	४२	३३.४
१ घंटे में चन्द्रक्रान्ति की गति		११	३८.१

यहां सूर्य क्रान्ति बढ़ रही है और चन्द्रमा की घट रही है इसलिए चन्द्रमा की क्रान्ति की गतिसे यह निश्चय है कि ६ बजेके आस पास ही दोनोंकी क्रान्तियां समान होंगी। ६ घंटेमें सूर्यकी क्रान्तिकी गति $\frac{६}{२४}$ × (१४ कला ४'८ विकला) = ३ कला ३१'२ विकला है। इस लिए ६ बजे सायंकाल सूर्यकी क्रान्ति हुई १८ अंश ४९ कला ६'१ विकला + ३ कला ३१'२ विकला = १८ अंश ५२ कला ३७'३ विकला। यह छः बजेकी चन्द्र-क्रान्तिसे कम है और चन्द्र-क्रान्ति घट रही है तथा सूर्य-क्रान्ति बढ़ रही है इस लिए छः बजेके बाद ही कुछ मिनिटोंमें दोनोंकी क्रान्तियां समान होंगी। यह जाननेके लिये दोनोंकी क्रान्तियों के अंतरको दोनों की क्रान्ति-गतियों के अंतर से भाग देना चाहिये।

	अंश	क०	वि०
६ बजे चन्द्र-क्रान्ति =	१८	५४	११'५
,, सूर्य क्रान्ति =	१८	५२	३७'३
दोनोंका अन्तर =		१	३४'२ = ९४'२ वि०

सूर्यकी १ घंटेकी क्रान्ति-गति $= \frac{\text{१४ कला ४'८ वि०}}{\text{२४}}$

$= \text{३५'२ विकला}$

चंद्रमाकी १ घंटेकी क्रान्ति गति = ११ कला ३८'१ विकला

दोनोंकी दिशाएं भिन्न हैं इस लिए इनका अंतर जाननेके लिए इनको जोड़ना चाहिए। इस लिए दोनोंका योग = १२ कला १३'३ विकला = ७३३'३ विकला

जब ७३३'३ विकलाका अंतर १ घंटेमें होता है तब ९४'२ विकला का अंतर कितने समय में होगा।

७३३'३ : ९४'२ : : १ घंटा : इष्टकाल

$\therefore$ इष्टकाल $= \frac{\text{९४'२} \times \text{१}}{\text{७३३'३}}$ घंटा

$= \frac{\text{९४'२} \times \text{'१} \times \text{६०}}{\text{७३३'३}}$ मिनट

= ७ मिनट ४३ सेकंडके लगभग

इस लिए १५ मई को ६ बजकर ७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपातका मध्यकाल होगा। परन्तु यह गणना ग्रीनिचके टाइमसे की गयी है जो भारतवर्षके रेलवे टाइमसे ५ घंटा ३० मिनट पीछे है। इस लिए भारतवर्षके रेलवे टाइमके अनुसार १५ मईकी रातको ११ बजकर ३७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात कालका मध्य होगा।

अब स्थित्यर्ध-काल जानकर इससे घटाया जाय तो व्यतीपातकालका प्रारंभकाल आजायगा और जोड़ा जाय तो अंतकाल आवेगा। यह १४वें श्लोकके अनुसार सुगमता पूर्वक हो सकता है इस लिए उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार पाताधिकार नामक ११ वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

भूगोलाध्याय नामक १२वाँ अध्याय

[श्लोक १-९—मयासुरके भूगोल, खगोल तथा ऋतु सम्बन्धी अनेक प्रश्न। श्लोक १०-११—सूर्यांश पुरुषका मयासुरसे उत्तर सुननेके लिए कहना। श्लोक १२-२३—वासुदेवसे लेकर पंच महाभूतों तककी उत्पत्तिका क्रम। श्लोक २४—पांच ताराग्रहोंकी उत्पत्ति। श्लोक २५—बारह राशियों और २७ नक्षत्रोंकी उत्पत्ति। श्लोक २६-३०—चराचर जगत्‌की उत्पत्ति। श्लोक ३०-३३—ब्रह्माण्डमें ग्रहोंकी कक्षाओंका क्रम और पृथ्वीका स्थान। श्लोक ३३-३६—भूगोलमें पाताल, सुमेरु आदिके स्थान। श्लोक ३७-४२—विषुवत्‌रेखा पर स्थित चार नगरोंके स्थान। श्लोक ४३-४५—विषुवत्‌रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवोंका सम्बन्ध। श्लोक ४६—भिन्न ऋतुओं में सूर्यकी किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं। श्लोक ४७-५०—उत्तर ध्रुव निवासियों अर्थात् देवताओं और दक्षिण ध्रुव निवासियों अर्थात् असुरोंके दिन रात का विभाग। श्लोक ५१—देवताओं और असुरोंके मध्याह्न और मध्यरात्रिका समय। श्लोक ५२-५३—भूगोल पर १८० अंशकी दूरी पर रहने वाले एक दूसरे को ऊपर नीचे क्यों समझते हैं। श्लोक ५४—भूगोल चाककी तरह क्यों देख पड़ता है। श्लोक ५५-५८—भूतल पर दिन रातके घटने बढ़नेका कारण। श्लोक ५९—किसी समय विषुवत्-रेखासे कितनी दूरी पर सूर्य ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६०-६१—विषुवत्‌रेखासे कितनी दूरी पर ६० घड़ीका दिन और ६० घड़ीकी

रात होती है। श्लोक ६२–६० घड़ीसे भी बड़ा दिन या रात कहां होती है। श्लोक ६३–६७—दो दो महीने, चार चार और छः छः महीने का दिन या रात कहां होती है। श्लोक ६८—उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन सूर्य कहां ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६६—किसी वस्तुकी छाया कहां किस दिशामें होती है। श्लोक ७०-७१—भूतल पर जब एक जगह सूर्यका उदय होता है तब कहां मध्याह्न रहता है और कहां मध्यरात्रि अथवा अस्तकाल। श्लोक ७२—ध्रुवोंकी दिशामें जानेसे आकाशीय ध्रुवोंकी उन्नति और नक्षत्र-कक्षाकी अवनति देख पड़ती है। श्लोक ७३—प्रवह वायुके द्वारा नक्षत्र-चक्र कैसे भ्रमण करता है। श्लोक ७४—देवताओं, पितरों और मनुष्योंके दिन रात का प्रमाण। श्लोक ७५-७७—ग्रहोंकी कक्षाओं और उनके भ्रमण-कालोंका सम्बन्ध। श्लोक ७८-७६—वर्षपति, मासपति, दिनपति तथा होरापतियोंका सम्बन्ध। श्लोक ८०—नक्षत्र-कक्षा का विस्तार। श्लोक ८१-८४—आकाश-कक्षा का प्रमाण तथा इससे ग्रहकी कक्षाओं और गतियोंका सम्बन्ध। श्लोक ८५-६०—कक्षाओंका परिमाण योजनोंमें।]

इस अध्यायमें भूगोलकी उत्पत्ति, स्थिति, विस्तार आदि सभी बातोंका निरूपण किया गया है, इसीलिए इसका नाम भूगोलाध्याय है। साथ ही साथ ग्रहों, नक्षत्रों और आकाशकी कक्षाओंके प्रमाण भी दिये गये हैं।

मयासुरके प्रश्न और सूर्यांश पुरुषके उत्तरकी भूमिका—

अथार्कांशसमुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
भक्त्या परमयाभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयासुरः ॥१॥

भगवन् किम्प्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया ।
किं विभागा कथंचात्र सप्तपाताल भूमयः ॥२॥
अहोरात्र व्यवस्थांच विदधाति कथं रविः ।
कथं पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥३॥
देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।
किमर्थं तत्कथं वा स्याद्भानोर्भगण पूरणात् ॥४॥
पित्र्यं मासेन भवति नाडी षष्ट्यातु मानुषम् ।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत्केन हेतुना ॥५॥
दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः ।
कथं पर्येति भगणः सग्रहोयं किमाश्रयः ॥६॥
भूमेरुपर्युपर्यूर्ध्वाः किमुत्सेधाः किमन्तराः ।
ग्रहर्क्ष कक्षाः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेणताः ॥७॥
ग्रीष्मे तीव्रकरो भानुर्न हेमन्ते तथा विधः ।
कियती तत्करप्राप्तिर्मानानि कति किं च तैः ॥८॥
एतं मे संशयं छिन्धि भगवन् भूतभावन ।
अन्यो न त्वामृते छेत्ता विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥९॥
इति भक्त्योदितं श्रुत्वा मयोक्तं वाक्यमस्यहि ।
रहस्यं परमध्यायं ततः प्राह पुनः स तम् ॥१०॥
शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
प्रवक्ष्याम्यति भक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥११॥

अनुवाद—(१) इसके उपरान्त मयासुर ने सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड़ कर प्रणाम करके और बड़ो भक्तिसे पूजा करके यह पूछा । (२) हे भगवन्, इस पृथ्वी का परिमाण क्या है, इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है, इसके कितने विभाग हैं और इसमें सात पातालोंकी भूमि कैसे स्थित है। (३) सूर्य अहोरात्रकी व्यवस्था कैसे करते हैं और भुवनोंको प्रकाशित करते हुए पृथ्वीके चारों ओर कैसे घूमते हैं। (४) देवताओं और असुरोंके दिन-रात एक दूसरेके विपरीत क्यों होते हैं और सूर्यका एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है। (५) पितरोंका दिन-रात एक मासका और मनुष्यों का ६० घड़ियोंका क्यों होता है। सब जगह एक ही प्रकारके दिन-रात क्यों नहीं होते। (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घंटा) के स्वामी समान क्यों नहीं होते ग्रहोंके साथ नक्षत्र मंडल कैसे घूमता है और इनका आधार क्या है। (७) ग्रहों और नक्षत्रोंको कक्षाएँ पृथ्वीसे ऊपर कितनी कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर पर हैं, इनके मान क्या हैं और ये किस क्रमसे स्थित हैं। (८) ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी किरणें बहुत तीव्र क्यों होती हैं और हेमन्त ऋतुमें वैसी क्यों नहीं होतीं। यह किरणें कितनी दूर तक जाती हैं; सौर, चन्द्र आदि मान कितने हैं और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है। (९) हे भूतभावन भगवन्, मेरी इन शंकाओं को दूर कीजिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आपके सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शंकाओं को नहीं दूर कर सकता। (१०) भक्तिसे कहे हुए मयासुरके इन वचनों को सुनकर

सूर्यांश पुरुषने उससे फिर पहलेके रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ क्योंकि भक्तों के लिये मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता।

विज्ञान-भाष्य—मयासुरने जितने प्रश्न किये हैं उनका उत्तर जाननेकी अभिलाषा सभी तत्वज्ञानियों को होती है। इस पर सूर्यांश पुरुषने बतलाया है कि उत्तरमें जिस रहस्यका प्रतिपादन किया जायगा वह अध्यात्म ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इस पर बहुतसे लोग कह उठेंगे कि मयासुरके प्रश्नोंका उत्तर तो कोई भी ज्योतिषी और भूगोलशास्त्री दे सकता है। यह विचार कुछ दूर तक ठीक है परन्तु सूर्यांश पुरुषने इस संसारकी उत्पत्तिकी जो चर्चा की है वह तो अवश्य अध्यात्म संबंधी ही कही जा सकती है क्योंकि यह भौतिक विज्ञानसे परे की बात है।

सृष्टिका क्रम—

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिःपुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥१२॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३॥
तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्र तमसावृतम्।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः ॥१४॥
हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्प्रसूत्या सूर्य उच्यते ॥१५॥

परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च ।
पर्येति भुवनान्येष भावयन्भूत भावनः ॥१६॥
प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः ।
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्तिर्यजूंषिच ॥१७॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः ।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥१८॥
रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम् ।
छन्दांस्यश्वाः सप्तयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥१९॥
त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत् ।
सोऽहङ्कार जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥२०॥
तस्मै वेदान्वरान्दत्त्वा सर्वलोकपितामहम् ।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन् ॥२१॥
अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माहङ्कारमूर्तिभृत् ।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसांनिधिः ॥२२॥
मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ।
गुणैक वृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

अनुवाद—(१२) परं ब्रह्म वासुदेव हैं। इनकी मूर्ति परम पुरुष है जो अव्यक्त, निर्गुण, शान्त और अव्यय और सांख्य शास्त्रके पच्चीस तत्वोंसे परे हैं। (१३) बाहर भीतर सर्व व्यापक देवताने प्रकृतिमें प्रवेश करके संकर्षण रूपसे प्रारम्भमें जलकी सृष्टि करके उसमें बीज रखा (१४) जो सोनेका

अंडा होगया जिसके चारों ओर अंधकार था। इसमें सनातन अनिरुद्ध पहले प्रकट हुए। (१५) इन्हीं को वेदोंमें हिरण्यगर्भ भगवान् कहा गया है। पहले होनेके कारण इन्हें आदित्य और सब चराचर जीवोंको उत्पन्न करनेके कारण इन्हें सूर्य कहते हैं। (१६। परम प्रकाशमय होनेके कारण इन्हें सूर्य और अंधकारके अंतमें होनेके कारण सविता कहते हैं। यह भूतभावन अर्थात् स्थावर जंगम सृष्टिको उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले भगवान लोकोंको प्रकाशमान करते हुए भ्रमण करते हैं। (१७) इन्हें ही प्रकाशात्मा अंधकारका नाश करनेवाले और वेदोंमें महान् तत्व कहते हैं। इनका मंडल ऋग्वेद, किरण सामवेद और मूर्ति यजुर्वेद हैं। (१८) इसलिए इनको वेदत्रयात्मक कहते हैं। इनसे कालकी गणना होती है इसलिए इनको कालात्मा और कालकृत् कहते हैं। यह सबकी आत्मा, सर्वव्यापक, सूक्ष्म हैं और सब सृष्टि इनमें स्थित है। (१९) संसाररूपी रथमें संवत्सर रूपी चक्र बनाकर सात छंदोंके सात घोड़ोंसे युक्त होकर यह सर्वदा भ्रमण करते हैं। (२०) इनके तीन चरण अमृत होनेसे अगम्य हैं और यह एक चरण प्रकट हुआ है। इसी प्रभु ने जगत्की सृष्टिके लिए अहङ्काररूपी ब्रह्माको बनाया। (२१) इसके बाद सब लोकोंके पितामह ब्रह्माको श्रेष्ठ वेदोंको देकर और इन्हें अंडेके बीचमें स्थापित करके अनिरुद्ध भगवान् स्वयम् लोकोंको प्रकाशित करते हुए भ्रमण करते हैं। (२२) इसके पश्चात् अहङ्कार मूर्तिधारी ब्रह्माजीने सृष्टिकी रचना करनेका विचार किया। ब्रह्माके मनसे चंद्रमा और नेत्रोंसे तेजपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुए। (२३) मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि,

अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी पांच महाभूत क्रमसे एक एक गुणकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए।

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुरसे उपर्युक्त सृष्टि-क्रमका जो वर्णन किया है वह वेदान्त, सांख्य, श्रीमद्भागवत् आदि में बतलाये गये सृष्टि-क्रमका मिश्रण है। यह क्रम भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें भिन्न भिन्न रीतिसे बतलाया गया है इसलिए यह संभव नहीं कि उन सबकी व्याख्या यहां की जाय। इस विषय पर लोकमान्य तिलक ने अपने गीता-रहस्यके ६–६ प्रकरणोंमें अच्छी तरह विचार किया है और कहीं कहीं युरोपीय विद्वानोंके मतोंकी भी तुलना की है इसलिए इसकी जानकारीके लिए पाठकोंको उसीका अध्ययन करना चाहिए। यहां उसीका सार दिया जा सकता है।

सांख्यशास्त्रके अनुसार ब्रह्मांडका वंश-वृक्ष १०४२ पृष्ठ पर दिया जाता है। देखो गी० र० (पृ० १७६):—

---

* पृष्ठोंकी संख्या सं० १९७२ के छपे हुए हिन्दी गीता-रहस्यके अनुसार है।

वेदान्तका परब्रह्म इन २५ तत्वों से परे है जिसकी चर्चा सूर्य-सिद्धान्तके १२वें श्लोकमें है (देखो गीता रहस्य पृ० २०३) सूर्यसिद्धान्तमें संकर्षण, और अनिरुद्धकी जो चर्चा है उसकी चर्चा भागवतधर्ममें इस प्रकार आयी है ' वासुदेवरूपी परमेश्वरसे संकर्षणरूपी जीव उत्पन्न हुआ; और फिर संकर्षणसे प्रद्युम्न अर्थात् मन तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार हुआ; कुछ लोग तो इन चार व्यूहोंमेंसे दो, तीन या एक हीको मानते हैं, (देखो गीता रहस्य पृ० ४२६)। सूर्यसिद्धान्तमें प्रद्युम्न की चर्चा नहीं है। यहां अहङ्कारको ही ब्रह्मा बतलाया है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीको ही पंचमहाभूत कहते हैं। आकाशमें एक गुण शब्द, वायुमें दो गुण शब्द, स्पर्श; अग्निमें तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलमें चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीमें पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध माने गये हैं इसीलिए २३वें श्लोकके उत्तरार्धमें बतलाया गया है कि एक एक गुणकी वृद्धिसे पंचमहाभूतों की उत्पत्ति क्रमसे हुई है।

पांच ग्रहोंकी उत्पत्ति—

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः ।
तेजो भूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्चजज्ञिरे ॥२४॥

अनुवाद—अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमाकी उत्पत्तिके बाद तेज अर्थात् अग्निसे मंगल, पृथ्वीसे बुध, आकाशसे बृहस्पति, जलसे शुक्र और वायुसे शनि उत्पन्न हुए।

ब्रह्मांड का वंशवृक्ष

पुरुष ---→ (दोनों स्वयंभू और अनादि) ←--- प्रकृति (अव्यक्त और सूक्ष्म)

- प्रकृति (अव्यक्त और सूक्ष्म)
  - महान् अथवा बुद्धि (व्यक्त और सूक्ष्म)
    - अहंकार (व्यक्त और सूक्ष्म)
      - (सात्विक सृष्टि अर्थात् व्यक्त और सूक्ष्म इन्द्रियाँ)
        - पांच बुद्धीन्द्रियां
        - पांच कर्मेन्द्रियां
        - मन
      - (तामस अर्थात् निरिंद्रिय सृष्टि)
        - पञ्चतन्मात्राएं (सूक्ष्म)
          - पञ्च महाभूत (स्थूल)

१२ राशियों और २७ नक्षत्रोंकी उत्पत्ति—

पुनर्द्वादशधात्मानं व्यभजद्राशिसंज्ञकम् ।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥२५॥

अनुवाद—फिर जितात्मा ब्रह्मा ने मनः कल्पितवृत्तको पहले १२ राशियोंमें फिर २७ नक्षत्रोंमें बांटा ।

चराचर जगत्की उत्पत्ति—

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देव पूर्वकम् ।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्याथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन् ॥२६॥
गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् ।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ॥२७॥
ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः ।
देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथा क्रमम् ॥२८॥
ब्रह्माण्डमेतत्सुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम् ।
कटाह द्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः ॥२९॥

अनुवाद—(२६) इसके पश्चात् श्रेष्ठ, मध्यम और अधम स्रोतोंसे सत्व, रज और तम विभेदात्मक प्रकृतिका निर्माण करके देवता, मनुष्य, राक्षस आदि चराचर विश्व की रचना की । (२७) गुण और कर्मके अनुसार पूर्वोक्त क्रम से सृष्टि रचकर वेदोंमें बतलायी हुई रीतिके अनुसार देश कालके अनुसार इसके विभाग किये । (२८) समर्थवान् ब्रह्माने ग्रहों, नक्षत्रों, तारों, पृथ्वी, संसार, देवताओं, राक्षसों, मनुष्यों और सिद्धोंका यथाक्रम स्थापन किया, (२६) दो समान

कड़ाहोंके मुँह मिला देनेसे जैसा खोखला गोला बनता है उसी प्रकारके इस ब्रह्माण्डके अवकाशमें भूर्भुवः आदि लोक स्थित हैं।

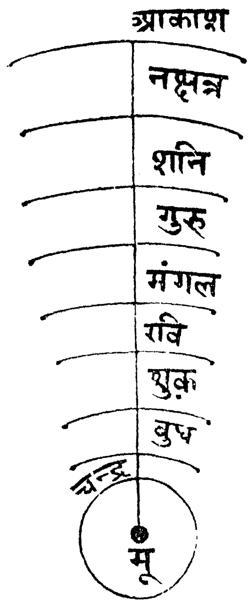
ब्रह्माण्डमें ग्रहोंकी कक्षाओंका क्रम—

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य शुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्ध विद्याधराघनाः ॥३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमांशक्तिं ब्रह्मणोधारणात्मिकाम् ॥३२॥

अनुवाद—(३०) ब्रह्माण्डकी परिधिको आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं; फिर उसके नीचे क्रमानुसार (३१) शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ हैं। (३२) इस ब्रह्माण्डके बिलकुल बीचमें यह भूगोल ब्रह्माकी धारणात्मिका परम शक्तिके बल पर शून्यमें ठहरा हुआ है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीनों श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि ब्रह्माण्डकी परम परिधिके भीतर नक्षत्रों और ग्रहोंकी कक्षाएं किस क्रमसे हैं। हमारी पृथ्वीका स्थान इस ब्रह्माण्डके बिल्कुल मध्यमें माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्डके केन्द्रमें है। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्तके प्रतिकूल

है। अर्वाचीन ज्योतिषमें सूर्य जगत्‌का केन्द्र समझा जाता है। सूर्यके सबसे निकट बुध ग्रहकी कक्षा है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनिकी कक्षाएं क्रमानुसार दूर



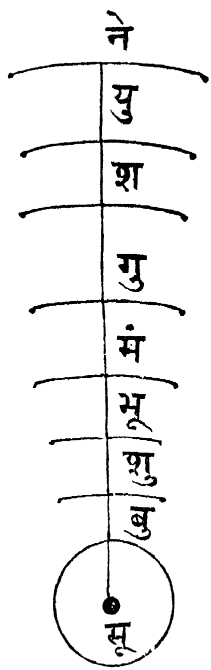
चित्र १२१

भारतीय ज्योतिषके अनुसार कक्षाओंका क्रम (पृथ्वी केन्द्रमें)

होती गयी हैं। चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रोंकी कक्षा अर्वाचीन ज्योतिषके अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं हैं। आकाश कक्षाकी सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि

आजकल कुछ तारोंकी दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षाकी सीमा उसके सामने नगण्य है। नीचेके दो चित्रोंसे हिन्दू ज्योतिष और अर्वाचीन ज्योतिषके मतोंकी भिन्नता अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

पृथ्वी और चन्द्रकक्षाके बीचमें मेघों, विद्याधरों और सिद्धोंके लोक हैं जो इस चित्रमें नहीं दिखलाये जा सके।



चित्र १२२

अर्वाचीन ज्योतिषके अनुसार ग्रहकी कक्षाओंका क्रम (यहाँ सूर्यकेन्द्रमें है)

इस चित्रमें चन्द्रमाको कक्षा नहीं दिखलायी गयी है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है और पृथ्वीके साथ साथ सूर्यके भी चारों ओर जाता है। ऐसे कई चन्द्रमा मंगल, गुरु और शनिके चारों ओर भी भ्रमण करते हुए देखे गये हैं। चित्र १२२ में कक्षाओंकी दूरी प्रायः समान देख पड़ती है और आकार गोल, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। इसका विचार आगे किया जायगा; यहां तो केवल क्रम दिखलाया गया है।

श्लोक ३२ में जिस धारणात्मिका शक्तिकी चर्चा है उसे ही आजकल गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। इस श्लोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार हमारी पृथ्वी शून्यमें स्थित मानी गयी है। इसको कोई जीव थांमे हुए नहीं है। परमेश्वरकी जिस शक्तिके बल पर यह पृथ्वी शून्यमें ठहरी हुई है उसे धारणात्मिकाशक्ति कहा गया है। आजकल यह माना जाता है कि पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह इत्यादि सूर्यके गुरुत्वाकर्षणसे बंधे हुए हैं और ग्रहों, उपग्रहोंकी गतियोंका कारण भी यही गुरुत्वाकर्षण है।

भूगोलमें पाताल, सुमेरु आदिके स्थान :—

तदन्तरपुटाः सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
दिव्यौषधि रसोपेता रम्याः पाताल भूमयः ॥३३॥
अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥
उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वत् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥३५॥

ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः।
मेखलेऽवस्थितोधात्र्या देवासुरविभागकृत ॥३६॥

अनुवाद—(३३) इस भूगोलके भीतरी परतोंमें अति सुन्दर सात पाताल भूमि हैं जहां नाग और असुर रहते हैं और जहां प्रकाश देनेवाले और रसीले वृक्ष हैं। (३४) नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा हुआ, स्वर्णमयी जाम्बू नदीसे सुशोभित, भूगोलके आर पार दोनों ओर निकला हुआ सुमेरु पर्वत है। (३५) इस सुमेरु पर्वतके ऊपरकी ओर इन्द्रके साथ देवता और महर्षि लोग रहते हैं और नीचेकी ओर असुर रहते हैं। ये देवता और असुर एक दूसरेके शत्रु हैं। (३६) इस सुमेरु पर्वतके चारों ओर घेरे हुए यह महासागर (लवण समुद्र) पृथ्वीकी मेखलाकी तरह स्थित है तथा देवताओं और असुरोंका विभाग कर देता है।

विज्ञान भाष्य—भूगोलके भीतर सात पाताल देश माने गये हैं जिनके नाम अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल हैं। यहां नागों और असुरोंका निवास है। सुमेरु पर्वतके पास जम्बूनदी है। यह पर्वत भूगोलके केन्द्रसे होता हुआ दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर निकला हुआ माना गया है। उत्तरी ध्रुव पर देवता और दक्षिणी ध्रुव पर असुर रहते हैं जो परस्पर शत्रु हैं। इस मेरु पर्वतको घेरे हुए पृथ्वीके चारों ओर लवण समुद्र है जो देवताओं और असुरोंकी भूमिको अलग करता है और पृथ्वीकी मेखलाकी तरह है।

इस वर्णनमें बहुत सी बातें कल्पनासे उत्पन्न हुई जान पड़ती हैं इसलिये इन सबका अस्तित्व नहीं बतलाया जा सकता उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंको सुमेरु पर्वतके ऊपर और नीचे वाले सिरे समझना चाहिये। इसके बीचमें विषुवत् रेखाके पास लवण समुद्र माना गया है जो आजकल भी प्रायः इसी स्थितिमें है।

विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियोंका वर्णन :—

समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादि नगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकार तोरणा ॥३८॥
याम्यायां भारतेवर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धामहात्मानो निवसन्ति गतव्यथा ॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥४२॥

अनुवाद—(३७) मेरुके मध्य भागके चारों ओर समुद्रके समान अन्तर पर जम्बू द्वीपके पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर

दिशाओंमें देवताओंकी बनाई हुई चार नगरी हैं। (३८) पूर्वमें भूपरिधिके चतुर्थान्श पर भद्राश्व वर्षमें यमकोटी नगरी प्रसिद्ध है जहां सोनेके दीवार और फाटक हैं; (३९) दक्षिणमें भारतवर्षमें उसी प्रकार लङ्कापुरी और पश्चिममें केतुमाल देशमें रोमकपुरी प्रसिद्ध हैं; (४०) उत्तरमें कुरु देशमें सिद्धपुरी है जहां सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त सिद्ध, महात्मा लोग रहते हैं। (४१) यह नगरियां एक दूसरेसे भूपरिधिके चतुर्थान्श अन्तर पर स्थित हैं जिनसे उत्तर दिशामें उतने ही अन्तर पर देवताओंका निवास स्थान मेरु है। (४२) जब सूर्य विषुव वृत्त पर आता है तब इन नगरियोंके ठीक ऊपर होता है इसलिए न वहां विषुवच्छाया होती है और न अक्षांश ही होता है।

विज्ञान भाष्य—इन छः श्लोकोंमें विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों की स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है। ये नगरियां एक दूसरेसे भूपरिधिके चतुर्थांश अन्तर पर हैं अर्थात् यह एक दूसरेसे ९० अंशके अन्तर पर हैं और उत्तर मेरु (उत्तरी ध्रुव) भी इतने ही अन्तर पर इनसे उत्तरमें है। इन नगरियों की दिशायें भारतवर्षसे मानी गयी हैं। भारतवर्षके दक्षिण विषुवत् रेखा पर लङ्का नगरी है जिसका स्थान मध्यमाधिकारके ६२ वें श्लोकके अनुसार उज्जैनकी देशान्तर रेखा पर माना जाना चाहिए (पृष्ठ ९६)। ग्रीनिचसे उज्जैन का देशान्तर ७६ अंशके लगभग है। इसलिये यदि लङ्का इसी देशान्तर पर और विषुवत् रेखा पर मानी जाय तो आजकल यहां समुद्र है। इससे ९० अंश पूर्व का स्थान ग्रीनिचसे १६६ अंश पूर्व देशान्तर पर है। इसलिए यमकोटी नगरी की जगह भी आजकल समुद्र है। लङ्कासे ९० अंश पच्छिम अथवा

ग्रोनिचसे १४ अंश पच्छिम देशान्तर पर भी विषुवत् रेखा पर स्थल का नाम नहीं हैं इसलिए रोमक नगरी का भी पता नहीं लगाया जा सकता। यह रोमक नगरी आजकलके पच्छिमी अफरीकाके फ्रीटाउनसे ५० मील के लगभग दक्षिण रही होगी। इसी प्रकार सिद्धपुरी वर्तमान् मेक्सिकोसे १००० मीलसे भी अधिक दक्षिण रही होगी।

यदि इन चार पुरियों का अस्तित्व कभी रहा होगा तो वह काल बहुत ही प्राचीन होगा क्योंकि आजकल तो इतना अन्तर पड़ गया है कि उस काल का कोई चिह्न वर्तमान नहीं है। यह भी सम्भव है कि इन चार पुरियों का अस्तित्व कवि की कल्पनामें ही रहा हो और आलंकारिक भाषामें इस बात का वर्णन किया गया हो कि विषुवत् रेखा पर ये चार स्थान ऐसे हैं कि जब लङ्कामें मध्याह्न होता है तब रोमक में सूर्योदय, सिद्धपुरीमें मध्यरात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त।

यह तो स्पष्ट ही है कि जब सूर्य विषुवत्रेखाके खस्वस्तिक पर रहता है तब वहां मध्याह्नकालमें किसी खड़ी वस्तु की कोई छाया नहीं पड़ती। इस रेखाके क्षितिज पर उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं इसलिए यहां ध्रुव तारेकी ऊँचाई शून्य होती है। इसलिए अक्षांश भी शून्य होता है। इसी कारण विषुवत् रेखाको निरक्ष देश कहा गया है। इसका और स्पष्ट वर्णन अगले तीन श्लोकों में है।

मेरु पृथ्वीके बीचसे होता हुआ दोनों ओर निकला हुआ बतलाया गया है इसलिए इसे पृथ्वी का अक्ष समझना चाहिए जिसका उत्तरी सिरा उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी सिरा दक्षिणी ध्रुव कहलाते हैं। इसी अक्ष के मध्य अर्थात् भूकेन्द्रके

चारों ओर समान पूरी पर विषुवत् रेखा मानी गयी है जो जम्बूद्वीप और लवण समुद्र की सीमा समझी गयी थी।

विषुवत् रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवों का सम्बन्ध—

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते।
निरक्षदेश संस्थानामुभयेक्षितिजाश्रये ॥४३॥
अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः।
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा ॥४४॥
मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम्।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५॥

अनुवाद—(४३) मेरुके दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंकी तरफ आकाशमें स्थित ध्रुवतारे ठीक खमध्यमें हैं; निरक्ष देशमें रहनेवालों को ये दोनों तारे क्षितिजमें देख पड़ते हैं। (४४) इसलिये इन नगरियोंकी क्षितिज रेखा पर दोनों ध्रुवतारोंके होनेके कारण इन पुरियों का अक्ष ऊँचा नहीं है अर्थात् इनका अक्षांश शून्य है परन्तु लम्बांश ९० है। इसी प्रकार मेरुओं का अर्थात् ध्रुवोंका अक्षांश ९० है। (४५) सूर्य जब देव-भागमें अर्थात् उत्तरी गोलार्धमें रहता है तब मेषके आदि स्थानमें देवताओंको उसका प्रथम दर्शन होता है और जब सूर्य असुर भागमें अर्थात् दक्षिणी गोलार्धमें रहता है तब तुलाके आदिमें वह असुरोंको पहले पहल देख पड़ता है।

विज्ञानभाष्य—यहां बतलाया गया है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके खमध्यमें ध्रुवतारे हैं जो निरक्षदेश की क्षितिज पर हैं।

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन कालमें जब सूर्य-सिद्धान्त कहा गया था तब दो ध्रुवतारे रहे होंगे। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे उत्तरी ध्रुवके खमध्यमें एक तारा है वैसे ही दक्षिणी ध्रुवके खमध्यमें भी एक तारा समझा गया होगा। परन्तु यह निश्चय है कि उत्तरी ध्रुवके खमध्य में इस समय जो तारा देख पड़ता है वह प्राचीन कालमें इस स्थान पर नहीं था क्योंकि अयन-चलनके कारण इसका स्थान भी बदल रहा है (देखो पृष्ठ ३५४-३५६)। इस लिए यहां जिन ध्रुव तारोंका वर्णन है वे आकाशीय ध्रुवोंके स्थान हैं जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके खमध्यमें हैं। इनसे किसी तारेका सनातन सम्बन्ध नहीं है। जब अयन-चलनके कारण कोई तारा इनके पास आजाता है तब वह भी प्रत्यक्षमें ध्रुव तारा कहलाने लगता है।

यह कई जगह बतलाया जा चुका है कि विषुवत् रेखा पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° तथा उत्तरी दक्षिणीध्रुवों पर अक्षांश ९० और लम्बांश शून्य कैसे होता है (देखो पृष्ठ ८८,८९, ३७८,३७९ इत्यादि)।

श्लोक ४५ बड़े महत्वका है। इसमें बतलाया गया है कि जब सूर्य मेष राशिके आदिमें होता है तब देवताओंको पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब उत्तरी ध्रुव निवासियोंके लिए सूर्यका उदय होता है और जब वह तुला राशिके आदिमें होता है तब असुरोंको पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब दक्षिणी ध्रुव निवासियोंके लिए उसका उदय होता है। इससे प्रकट होता है कि मेष राशिका आदि स्थान उसे ही समझना चाहिए जहां क्रान्तिवृत्त और विषवन्मण्डल का योग होता है

और जहां पहुंचकर सूर्य उत्तर गोलमें हो जाता है। इसी स्थानको वसंत-संपात-बिन्दु कहते हैं। इसी प्रकार तुला का आदि बिन्दु शरद्-सम्पात-बिन्दु है जहां पहुंच कर सूर्य दक्षिण गोलमें हो जाता है। जब सूर्य मेषके आदिमें विषुवन्मंडल पर आता है तभी उत्तरी ध्रुव वालोंके लिए सूर्योदय होता है और इससे ६ महीने तक बराबर सूर्य देख पड़ता है। इसी समय को देवताओं का दिन कहते हैं। और असुरोंकी रात क्योंकि जब तक सूर्य उत्तर ध्रुव वालों को देख पड़ता है तब तक वह दक्षिण ध्रुववालोंके लिए अदृश्य रहता है और वहां रात रहती है। जिस समय सूर्य तुला राशिके आदिमें पहुंचता है उस समय उत्तरी ध्रुव पर सूर्यास्त और दक्षिणी ध्रुव पर सूर्योदय होता है इस समयसे ६ महीने तक सूर्य दक्षिण ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है और वहां ६ महीने का दिन होता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तथा विषुवत् रेखा पर यह विशेषताएं इसीलिए होती हैं कि ध्रुव विषुवत् रेखासे ९० अंशके अन्तर पर है (देखो पृष्ठ ९२, ९३)।

सूर्यकी किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं ?

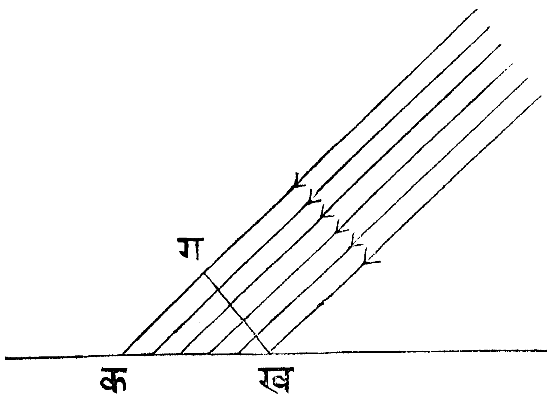
अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः।
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ॥४६॥

अनुवाद—जब सूर्य देवभागमें अर्थात् उत्तर गोल में रहता है तब देवताओंके बहुत निकट होनेके कारण ग्रीष्म ऋतुमें उसकी किरणें बड़ी तीव्र होती हैं और हेमन्त ऋतुमें दूर होनेके कारण मन्द होती हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकमें बतलाया गया है कि ग्रीष्मऋतु

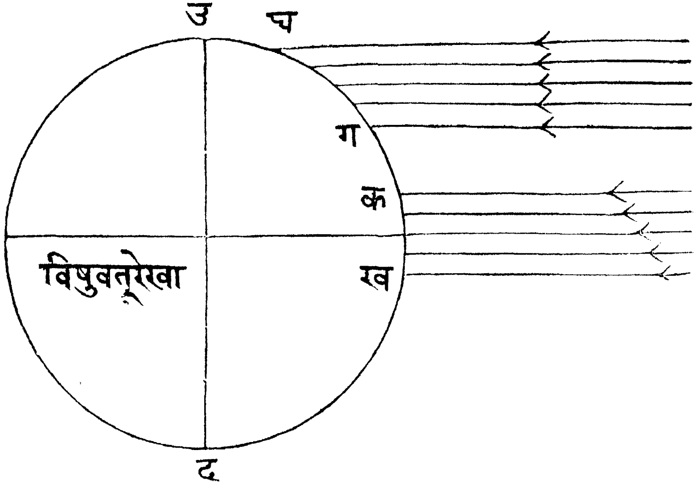
में सूर्य की किरणें इस लिए तीव्र होती हैं कि सूर्य निकट होता है और हेमन्त ऋतुमें इस लिए मन्द होती हैं कि सूर्य दूर रहता है परन्तु यह ठीक नहीं है। आजकल यथार्थमें ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य पृथ्वीसे दूर होता है और हेमन्त ऋतुमें निकट जैसा कि उसके बिम्बोंके आकारसे जान पड़ता है (देखो पृष्ठ १२८-१२६)। यथार्थ कारण यह है कि ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य की किरणें लम्बरूपमें खड़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता अधिक होती है और हेमन्त ऋतुमें सूर्यके नीचे होनेके कारण किरणें टेढ़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता कम पड़ जाती है। यह बात प्रति दिन देखी जाती है। मध्याह्नमें सूर्य ऊँचा होता है इस लिए इसकी किरणें प्रायः खड़ी रहती हैं और गरमी भी बढ़ जाती है। परन्तु प्रातःकाल और सायं-काल इसकी किरणें बहुत तिरछी रहती हैं इसलिये उतनी गरमी नहीं रहती। यही दशा सारे भूपृष्ठ पर एक वर्षकी अवधिमें होती है। विषुवत्रेखाके आस पासके देशों में सूर्य साल भर तक प्रायः सिर पर देख पड़ता है इसलिये इसकी किरणें लम्बरूपसे खड़ी आती हैं और बड़ी तीव्र होती हैं परन्तु उत्तर दक्षिण ध्रुवों पर सूर्यकी किरणें बहुत तिरछी हो जाती हैं इसलिये वहां सदैव ठंडक रहती है। यह बात चित्र १२३ से स्पष्ट हो जायगी। इस चित्रमें दिखलाया गया है कि सूर्यसे आती हुई किरणें ग ख तल पर लम्ब हो कर गिरती हैं और वही किरणें क ख तल पर तिरछी हो जाती हैं। यह स्पष्ट है कि क ख तल ग ख तलसे बड़ा है क्योंकि यह समकोण त्रिभुज क ग ख का कर्ण है इसलिये जब वही किरणें अधिक स्थानमें फैल जाती हैं तब उनकी शक्ति कम पड़ जाती है और ग ख तल पर जितनी

गरमी होती है उतनी क ख तल पर नहीं हो सकती। इसका अनुभव पढ़े, बे पढ़े सभीको है, क्योंकि जब सूर्यकी किरणें तिरछी आती हैं तब लोग किसी वस्तुको सुखानेके लिये उसे ऐसे तल पर रखते हैं जो इस प्रकार टेढ़ा कर दिया जाता है कि किरणें लम्ब रूपमें गिरें।



चित्र १२३

चित्र १२४ से प्रकट होता है कि विषुवत् रेखाके आस पास सूर्य की किरणें जितनी आती हैं उतनी ही किरणें विषुवत्रेखासे दूरके देशोंमें तिरछी होनेके कारण अधिक क्षेत्रफलमें फैल जाती और मन्द पड़ जाती हैं। इस चित्रसे स्पष्ट देख पड़ता है कि जितनी किरणें विषुवत्रेखाके पास क ख भूभाग पर पड़ती हैं उतनी ही किरणें उत्तर ध्रुवके निकट ग घ भूभाग पर पड़ती हैं जो क्षेत्रफलमें कहीं अधिक होता है इसलिये फैल जानेके कारण इनकी तीव्रता कम पड़ जाती है।



चित्र १२४

देवताओं और असुरोंके दिनरातके विभाग—

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे ॥४७॥

मेषादावुदितः सूर्यस्त्रीन्राशीनुदगुत्तरम् ।
सञ्चरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥४८॥

कर्कादीन्सञ्चरंस्तद्वदह्नः पश्चार्धमेव सः ।
तुलादींस्त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥४९॥

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात् ।
अहोरात्र प्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात् ॥५०॥

अनुवाद—(४७) जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिन रात एक दूसरेके विपरीत होता है। (४८) मेष राशिके आदिमें उदय होकर सूर्य उत्तरकी तीन राशियों मेष, वृष और मिथुनमें उत्तरकी ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरु-निवासियों अर्थात् देवताओंके दिनका पूर्वार्ध पूरा करता है। (४६) उसी प्रकार कर्क राशिके आदिसे आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुलामें वह उनके दिनका उत्तरार्ध पूरा करता है। इसी प्रकार तुला वृश्चिक और धनु राशियोंमें जाता हुआ वह असुरोंके दिनका पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें जाता हुआ वह असुरोंके दिनका उत्तरार्ध पूरा करता है। (५०) इसलिये देवताओं और असुरोंके अहोरात्र एक दूसरेके विपरीत होते हैं और सूर्यका एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है।

विज्ञानभाष्य—जिस दिन सूर्य वसंत-संपात-बिन्दु पर आता है उस दिनको विषुव-दिन कहते हैं। इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके क्षितिजपर रहता है इसलिये उत्तर ध्रुवके निवासियों देवताओंको और दक्षिण ध्रुवके निवासियों असुरों को क्षितिज पर देख पड़ता है। परन्तु सूर्यकी गति उत्तर होने के कारण वह देवताओंको उदय होता हुआ और असुरोंको अस्त होता हुआ देख पड़ता है। अर्थात् इस दिनसे देवताओं के दिनका और असुरोंकी रातका आरंभ होता है। सूर्यके इस स्थानको अर्थात् वसंत-सम्पात-बिन्दुको मेषका आदि स्थान कहा गया है। इसके बाद सूर्य उत्तरकी ओर प्रतिदिन बढ़ता है। जब यह वसंत-संपात बिन्दुसे ६० अंश पर पहुँचता

है तब इसका उत्तरकी ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्यकी परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसीदिन देवताओंका मध्याह्न होता है और असुरोंकी मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात-बिन्दुसे ९० अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियां होती हैं। जब सूर्य कर्कराशिके आरंभसे लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियोंको पार करके तुलाके आदिमें पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओंको यह अस्त होता हुआ देख पड़ता है। इसलिये इस समयसे देवताओंकी रात और असुरोंके दिनका आरंभ होता है। सूर्यका यह स्थान शरद्-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिनको भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियोंमें रहता है तब तक असुरोंका पूर्वाह्न और देवताओंकी पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशिके आदिमें पहुंचता है तब देवताओंकी मध्यरात्रि और असुरोंका मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें होता है तब असुरोंका अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्यका एक फेरा जितने समयमें पूरा होता है उतने समयमें देवताओं या असुरोंका एक अहोरात्र होता है। परन्तु देवताओंका जो दिन है वही असुरोंकी रात और देवताओंकी जो रात है वह असुरोंका दिन।

इस वर्णनसे यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियोंका आरंभ वसंत-सम्पातसे माना गया है न कि निरयण मेषसे जो आजकल वसंत-सम्पातसे २३ अंशसे भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पातसे सदैव आगे होता जा रहा है। इसी

अन्तरको अयनांश कहते हैं। १४०० वर्षसे कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ साथ थे इसलिये इस समय मेषका आदि स्थान वही था जिसे आज कल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आज कल ज्योतिषियोंमें दो भेद होगये हैं, सायन-वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायन-वादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पातको ही मेषका आदि स्थान मानते हैं। परन्तु निरयण-वादी लोग निरयण मेषको राशियोंका आरंभ स्थान मानते हैं। सूर्य-सिद्धान्तमें सायन और निरयणका भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्यसिद्धान्त लिपिबद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आज कल निरयण मेषका आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनोंकी चर्चा है।

देवताओं या असुरोंके अहोरात्रके वर्णनसे, जो सूर्यसिद्धान्त में कई जगह आया है, यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्षके समान होता है और यही वर्षका स्वाभाविक मान है। परन्तु इस अहोरात्रका प्रमाण सूर्यके भगण-कालके समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकारके श्लोक २६ और ३७ के अनुसार ३६५.२५८७५६ मध्यम सावन दिनके समान होता है और सायन वर्षसे ·०१६५४० मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगण-काल शुद्ध नाक्षत्र-सौर-वर्षसे भी .००२३८२ दिन बड़ा है (देखो पृष्ठ ३६० की पाद-टिप्पणी)। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्तमें सायन वर्षका मान स्थूल रूपसे सूर्यके भगण कालके समान मान लिया गया है।

देवासुरोंका मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचेका क्या अर्थ है—

दिनक्षपार्धमेतेषामयनान्ते विपर्ययात् ।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ॥५१॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम् ।
भद्राश्वकेतुमालस्था लङ्कासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम् ।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्वाप्यधः ॥५३॥

अनुवाद—(५१) देवताओं और असुरोंका मध्याह्न और मध्यरात्रि अयनके अंतमें एक दूसरेके विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपनेको दूसरेसे ऊपर मानते हैं। (५२) जो लोग भूव्यासकी दिशामें रहते हैं वे भी दूसरेको अपनेसे नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्षके (यमकोटि नगरके) रहने वाले केतुमाल देशके (रोमक नगरके) रहने वालोंको और लङ्का नगरके रहने वाले सिद्धपुर वालोंको अपनेसे नीचे समझते हैं। (५३) इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थानको ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाशमें स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहां है ?

विज्ञान-भाष्य—५१ वें श्लोक का पूर्वार्ध ५० वें श्लोकसे सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध यह बतलाता है कि देवता और असुर दोनों अपनेको दूसरेसे ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगेके दो श्लोकोंमें उदाहरणके साथ बतलाया गया है।

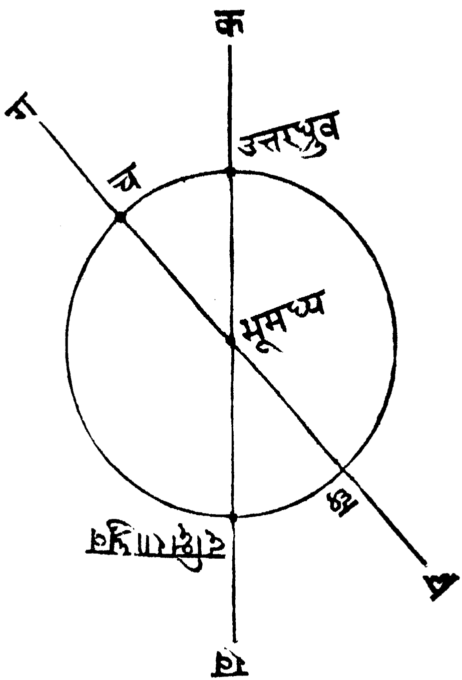
अयनके अन्तमें देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशिमें प्रवेश करता है उस समय यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियोंके लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशिमें प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचेकी बात भी समझना कठिन नहीं है क्योंकि सब लोग उस दिशा को ऊपर मानते हैं जो आकाशके मध्यमें होता है और इसकी विपरीत दिशा को नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगहके रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यासके दूसरे सिरे पर रहने वालोंको नीचे समझते हैं।

चित्र १२५ में गोल रेखा भूपृष्ठ है। उत्तर ध्रुवके रहने वालों को वह दिशा ऊपर है जिसमें क अक्षर दिखलाया गया है और इसकी विपरीत दिशा वह है जिधर भू मध्य है। परन्तु इस दिशा की सीधमें भूगोल की दूसरी ओर दक्षिण ध्रुव है इसलिए दक्षिण ध्रुव उत्तर ध्रुवसे नीचे देख पड़ता है। परन्तु दक्षिण ध्रुव वालोंके लिए वह दिशा ऊपर है जिसमें ख अक्षर दिखालाया गया है और भूमध्य की दिशा अथवा उत्तर ध्रुव नीचे है। यह बात चित्र को उलट कर पढ़नेसे सहज ही समझमें आसकती है। इसी प्रकार च स्थानके लिए ग की दिशा ऊपर और छ या घ की दिशा नीचे है परन्तु छ स्थानके लिए घ की दिशा ऊपर और च या ग की दिशा नीचे है।

पृथ्वी चपटी देख पड़नेका कारण—

अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतोमुखम् ।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥५४॥



चित्र १२५

अनुवाद—मनुष्य पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत छोटे होनेके कारण अपने स्थानसे गोल पृथ्वीको सब दिशाओंमें चक्राकार देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—किसी वृत्तके बहुत छोटे खण्डके धनु और उसकी ज्यामें इतना कम अन्तर होता है कि दोनों समान समझे जाते हैं अर्थात् धनु वक्र होने पर भी ज्याके समान होता है और धनु की वक्रता नहींके समान होती है। इसी लिए तो २२५ कला की ज्या भी २२५ कला ही समझी गयी है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक १५)। इसी प्रकार किसी गोल पिंडके पृष्ठका अत्यन्त छोटा भाग वक्र होने पर भी सम देख पड़ता है। यह गणना की जा सकती है कि समतल भूमि या किसी बड़ी झीलके तल पर खड़ा होकर चारों ओर देखनेसे मनुष्यको ३ या ४ मीलसे अधिक दूर तक का धरातल नहीं देख पड़ता।

मान लो ख भूतल पर एक स्थान है, कख मनुष्य की ऊँचाई है, घ भूगोल का केन्द्र है और कग सीधी रेखा है जो भूतलको ग बिन्दु पर स्पर्श करती है। रेखागणितसे यह सिद्ध है कि

$$\text{कग}^2 = \text{कख} \times \text{कच} = \text{कख}\ (\text{कख} + \text{खच})$$

$$\text{मान लो}\ \text{कख} = \text{उ},\ \text{खघ} = \text{घच} = \text{त्र},\ \text{कग} = \text{दृ}$$

$$\text{तब}\ \text{दृ}^2 = \text{उ} \times (\text{उ} + २\,\text{त्र}) = \text{उ}^2 + २\,\text{उ} \times \text{त्र}$$

यहां २ उ त्र की तुलनामें उ^2 इतना छोटा है कि नगण्य समझा जा सकता है क्योंकि त्र पृथ्वी की त्रिज्या है इसलिए यह ३६६० मीलके लगभग है और उ मनुष्य की ऊँचाई है जो १ मीलके हज़ारवें भागके लगभग है, इसलिए यह माना जा सकता है कि

$$\text{दृ}^2 = २\,\text{उ}\,\text{त्र} \cdots\cdots\cdots\cdots (१)$$

इस समीकरणमें सब नाप मीलोंमें है। यदि मान लिया जाय कि उ की नाप फुटमें फ हो तो

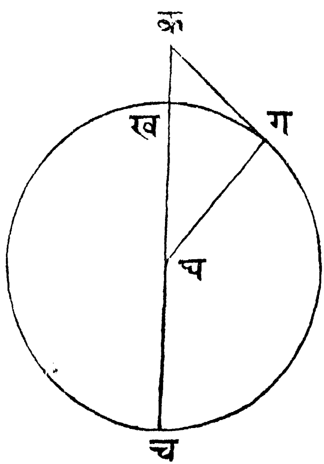
$$\text{फ} = \text{उ} \times \text{१७६०} \times \text{३}$$

$$\text{या} \quad \text{उ} = \frac{\text{फ}}{\text{३} \times \text{१७६०}}$$

उ का यह मान समीकरण (१) में उत्थापन करनेसे और त्र की जगह ३९६० रखनेसे

$$\text{द}^{२} = \text{२} \times \frac{\text{फ}}{\text{३} \times \text{१७६०}} \times \text{३९६०} = \frac{\text{३ फ}}{\text{२}}$$

$$\text{या} \quad \text{द} = \sqrt{\text{फ} \times \text{१·५}}$$



चित्र १२६

यहां द का मान मीलोंमें और फ का फुटमें समझना चाहिए। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य भूतल से जितने

फुट ऊपर हो उसका डेवढ़ा करके वर्गमूल लेनेसे जो आवे उतने ही मील दूर तक की क्षितिज वह देख सकेगा।

यदि मनुष्य कीऊँचाई ६ फुट हो तो उसकी क्षितिज ३ मील दूर होगी और ऊँचाई २४ फुट हो तो वह ६ मील दूर तक की क्षितिज चारों ओर देख सकेगा।

चित्रसे प्रकट है कि यदि कख ६ फुट हो तो कग ३ मील होगा और जो कग होगा वही खगको भी समझना चाहिए।

परन्तु भूतल की परिधि स्थूलरूपसे २५००० मील है और ६ फुट ऊँचे मनुष्य की क्षितिज का व्यास ६ मील है जो २५००० मीलके चार हज़ारवें भागसे भी कम है इसलिए उसे यदि गोलाकार पृथ्वी चक्राकार देख पड़ती है तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भूतल पर दिन रातके घटने बढ़ने का कारण—

सव्यं भ्रमति देवनामपसव्यं सुरद्विषाम्।
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः सदा ॥५५॥

अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा।
हानिवृद्धी सदा वामं सुरासुर विभागयोः ॥५६॥
मेषादौ तु सदा वृद्धिरुदगुत्तरतोऽधिका।
देवांशे च क्षपा हानिर्विपरीतं तथासुरे ॥५७॥
तुलादौ द्युनिशोर्वामं क्षयवृद्धी तयोरुभे।
देशक्रान्तिवशान्नित्यं तद्विज्ञानं पुरोदितम् ॥५८॥

अनुवाद—(५५) यह नक्षत्र-चक्र देवताओंके सव्य दिशामें अर्थात् बांयेंसे दहने और असुरोंके अपसव्य दिशामें अर्थात् दहनेसे बायें तथा निरक्ष देश वालोंके सिरके ऊपर पश्चिम दिशामें सदा भ्रमण करता है। (५६) इसलिए यहाँ निरक्ष देशमें ३० घड़ी का दिन और ३० घड़ी की रात होती है परन्तु देवताओं और असुरोंके विभागोंमें अर्थात् विषुवत् रेखासे उत्तर और दक्षिणके देशोंमें दिन रात की क्षय वृद्धि परस्पर विपरीत होती है। (५७) मेष राशिमें प्रवेश करनेके पश्चात् सूर्य जैसे उत्तर की ओर बढ़ता है विषुवत्रेखासे उत्तरके देशोंमें दिन-मान की वैसे ही वृद्धि और रात्रि की हानि होती है परन्तु विषुवत् रेखासे दक्षिणके देशोंमें इसका उलटा होता है अर्थात् वहाँ दिन का क्षय और रात्रि की वृद्धि होती है। (५८) तुलाराशिमें प्रवेश करनेके पश्चात् सूर्य जैसे जैसे दक्षिण की ओर बढ़ता है वैसे ही वैसे उत्तर भागमें दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि तथा दक्षिण भागमें दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है। दिन रात्रि की क्षय वृद्धि स्थानके अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति पर निर्भर है जिसका विचार पहले ही किया गया है।

विज्ञान भाष्य—५५ वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि उत्तर ध्रुव निवासियोंको नक्षत्र-चक्र सव्य दिशामें भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियोंको अपसव्य दिशामें। सव्य और अपसव्य शब्दोंकी व्याख्या विज्ञान भाष्य पृष्ठ १८६ में की गयी है। विषुवत् रेखाके निकट देशोंमें नक्षत्र चक्र सिरके ऊपर पूरबसे पच्छिमको भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है। विषुवत् रेखा पर दिनका परिमाण

३० घड़ीका और रात्रिका परिमाण भी ३० घड़ीका सदा होता है। इससे उत्तर और दक्षिणके देशोंमें दिन या रात्रिका परिमाण ३० घड़ी का केवल विषुव दिनको ही होता है जब सूर्यकी क्रान्ति शून्य होती है। अन्य कालोंमें जब सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरके देशोंमें दिन ३० घड़ीसे बड़ा और रात ३० घड़ीसे उतनी ही छोटी होती है परन्तु दक्षिणके देशोंमें दिन ३० घड़ीसे छोटा और रात उतनी ही बड़ी होती है और जब सूर्यकी क्रान्ति दक्षिण होती है तब दक्षिणके देशों में दिन बड़ा, रात छोटी तथा उत्तरके देशोंमें रात बड़ी, दिन छोटा होता है। दिन या रातकी क्षयवृद्धिका विचार सूर्यकी क्रान्ति और स्थानके अक्षांशके अनुसार किया जाता है जैसा कि स्पष्टाधिकारके ६०-६१ श्लोकों और उनके विज्ञान भाष्यमें बतलाया गया है।

नक्षत्र-चक्रके इस भ्रमणका कारण प्राचीनोंके मतसे प्रवह वायु और नवीन मतसे पृथ्वीकी दैनिक गति है जिसका विचार आगेके ७४ वें श्लोकके विज्ञानभाष्यमें किया जायगा।

इन श्लोकोंमें मेष और तुलाका अर्थ सायन मेष और सायन तुला समझना चाहिए क्योंकि दिनरातकी क्षयवृद्धि सायन राशियोंके ही अनुसार होती है।

विषुवरेखासे कितने योजन उत्तर या दक्षिण सूर्य ठीक ऊपर होता है।

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांश विभाजितम्।
अवाप्त योजनैरर्को व्यक्षाद्यात्युपरिस्थितः ॥५९॥

अनुवाद—भूपरिधिके योजनोंको सूर्यकी तात्कालिक क्रान्तिके अंशोंसे गुणा करके ३६० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उतने ही योजन विषुवत रेखासे दूर सूर्य ऊपर होता है।

विज्ञान भाष्य—सूर्यकी जो क्रान्ति होती है उतने ही अक्षांश पर वह ठीक ऊपर होता है। क्रान्ति यदि उत्तर हो तो अक्षांश उत्तर समझना चाहिए और क्रान्ति दक्षिण हो तो अक्षांश दक्षिण समझना चाहिए (देखो त्रि० पृ० ३८३—८४)। कौन अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर होता है इसकी गणना जैसे की जाती है वैसे ही इस श्लोकमें गणना करनेकी रीति बतलायी गयी है। भूपरिधिका मान योजनोंमें जो होता है वह ३६० अंशके समान है इसलिये अभीष्ट अक्षांश विषुवत् रेखासे कितने योजन पर है यही अनुपात इसमें बतलाया गया है।

३६० अंश : क्रान्त्यंश : : भूपरिधि योजन : अभीष्ट योजन।

६० घड़ीका दिन या ६० घड़ीकी रात कहाँ होती है—

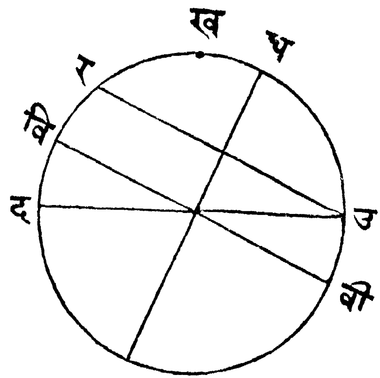
परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत्।
भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥६०॥
अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः।
नाड़ी षष्ट्या सकृदहर्निशाप्यस्मिन्सकृत्तथा ॥६१॥

अनुवाद—(६०) इसी प्रकार सूर्यकी परम-क्रान्तिसे योजनका मान जानकर इसको भूपरिधिके चतुर्थ भागसे घटानेसे जो आवे, विषुवत् रेखासे, उतने ही योजन पर (६१) अयनके अन्तमें अर्थात् सायन कर्क संक्रान्तिके दिन उत्तरमें ६० घड़ी

का एक दिन और दक्षिणमें ६० घड़ीकी एक रात तथा मकर संक्रान्तिके दिन दक्षिणमें ६० घड़ीका एक दिन और उत्तर में ६० घड़ीकी एक रात होती है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंका अर्थ समझनेके लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक ६०-६१ तथा चित्र ४२, ४३ और उसके विवरणको दुहरा लेना चाहिए। इन चित्रोंकी सहायतासे एक नया चित्र बनाकर यह जानना सुगम है कि जब सूर्यकी क्रान्ति परम होती है तब किस अक्षांश पर इसका अहोरात्रवृत्त क्षितिज रेखाके बिलकुल ऊपर हो जाता है। चित्र ४२ के ढंग पर चित्र १२७ बनाया गया है, अंतर केवल इतना है कि इस चित्रका केन्द्र उस स्थानको सूचित करता है जिसका लम्बांश सूर्यकी परम क्रान्तिके समान और अक्षांश उसके पूरक के समान है। उधखविद यहाँका याम्योत्तर-वृत, ख खस्वस्तिक, उद क्षितिजकी उत्तर दक्षिण रेखा, वि विषुवन्मण्डल का एक बिन्दु और र सूर्य है जब इसकी क्रान्ति परम होती है अर्थात् सायन कर्क संक्रान्तिक दिनका सूर्य है। उध यहांका अक्षांश है इस लिए वोउ=विर। यह स्पष्ट है कि रउ इस दिनके सूर्यका अहोरात्रवृत्त है जो क्षितिज के बिलकुल ऊपर है इस लिये इस दिन सूर्य क्षितिजके नीचे नहीं जायगा अथवा अस्त ही न होगा और ६० घड़ीका दिन होगा। इसके विपरीत इतने ही दक्षिण अक्षांश पर इस दिन सूर्य के अहोरात्र वृत्तका व्यास शून्य होगा अर्थात् ६० घड़ीकी रात होगी क्योंकि सूर्य वहांके क्षितिज रेखा पर ही ६० घड़ी तक रहेगा। जिस स्थानकी यह चर्चा है उसका अक्षांश आजकल ९०°—२३° २७′=६६° ३३′ है। क्योंकि सूर्यकी परम क्रान्ति

२३° २७' के लगभग है। उत्तर वाले स्थान को आजकल उत्तरी ध्रुव-मण्डल और दक्षिण वाले स्थानको दक्षिणी ध्रुव-मण्डल कहते हैं।



चित्र १२७

जैसे सायन कर्क संक्रान्तिके दिन उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का दिन और दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीकी रात होती है वैसे ही सायन मकर संक्रान्तिके दिन दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीका दिन और उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ीकी रात होती है। यह अवसर एक वर्षमें केवल एक बार आता है।

श्लोकोंमें अक्षांशको अंशोंमें न लिख कर योजनोंमें विषुवत् रेखासे दूरी बतलायी गयी है।

दिन-रात का प्रमाण ६० घड़ीका कहाँ होता है—

तदन्तरेपि षष्ठ्यन्ते क्षयवृद्धि अहर्निशोः।
परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्तते ॥६२॥

अनुवाद—इन अक्षांशोंके बीचके देशोंमें अहोरात्रका प्रमाण ६० घड़ीका होता है और इस समयके भीतर दिन और रातकी वृद्धि होती है परन्तु इसके सिवा अन्य स्थानोंमें यह नियम बदल जाता है क्योंकि वहां नक्षत्र-कक्षाकी स्थिति बदल जाती है।

दो महीनेका दिन या रात कहाँ होती है—

ऊने भूवृत्तपादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः।
धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ॥६३॥
तथा चासुरभागे तु मिथुने कर्कटे स्थितः।
नष्टच्छाया महीवृत्तपादे दर्शनमादिशेत् ॥६४॥

अनुवाद—(६२) दो राशियोंकी क्रांतिके योजनोंको भूपरिधि के चतुर्थांशसे घटाने पर जो आवे, विषुवत् रेखासे, उतने ही अन्तर पर उत्तरमें धनु और मकर राशिका सूर्य नहीं देख पड़ता और (६४) दक्षिणमें मिथुन और कर्क राशिका सूर्य नहीं देख पड़ता। क्योंकि जिस स्थान पर मध्याह्नकालमें छाया शून्य होती है उस स्थानसे भूपरिधिके चतुर्थांश तक सूर्य देख पड़ता है।

विज्ञान भाष्य—श्लोक ६४ के उत्तरार्धका अर्थ स्वामी विज्ञानानन्द जी ने अपनी बंगला टीकामें यह किया है कि जिस स्थानमें भूच्छाया नहीं है वहाँ सूर्यका दर्शन होता है। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीकामें इसका अर्थ यों किया गया है 'अभावं प्राप्ता छाया भूच्छाया यत्र तादृशे भूपरिधि चतुर्थांशे सूर्यस्य दर्शनं सदा कथयेत्'। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी तथा

माधव पुरोहितकी हिन्दी टीकामें इसका अर्थ ही नहीं है। मैंने इसका अर्थ यों किया है कि जिस स्थान पर किसी वस्तु की मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है उस स्थानसे भूपरिधि के चतुर्थ भाग पर्यन्त तक उस दिन सूर्य देख पड़ता है। क्योंकि जहाँ मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है वहीं के ख-स्वस्तिक पर सूर्य होता है और यहींसे ९० अंश तक चारों ओर सूर्य इस समय देख पड़ता है। इसके सिवा 'छाया' का अर्थ भूच्छाया करना ठीक नहीं, मध्याह्न छाया ही उचित है। इसलिए 'नष्टच्छाया' का अर्थ है वह स्थान जहाँ की मध्याह्न छाया शून्य हो।

इन दो श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जब सूर्य सायन धनु और मकर राशियोंमें रहता है तब कहाँ दो मासकी रात होती है। जब सूर्य सायन धनुमें प्रवेश करता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०′ होती है (देखो पृष्ठ ४६५) और जब तक यह धनु और मकर राशियोंमें रहता है तब तक इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है। अब देखना है कि जब सूर्यकी दक्षिण क्रांति २०° १०′ होती है तब यह भूपृष्ठ के किस भाग पर दिखाई पड़ सकता है। यह स्पष्ट है कि इस समय सूर्य उस स्थानके ख स्वस्तिक पर रहता है, जिसका दक्षिण अक्षांश २०° १०′ है। इसलिए इस स्थान पर मध्याह्नकालिक छाया भी शून्य होगी और यहाँसे भूपरिधि के चतुर्थ भाग तक अर्थात् ९० अंश उत्तर दक्षिण तक सूर्य दिखाई पड़ सकता है। २०° १०′ दक्षिण अक्षांश से ९० अंश उत्तरके स्थानका अक्षांश ९०° − २०° १०′ = ६९° ५०′ हुआ। इसलिए इस दिन सूर्यकी किरणें यहीं तक जा सकती हैं।

इसके बाद जब तक सूर्यकी दक्षिण क्रांति २०° १०′ से अधिक दक्षिण होगी तब तक वह ६९° ५०′ के उत्तर अक्षांश पर नही देख पड़ेगा अर्थात् इस स्थान पर दो मास की रात होगी। इसके प्रतिकूल ६९° ५०′ दक्षिण अक्षांश पर दो महीने का दिन होगा। इस स्थानका योजनात्मक अन्तर विषुवत् रेखा से क्या होगा यही जाननेका नियम इन दोनों श्लोकोंमें बतलाया गया है जो श्लोक ५९ में बतलाये गये नियमके अनुसार है और जिसका व्यवहार श्लोक ६०—६१ में किया गया है।

इसी तरह जब सूर्य सायन मिथुन और कर्क राशियोंमें रहता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है जिससे ६९° ५०′ उत्तर अक्षांश के स्थानों पर इन दो महीने तक सूर्य बराबर देख पड़ता है इसलिए यहाँ दो मास का दिन होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर लगातार दो महीने तक सूर्य अदृश्य होने के कारण रात रहती है।

चार महीने का दिन या रात कहां होती है—

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः ।
भूमिकक्षा चतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥६५॥
धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते ।
देवभागेऽसुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥६६॥

अनुवाद—(६५) एक राशिकी क्रान्तिके योजनोंको भूपरिधिके चतुर्थांशसे घटाने पर जो आवे विषुवत् रेखासे उतने ही अन्तर पर (६६) उत्तरमें धनु, मकर, कुम्भ, और

मीन राशियोंका सूर्य नहीं देख पड़ता और दक्षिणमें वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियोंका सूर्य नहीं देख पड़ता।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियोंमें रहता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति एक राशि की क्रान्तिसे अर्थात् ११° २९′ से अधिक होती है इसलिए इन चार महीनोंमें सूर्य उस स्थान पर नहीं देख पड़ता जिसका उत्तर अक्षांश ९०°—११° २९′=७८° ३१′ है। इसका फल यह होता है कि इन दिनों यहां चार महीने की रात होती है परन्तु ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीनेका दिन होता है। इसी प्रकार जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति ११° २९′ से अधिक होती है अर्थात् जब सायन वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियोंमें रहता है तब ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीने की रात और उत्तर अक्षांश पर ४ महीने का दिन होता है।

श्लोकोंमें अक्षांशकी जगह विषुवत् रेखासे योजनोंमें दूरी जानने की रीति दी गई है जैसा कि पहलेके श्लोकोंमें है।

६ महीने का दिन या रात कहां होती है—

मेरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम्।
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ॥६७॥

अनुवाद—जब सूर्य मेषसे कन्या तक ६ राशियोंमें रहता है तब उत्तर ध्रुवके रहने वाले देवता लोग उसको एक ही बार उदय हुआ देखते हैं अर्थात् ६ महीने तक उसका अस्त नहीं होता और जब सूर्य तुलासे मीन राशियों में रहता है तब दक्षिण ध्रुव पर असुर लोग उसको बराबर उदय हुआ देखते हैं।

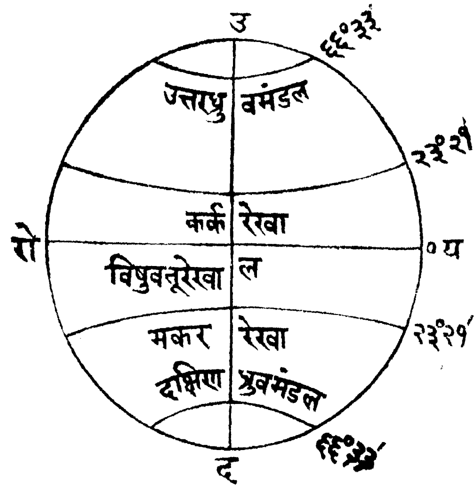
विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन मेषमें प्रवेश करता है तब यह उत्तर गोलमें आता है और ६ मास तक बराबर उत्तर गोलमें रहता है इसलिये उत्तर ध्रुव पर यह इन मासोंमें सदा दिखाई देता है और दक्षिण ध्रुव पर अदृश्य रहता है। इसी लिये इन ६ महीनोंमें देवताओंका एक दिन और असुरोंकी एक रात होती है। परन्तु जब सूर्य सायन तुलामें आता है तब यह दक्षिण गोलमें हो जाता है और ६ मास तक बराबर दक्षिण गोलमें रहता है इसलिये इन ६ महीनोंमें असुर लोग सूर्यको बराबर देखा करते हैं और यहां ६ महीनेका दिन होता है तथा उत्तर ध्रुवसे अदृश्य होनेके कारण देवताओंकी ६ महीनेकी रात होती है।

सायन कर्क या मकर संक्रान्तिके दिन सूर्य ठीक ऊपर कहां देख पड़ता है और यहां क्या विशेषता है—

भूमण्डलात्पञ्चदशे भागे देवेऽथवासुरे।
उपरिष्टाद्व्रजत्यर्कः सौम्य याम्यायनान्तगः ॥६८॥
तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक्सम्भवत्यपि।
मेरोरभिमुखं याति परतः स्वविभागयोः ॥ ६९ ॥

अनुवाद—(६८) विषुवत रेखासे भूपरिधिके १५ वें भाग की दूरी पर स्थित उत्तर या दक्षिणके स्थानके ठीक ऊपर उत्त-रायण या दक्षिणायनके अन्तकालका सूर्य भ्रमण करता है। (६९) इन्हीं रेखाओंके बीचमें मध्याह्न कालिक छाया दक्षिण या उत्तर हो सकती है। इनके बाहरके स्थानोंमें मध्याह्न छाया अपने अपने विभाग के मेरुकी ओर रहती है।

विज्ञान-भाष्य—उत्तरायणका अन्त सायनकर्क संक्रान्तिकालमें होता है जिस समय सूर्यकी उत्तर क्रान्ति परम क्रान्तिके समान



(चित्र नं० १२७)

होती है जो सूर्यसिद्धान्तके मतसे २४ अंश है। इसलिये इस दिन २४ उत्तर अक्षांश पर सूर्य मध्याह्नकालमें ठीक ऊपर होता है और मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है। इसी प्रकार दक्षिणायनके अन्तमें सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति २४° होती है। इस लिये इस दिन २४ दक्षिण अक्षांश पर सूर्य ठीक ऊपर होता है। परन्तु भूपृष्ठका २४ अंश सारी भूपरिधिका १५ वां भाग है। आजकल यह २३ अंश २७ कलाके लगभग है। इसलिये २३°२७' उत्तर अक्षांशके देशों पर सायन कर्क संक्रान्ति के दिन मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक ऊपर होता है और इतने ही दक्षिण

अक्षांश पर सायन मकर संक्रान्तिके दिन मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक ऊपर होता है, २३°२७′ उत्तर अक्षांश रेखाको इसीलिये कर्क रेखा और २३°२७′ दक्षिण अक्षांश रेखाको मकर रेखा कहते हैं। इन दोनों अक्षांशोंके बीचके भूभागको उष्ण कटि-बन्ध कहते हैं क्योंकि यहां सूर्यके बारहों महीने ऊपर रहनेसे बड़ी गरमी पड़ती है।

इसी भूभागमें प्रत्येक स्थानके मध्याह्न कालकी छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है क्योंकि यहांके किसी स्थानका अक्षांश सूर्यकी परम क्रान्तिसे कम होगा इसलिये जब किसी स्थानका अक्षांश और सूर्यकी क्रान्ति एक ही दिशामें है और सूर्यकी क्रान्ति कम है तो मध्याह्न छाया उसी दिशाके ध्रुवकी ओर होगी परन्तु यदि क्रान्ति अधिक है तो छायाकी दिशा उलटी होगी (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृ० ३८३, चित्र ५५, ५६)। परन्तु कर्क रेखा के उत्तरके देशोंमें मध्याह्न-छायाकी दिशा सदा उत्तरकी ओर होगी और मकर रेखाके दक्षिणके देशोंमें मध्याह्न-छाया सदा दक्षिणकी ओर होगी।

चित्र १२७ में गोल रेखाके भीतर जो क्षेत्र है वह भूपृष्ठका गोलार्ध प्रकट करता है। उ और द क्रमसे उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं। रोलय विषुवत् रेखा है। य यमकोटि, ल लंका और रो रोमक नगर है। सिद्धपुरी इस गोलार्ध पर नहीं दिखायी जा सकती क्योंकि यह लंकाके समसूत्रमें दूसरे गोलार्धमें है। विषुवत् रेखासे २३°२७′ उत्तर कर्क रेखा औरदक्षिण मकर रेखा हैं। ये रेखाएँ विषुवत् रेखाके समानान्तर हैं। इन्हीं दोनों रेखाओंके बीचवाले भूभाग पर मध्याह्न-छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है। विषुवत् रेखासे ६६ ३३′ उत्तर और दक्षिण

तथा उसके समानान्तर उत्तरी ध्रुव मंडल और दक्षिणी ध्रुव मंडल हैं। इन्हीं रेखाओं पर दिनका प्रमाण वर्षमें एक बार ६० घड़ी या २४ घंटेका होता है और रात्रिका प्रमाण भी एक बार इतना ही होता है जैसा कि ६०—६१ श्लोकोंमें बतलाया गया है। इन्हीं रेखाओंके बीचके भूभागमें अहोरात्रका प्रमाण ६० घड़ीका होता है। इनके बाहरके भूभागमें दिन रात्रिका प्रमाण विचित्र होता है। उत्तरी ध्रुव मंडलके और उत्तर विषुवत् रेखासे ६९°५०′ दूर जो समानान्तर रेखा है उस पर वर्षमें एक बार २ मासका दिन तथा दो मासकी रात होती है। इसके भी उत्तर विषुवत् से ७८°३१′ दूर जो रेखा है वहाँ ४ महीनेका दिन और ४ महीने की रात होती है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव मंडलमें भी होता है। उत्तरी ध्रुवों पर ६ महीनेका दिन और ६ महीनेकी रात होती है।

विषुवत् रेखाके चार नगरोंमें सूर्योदय सूर्यास्त कब होता है—

भद्राश्वोपरिगः कुर्याद्भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं सदा ॥ ७० ॥
भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमन्।
मध्योदयार्धरात्र्यस्त कालान् कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥७१॥

अनुवाद—(७०) जब भद्राश्व वर्षके यमकोटि नगरमें सूर्य ठीक ऊपर होता है तब भारतवर्षके लंका नगरमें उसका उदय होता है, केतुमाल देशके रोमक नगरमें अर्धरात्रि होती है और कुरुक्षेत्रके सिद्धपुरी नगरमें उसका अस्त होता रहता है। (७१) इसी प्रकार भारतवर्ष आदि देशोंमें क्रमसे मध्याह्न, उदय, अर्धरात्रि और अस्तकाल होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन चार नगरोंका परस्पर सम्बन्ध ३८—४० श्लोकोंमें बतलाया जा चुका है। यहाँ इनके समयोंका सम्बन्ध बतलाया गया है। जब यमकोटिमें मध्याह्न होता है तब लंका में जो उससे ९० अंश पच्छिम है सूर्योदय होता है, रोमकमें जो लंकासे ९० अंश पच्छिम है मध्य रात्रि होती है और सिद्धपुरीमें जो रोमकसे ९० अंश पच्छिम है सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जब लंकामें मध्याह्न होता है तब रोमकमें सूर्योदय सिद्धपुरीमें अर्द्धरात्रि और यमकोटिमें सूर्यास्त होता है।

ध्रुवतारा और नक्षत्र चक्रका परस्पर अन्तर—

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥७२॥

अनुवाद—ध्रुवोंकी ओर चलनेसे ध्रुवताराका उन्नतांश और नक्षत्रचक्रका नतांश बढ़ता जाता है परन्तु विषुवत् रेखाकी ओर चलनेसे इसका उलटा होता है अर्थात् ध्रुवताराका नतांश तथा नक्षत्र चक्रका उन्नतांश बढ़ता है।

विज्ञान-भाष्य—नक्षत्रचक्र विषुवन्मण्डलके पास है इसलिए विषुवत् रेखा पर नक्षत्र चक्र ठीक ऊपर देख पड़ता है और ध्रुवतारे क्षितिज पर देख पड़ते हैं। यहाँसे ध्रुवोंकी ओर चलनेमें ध्रुवोंका उन्नतांश बढ़ता जाता है और विषुवन्मण्डलका उन्नतांश उतना ही घटता जाता अथवा नतांश बढ़ता जाता है। ध्रुवों पर ध्रुवतारेका उन्नतांश ९० और विषुवन्मण्डलका उन्नतांश शून्य अथवा नतांश ९० होता है क्योंकि ध्रुवों पर से विषुवन्मण्डल क्षितिजमें हो जाता है। इसके विपरीत विषुवत् रेखाकी

ओर चलनेमें ध्रुवतारेका नतांश बढ़ता और नक्षत्र चक्रका उन्नतांश बढ़ता है।

नक्षत्र चक्रकी गतिका कारण—

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम् ॥७३॥

अनुवाद—दोनों ध्रुवतारोंसे बँधा हुआ और प्रवाह वायुका धक्का खाता हुआ नक्षत्र-चक्र निरन्तर घूमा करता है। इसी से क्रमानुसार बँधी हुई ग्रहकक्षाएँ भी इसीके साथ घूमती हैं।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य, चन्द्र, ग्रह तारे सभी पूर्व क्षितिज पर उदय होकर ऊपर उठते हैं, पच्छिम की ओर घूमते हुए अस्त हो जाते हैं और २४ घंटेमें फिर पूर्व क्षितिज पर आकर उदय होते हैं। इसका कारण प्राचीनकालमें यह समझा जाता था कि सारा आकाश-चक्र दोनों आकाशीय ध्रुवोंमें बँधा हुआ प्रवह वायुके द्वारा घूम रहा है और ग्रहों की कक्षाएँ भी उसी आकाश-चक्रमें बँधी हुई पूरबसे पच्छिम को घूम रही हैं। इस मतके समर्थक भारतवर्षके कुछ पण्डित अब भी देखे जाते हैं और वाद विवाद करनेके लिये तैयार रहते हैं। परन्तु अब अकाट्य प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया है कि आकाश-चक्र की इस गति का कारण प्रवह वायु नहीं है वरन् स्वयम् पृथ्वी की गति है। एक गतिसे पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटेमें एक बार पच्छिमसे पूरब को घूम जाती है, इस दैनिक गति को पृथ्वी का अक्ष-भ्रमण कहते हैं। इसीसे आकाशके सभी पिंड पूरबसे पच्छिमको घूमते हुए जान पड़ते हैं। इसीसे

दिन रातकी उत्पत्ति होती है। दूसरी गतिसे पृथ्वी एक वर्ष में सूर्यकी परिक्रमा कर लेती है जिससे ऋतुओं की उत्पत्ति होती है और आकाशमें सूर्य पच्छिमसे पूरबको चलता हुआ एक वर्षमें पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है। इस गति को पृथ्वी की वार्षिक गति कहते हैं। यह दोनों गतियाँ पृथ्वीमें एक साथ होती हैं जैसे ऊपर फेंकी हुई गेंद अपने अक्ष पर नाचती भी जाती है और अपने स्थानको बदलती भी जाती है अथवा लड़कोंके खेलने की फिरकी नाचती हुई अपने स्थान को भी बदलती जाती है।

हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथोंमें पृथ्वी को अचला माना गया है इसलिये पृथ्वी की गतिकी बात सनातन धर्मके कुछ पण्डितों को मान्य नहीं है परन्तु वाद विवादमें वे वही तर्क उपस्थित करते हैं जिसे आचार्य वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि पेश करते थे। इसलिये पहले यह विचार किया जायगा कि वे तर्क कहां तक गणित शास्त्रके अनुकूल हैं। इसके बाद अनेक गणित और भौतिक विज्ञान के प्रमाणोंसे सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वीमें दैनिक और बार्षिक दो गतियां हैं और इन्हींके कारण नक्षत्र-चक्र दिनमें एक बार पूरबसे पच्छिमको घूमता हुआ देख पड़ता है और ऋतु आदि का परिवर्तन होता है तथा ग्रहोंकी चाल विचित्र प्रकार की देख पड़ती है। आचार्य वराह मिहिर और ब्रह्मगुप्तने पृथ्वीकी गति का खण्डन जिन युक्तियोंसे किया था वे यह* हैं। यहां यह बतला देना

---

*भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः
यद्येव श्येनाद्या न खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः ॥६॥

आवश्यक जान पड़ता है कि हमारे यहांके आचार्य आर्यभट अपने आर्यभटीय ग्रंथमें पृथ्वीका चलना मानते हैं और इसका समर्थन इस उदाहरणसे करते हैं कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठे हुए मनुष्य को नाव स्थिर और किनारेके पेड़, घर आदि उलटी दिशामें चलते हुई दिखाई पड़ते हैं इसी तरह नक्षत्र-चक्र अचल होने पर भी घूमनेवाली पृथ्वी परके रहने वाले मनुष्यों को पच्छिमकी तरफ घूमता हुआ देख पड़ता है। परन्तु परम्परा विरुद्ध समझ कर किसी ने नहीं माना और बराह मिहिर आदि ने ये तर्क उपस्थित किये थे।

आचार्य बराह मिहिर का एक तर्क यह है कि यदि पृथ्वी ही पूरब की ओर घूमती है तो जो पक्षी अपने घोंसले छोड़ कर आकाश में उड़ जाते हैं वे फिर घोसले तक क्यों पहुँच जाते हैं क्योंकि पृथ्वीके घूमनेके कारण पृथ्वीमें लगा हुआ

अन्यच्च भवेद्भूमेरह्वा भ्रमरं ह्यसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात् प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति ॥७॥
पंच सिद्धान्तिका अध्याय १३

प्राणेनैति कलां भूर्यदि तर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम्।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ॥१७॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, तन्त्र परीक्षाध्याय

†अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानिभानि तद्वत्सम पश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९॥
आर्यभटीय, गोलपाद

घोंसला तो बहुत दूर पूरबमें हो जाता और पक्षी आकाशमें रह जानेसे बहुत पीछे रह जाता। दूसरा तर्क उन्होंने यह किया कि यदि पृथ्वी पूरबकी ओर घूमती तो पताका झण्डा आदि सर्वदा पच्छिम की ओर उड़ते देख पड़ते क्योंकि यह साधारण अनुभव की बात है कि यदि कोई मनुष्य रूमाल हाथमें लटका कर दौड़े तो उसके वेगके कारण रूमाल पीछे की ओर उड़ने लगता है। और यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी बहुत मंद गतिसे घूमती है इसलिये पताका आदि पच्छिमको उड़ते हुए नहीं देख पड़ते तो इतनी मंद चालसे पृथ्वी दिन भरमें एक चक्कर कैसे कर लेती है।

चिड़ियोंके अपने घोंसले तक पहुँच जानेका कारण यह है कि जब चिड़िया आकाशमें उड़ जाती है तब भी भूभ्रमणका जो वेग उसमें घोंसलेमें रहता है वह उतना ही आकाशमें भी बना रहता है, इसलिए जिस वेगसे घोंसला पूर्वकी ओर घूमता जाता है उसी वेगसे चिड़िया भी घूमती जाती है, हां उसको जान नहीं पड़ता। साथ ही साथ वह अपनी गति भी उत्पन्न कर सकती है जिससे वह घोंसलेसे दूर जहां चाहे जाती है। जैसे रेलगाड़ी पर चढ़ा हुआ आदमी उस वेगका अनुभव नहीं करता जिससे गाड़ी स्वयम् चल रही है, पर उसमें वह वेग वर्तमान रहता है। इस वेगके रहते हुए भी वह अपनी इच्छा-शक्तिसे डब्बेमें इधर उधर चल फिर सकता है, उछल कूद सकता है, गेंद खेल सकता है। क्योंकि गाड़ीमें रखी हुई जितनी वस्तुएँ हैं सबमें गाड़ीका वेग वर्तमान रहता है इसलिए यह वेग सबमें समान रूपसे रहनेके कारण मालूम नहीं होता। इसका पता भी सहज ही लगाया जा सकता

है। यदि बहुत तीव्र चलती हुई गाड़ीमें बैठ कर एक कंकड़ बाहरकी ओर सीधा फेंका जाय तो जब तक वह पृथ्वीको नहीं छू लेता तब तक गाड़ीके साथ ही साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ता है। यह बात उस समय और भी स्पष्ट देख पड़ती है जब कंकड़ उस समय फेंका जाय जिस समय गाड़ी किसी नदीके पुल पर चलने लगे क्योंकि ऐसी दशामें कंकड़को धरातल तक पहुँचनेमें कुछ देर लगेगी इसलिए वह देर तक गाड़ीके साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ेगा और उस जगह नहीं गिरेगा जिस जगह लक्ष्य करके फेंका जाय वरन् आगे बढ़ कर ठीक अपने ही सीधमें गिरेगा। इससे जाना जा सकता है कि जब कोई वस्तु किसी वेगसे चलती हुई गाड़ी, वायुयान आदिसे अलग होती है तब भी उसमें वह वेग वर्तमान रहता है जो गाड़ीमें था और जब तक वह वस्तु किसी दूसरे वस्तुपर ठहर नहीं जाती तब तक उसका वेग नष्ट नहीं होता, इसी कारण यदि चलती हुई गाड़ीसे कोई कूदता है तो वह गाड़ीके वेगके कारण आगे बढ़ कर गिर पड़ता है।

इस बातकी दूसरी परीक्षा इस प्रकारकी जा सकती है। यह तो सभीको मालूम है कि यदि कोई गरुई चीज़ कुछ ऊँचाईसे छोड़ दी जाय तो वह अपने ठीक नीचे पृथ्वी पर गिरती है। बड़ी रेलगाड़ीके डब्बेकी ऊँचाई फ़र्शसे १० फुटके लगभग होती है। इसलिए यदि छतके पाससे पत्थरका टुकड़ा नीचे गिराया जाय तो फ़र्श पर पहुँचनेमें उसे ९, १० फुट चलना पड़ेगा और इसमें उसे पौन सेकंडके लगभग लगेगा। इतनी देरमें यदि गाड़ी ३० मील प्रति घंटेकी चालसे चलती हो तो ३३ फुट आगे बढ़ जाती है। इसलिए यदि

वराह मिहिरका तर्क ठीक हो तो पत्थरको उस स्थान पर नहीं गिरना चाहिये जो उस स्थानसे ठीक नीचे है जहांसे पत्थर गिराया जाता है वरन् ३३ फुट पीछे गिरना चाहिये। परन्तु ऐसा देख नहीं पड़ता। देखनेमें तो वह वहीं गिरता है जिसके ठीक ऊपरसे गिराया जाता है। इसका कारण यह है कि पत्थर जिस समय छतसे गिराया जाता है उस समय उसमें गाड़ीकी जो गति वर्तमान रहती है वह गिरनेके समय भी वर्तमान रहती है इसलिए नीचे गिरते रहनेके साथ साथ वह गाड़ीके साथ आगे भी बढ़ता जाता है और ठीक वहीं गिरता है जिसके ऊपरसे गिराया जाता है। सर्कसके खेलमें दौड़ते हुए घोड़ेकी पीठ परसे ऊपर उछल जाना और फिर उसीकी पीठ पर आजाना इसी नियमका परिणाम है।

अब रही ध्वजाकी बात। ध्वजाके प्रत्येक कणमें पृथ्वीका वेग रहता है। इसी तरह हवामें भी जो पृथ्वीका एक अंग ही है वह वेग वर्तमान रहता है इसीलिए ध्वजाका कपड़ा पृथ्वीकी गतिके कारण पश्चिमकी ओर उड़ता हुआ नहीं देख पड़ता। गाड़ी, मोटर या रेलगाड़ीके बाहर ध्वजा लगी हुई हो तो वह पीछेकी ओर उड़ती हुई देख पड़ती है क्योंकि रेलगाड़ी या मोटरकी गतिसे बाहरकी हवाका कोई लगाव नहीं रहता, यह तो हवाको चीरती हुई चलती हैं इसलिए यह पीछेकी ओर बढ़ती है और ध्वजा पताका इत्यादिको पीछेकी ओर उड़ाती है। हाँ यदि रेलगाड़ी या मोटरके सब द्वार बन्द कर दिये जांय तो इसके भीतर की हवाका सम्बन्ध बाहरकी हवासे टूट जाता है और उसमें गाड़ीका वेग वर्तमान रहता है इसलिए उसमें ध्वजाको पीछे उड़ानेकी शक्ति नहीं रहती। इसी प्रकार

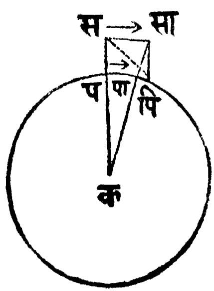
पृथ्वीका वातावरण भी ध्वजाको पीछे उड़ानेमें असमर्थ होता है क्योंकि पृथ्वी वातावरणको चीरती हुई नहीं चलती वरन् साथ लिए हुई चलती है इसलिए उसमें भी वही वेग रहता है।

आचार्य ब्रह्मगुप्तका यह तर्क कि पृथ्वीके घूमनेसे ऊँचे ऊँचे घरों, पर्वतों आदिकी चोटी कभी ऊपर और कभी नीचे हो जाती और जब नीचे हो जाती तो यह अवश्य गिर पड़ते परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए पृथ्वी नहीं घूमती, बिल्कुल लंगड़ा है। ऊँचाई और नीचाईकी कल्पना पृथ्वीके ही विचारसे की जाती है। पृथ्वीकी ओर जो दिशा है वह नीचेकी दिशा कही जाती है और इससे उल्टी आकाशकी ओरकी दिशाको ऊँची दिशा कही जाती है और जो वस्तुएँ गिरती हैं वे पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिके कारण ही पृथ्वी पर गिरती है इसलिए यदि कोई गोला पृथ्वीके ऊपर हवामें घुमाया जाय और उसमें कोई ऐसी वस्तु चिपका दी जाय जो पृथ्वीकी ओर होने पर पृथ्वी पर गिर पड़े तो यह बिल्कुल ठीक है। परन्तु जहां पृथ्वीके ही घूमनेका प्रश्न है वहां इसके नीचे क्या है जिसके आकर्षणसे भूपृष्ठके ऊँचे घर या पर्वत उस ओर गिर कर चले जांय? पृथ्वीके चारों ओर आकाश ही आकाश है इसलिए वह चाहे जितनी घूमे उसपरके घरों और पर्वतोंकी चोटी सदैव आकाश की ही ओर रहेगी और नीव पृथ्वीकी ओर इसलिए वे गिर कर कहाँ जा सकते हैं?

यहां तक तो शंकाओंका समाधान किया गया। अब उदाहरण दे कर गणितशास्त्रके आधार पर सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वीमें गति है।

अर्वाचीन विज्ञानसे पृथ्वीके अक्ष-भ्रमणके प्रमाण—

यह साधारण अनुभवकी बात है कि पहियेका वह बिन्दु जो धुरीसे दूर है धुरीके पासवाले बिन्दुसे अधिक चलता है और पहियेके किनारे पर जो बिन्दु है उसमें उन सब बिन्दुओं से अधिक वेग रहता है जो बीचमें होते हैं। यदि पृथ्वी ऐसे अक्ष पर घूमती हुई मानी जाय जिसका एक सिरा उत्तरी ध्रुव पर और दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर हो तो यह स्पष्ट है कि किसी ऊँचे पेड़, मकान या मीनारकी चोटी उसके आधारकी अपेक्षा पृथ्वीके अक्षसे अधिक दूरी पर है इसलिये चोटीकी गति उसके आधारकी गतिसे अधिक होगी। इसलिए यदि कोई वस्तु किसी ऊँचे मीनारकी चोटीसे गिरायी जाय तो वह अधिक वेगके कारण ठीक नीचे न गिर कर कुछ पूरबकी ओर बढ़कर गिरेगी क्योंकि उसके ठीक नीचेवाले बिन्दुकी चाल



(चित्र नं० १२८)

उससे मंद है। मान लो स एक मीनारकी चोटी है जहांसे वस्तु नीचे गिरायी जाती है और प मीनारका मूल है जो स

के ठीक नीचे है इसलिये लम्बरेखा स प बढ़ाने पर पृथ्वीके केन्द्र क पर पहुँचेगी। यदि मान लिया जाय कि जितनी देरमें वस्तु पृथ्वी तल पर पहुँचती है मीनारकी चोटी स से सा तक घूम गयी तो मीनारका मूल प से पा तक पहुँचेगा क्योंकि चोटी और मूलको मिलानेवाली रेखा पृथ्वीके केन्द्र को सदैव जायगी। यह स्पष्ट है कि प पा, स सा से कम है। यह भी स्पष्ट है कि प की भ्रमण गति स की भ्रमण गतिसे कम है। परन्तु जो वस्तु स बिन्दुसे गिरायी जायगी उसकी गति स की गतिके समान होगी इसलिये वह गिरते हुए भी अपनी ऊपरवाली गतिको धारण किये रहेगी इसलिये वह पा पर न गिर कर पि पर गिरेगी जहाँ प पि, स सा के समान है अर्थात् वह वस्तु लम्बरेखासे कुछ पूरबकी ओर बढ़कर गिरेगी।

इसलिये यदि परीक्षा करके यह सिद्ध किया जासके कि ऊपरसे गिरी हुई वस्तु पृथ्वी पर पहुँचते २ यथार्थमें कुछ पूरबकी ओर बढ़ जाती है तब यह कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है कि पृथ्वी पूरबकी ओर भ्रमण करती है। परन्तु यह परीक्षा कठिन है क्योंकि इतना ऊँचा स्थान नहीं बनाया जा सकता कि उसकी चोटी और मूलकी भ्रमण गतियोंमें इतना अन्तर हो कि वह साफ साफ देख पड़े क्योंकि पृथ्वीकी त्रिज्या ४००० मीलके लगभग है और मीनारकी चोटी १००० फुट भी नहीं हो सकती। बोलोन और हेमवर्गमें इस सम्बन्धमें जितनी परीक्षाएँकी गयीं उनसे सिद्ध हुआ कि २५० फुटकी ऊँचाईसे गिरी हुई वस्तु लम्बरेखासे तिहाई इंच पूरब बढ़ जाती है। गणना करके यह देखा जा सकता है कि जितनी देरमें कोई वस्तु २५० फुट नीचे गिरती है उतनी देरमें चोटी और मूलकी अथवा

स और प बिन्दुओंको भ्रमण गतियोंका अन्तर भी इतना ही होता है। इसलिये इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वीमें भ्रमण गति है। इस प्रयोगकी पूरी गणना यहां नहीं दी जा सकती क्योंकि बिना उच्च गणितकी जानकारीके वह समझमें नहीं आ सकती। इसलिये यहाँ केवल सारमात्र दिया गया है।

इस प्रयोगकी कल्पना पहले पहले निउटनने की थी। ऊपर जो चित्र दिया गया है वह विषुवत् रेखा पर स्थित देशोंके लिये उपयुक्त है। अन्य स्थानों के लिये इसकी गणनामें कुछ परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि विषुवत् रेखासे अन्य स्थानोंमें गिरनेवाली वस्तुमें दो गतियां हो जाती हैं जिनकी दिशाएँ भिन्न होती हैं। एक गति तो पृथ्वीके दैनिक भ्रमणकी होती है जो गिरनेवाली वस्तुको मीनारकी चोटीसे प्राप्त होती है और पृथ्वीके अक्षके समकोण तल पर होती है और दूसरी गति पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके कारण होती है जिससे वस्तु पृथ्वीके केन्द्रकी ओर गिरती है। इसलिये वस्तु लम्ब दिशासे पूरबकी ओर तो बढ़ जाती है, साथ ही साथ कुछ दक्षिण या उत्तर भी हो जाती है। गिरते समय वस्तु पर हवाकी रगड़का भी कुछ प्रभाव पड़ता है परन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी मूल सिद्धान्तमें कोई अन्तर नहीं होता।

यह प्रयोग कोयलेकी गहरी खानोंमें भी किया जाता है क्योंकि यहां गिरनेके लिये गहराई अधिक मिल सकती है। ५०० फुटकी ऊँचाईसे गिरायी हुई वस्तु लम्ब दिशासे १ इञ्चके लगभग पूरब बढ़ जाती है। यह कई प्रयोगोंका मध्यमान है, गणनासे भी यही बात सिद्ध होती है।

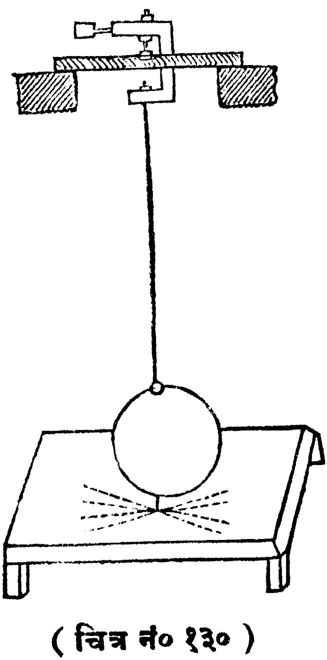
(२) परन्तु इससे भी सहज और स्पष्ट प्रयोग फूकोका

(Foucault) लोलक-प्रयोग (Pendulum experiment) है। गणित शास्त्रसे यह सिद्ध है कि यदि कोई लोलक केवल गुरुत्वाकर्षणके प्रभावसे स्पन्दन करे या झूले तो इसका स्पन्दन तल (झूलनेकी दिशा) वही बना रहेगा और इस तलकी दिशा पर लोलकके आधारकी गतिका प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि ऐसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है जो इसे इस तलसे विचलित कर सके। यह सहज ही देखा जा सकता है कि यदि एक भारी लोलक एक पतले तारसे लटका कर घड़ियोंके लोलककी तरह झुलाया जाय और यदि वह आधार जिसमें लोलक लटकाया जाता है घुमाया जाय तो इसके घूमनेसे लोलकके स्पन्दन-तलमें कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि जिस तार या डोरेमें लोलक बंधा रहता है उसका जरा सा ऐंठ जाना अधिक सहज है न कि भारी लोलकका ही अपने स्पन्दन तलको बदलना जब कि वह पहले ही से एक तलमें झूल रहा है। इसलिये यह सिद्ध है कि यदि पृथ्वी अचल हो तो लोलकके स्पन्दनकी दिशा भी आस पासकी वस्तुओं तथा आधारके विचारसे अचल रहेगी और यदि इसमें भ्रमणगति होगी तो लोलकके स्पन्दन तलकी अपेक्षा भूतलकी दिशाओंमें परिवर्तन हो जायगा और लोलकका स्पन्दन तल ही बदलता हुआ देख पड़ेगा। इसलिये इस लोलक-प्रयोगसे पृथ्वीकी भ्रमण गतिका ही पता नहीं लगेगा वरन इसकी दिशाका भी पता लगेगा।

फूकोने यह प्रयोग आजसे ७९ वर्ष पहले सन् १८५१ ई० या १९०८ वि० में पेरिसमें किया था। उसने अपने लोलकको पैन्थियन नामक विशाल भवनके गुम्बजसे लटकाया। इसका तार २०० फुट लम्बा था और गोलेकी तोल १ मनके लगभग

(८० पौंड) थी। जिस समय लोलक झूलता था गोलेके नीचे निकली हुई सुई अपने झूलनेका चिह्न बालूतल पर बनाती जाती थी और यह देख पड़ता था कि बालूका तल अपसव्य दिशामें अर्थात् दहनेसे बायें पच्छिमसे पूरब घूमता जाता था।

इस प्रयोगमें दो बातोंकी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। लोलकका तार जितना ही लम्बा हो उतनी ही अधिक देर तक यह झूलता रहेगा। नहीं तो अपनी तीव्र गतिसे हवाकी रगड़ खा कर जल्द रुक जायगा। दूसरे इसका गोला जितना ही भारी हो अच्छा है क्योंकि इससे लटकानेके दोषोंका तथा हवाकी रगड़का प्रभाव बहुत कम पड़ जाता है।



(चित्र नं० १३०)

इस प्रयोगको बहुत सफलता पूर्वक करनेका उद्योग अमेरिकाके एक विज्ञानवेत्ता रसेल डेबलू पोर्टरने* किया है। इन्होंने पियानो बाजाके लगभग १२ फुट लम्बे तारसे ढलवे लोहेका कोई ४० पौंड या २० सेरका गोला छतकी धरनसे लटकाया। यह देखा गया है कि लोलककी गति धीरे धीरे मंद पड़ जाती है परन्तु यदि इनका लोलक लम्ब दिशासे तीन फुट तक खींच कर झुलाया जाय तो आधे घंटेके बाद भी वह लम्बरेखासे २ फुट इधर उधर झूलता रहता है।

हां, इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जिस छतमें लोलक लटकाया जाय उसमें किसी प्रकारका स्पन्दन न हो और कमरेकी हवामें किसी प्रकारका झोंका न हो। लोलक लटकने पर प्रायः घूमता रहता है जिससे डोरे या तारमें ऐंठन पड़ जाती है। इससे लोलकमें एक दूसरी गति उत्पन्न हो जाती है। इसलिये इसे रोकनेके लिये इन्होंने तारको एक पीतलके हुकमें लटकाया जिसका आकार प्रश्नवाचक चिह्नकी तरह था और हुककी नोक एक छिछली प्यालीमें थांभ दी गयी जो धरन पर अच्छी तरह कसी हुई थी। प्यालीका नतोदर तल अच्छी तरह चिकना कर दिया था।

लोलकको झुलानेके पहले बिलकुल निश्चल रखना चाहिये। इसलिये गोलेमें एक डोरा बांध कर डोरेको इतना खींच कर दीवालमें बांध देना चाहिये कि गोला धरण-बिन्दुकी लम्बरेखा से २, ३ फुट हट जाय। अब यदि डोरेको जला दिया जाय

---

* देखो जुलाई सन् १९२८ ई० के सायंटिफिक अमेरिकन Scientific American पृष्ठ १४, १५।

तो गोला हिलने लगेगा और बराबर एक ही तलमें झूलता रहेगा। यदि ऐसा न किया जाय तो गोला एक लम्बे दीर्घ-वृत्तमें झूलने लगता है और यदि आरंभमें ज़रा सी भी गड़बड़ हो तो कुछ देरमें बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है।

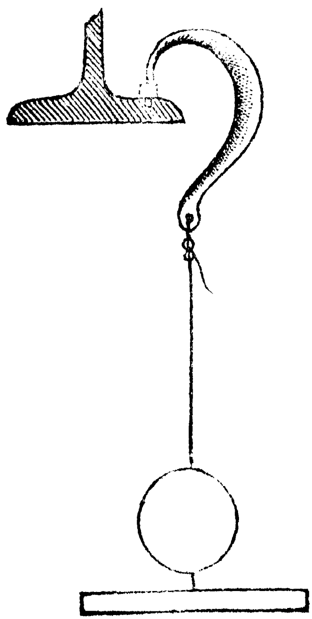
लोलकके झूलनेकी दिशा चाहे जो हो परन्तु यदि आरम्भ उत्तर दक्षिण दिशासे किया जाय तो अच्छा है। गोलेके नीचे जो सुई निकली हुई हो वह मेजके इतने पास हो कि उस पर रखी हुई कागजकी तख़्तीके छूनेसे तनिक ही बची रहे। गोला झुलानेके बाद कागजकी तख़्ती पर एक सीधी रेखा पेंसिलसे खींच कर तख़्तीको मेज पर इस प्रकार सरका दो कि सुई छू न जाय और खींची हुई रेखा सुईके झूलनेके तलसे ठीक मिल जाय। अब तख़्तीकी रेखाके दक्षिणी किनारेको ध्यानसे देखना चाहिये। दो ही तीन मिनटमें तख़्तीकी रेखाका दक्षिणी सिरा पच्छिमसे पूरबको अर्थात् अपसव्य दिशामें या घड़ीकी विरुद्ध दिशामें घूमता हुआ देख पड़ेगा। कारण यह कि तख़्ती पृथ्वीके साथ पच्छिमसे पूरबको घूमती रहती है। यह प्रयोग यदि विषुवत् रेखासे दक्षिणके देशोंमें किया जाय तो तख़्तीकी रेखा घड़ीकी अनुकूल दिशामें घूमती हुई देख पड़ेगी।

अब देखना है कि प्रयोगका परिणाम गणनासे कहां तक मिलता है।

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो कि लोलक उत्तरी ध्रुव पर लटकाया जाय तो लोलककी लम्ब-रेखा और पृथ्वीका अक्ष एक ही दिशामें होंगे। इसलिए जैसे जैसे पृथ्वी पच्छिम से पूरबको ओर घूमती जायगी इसके साथ दर्शकके खड़ा

होनेका तल भी पच्छिमसे पूरबको घूमेगा और लोलकका स्पन्दन तल पूरबसे पच्छिमकी ओर हटता हुआ जान पड़ेगा क्योंकि दर्शक पृथ्वीके घूमनेको नहीं देख सकता। इसलिए लोलकका स्पन्दन-तल उलटी दिशामें २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकंडमें एक चक्कर लगा लेनेकी गतिसे घूमता हुआ देख पड़ेगा।

यह सम्भव नहीं कि एक बारका झुलाया हुआ लोलक लगातार २४ घंटे तक झूलता रहे। परन्तु जितनी देर



(चित्र नं० १३१)

तक वह झूलता रहेगा उतनी ही देरमें इसका स्पन्दन-तल इतना घूमा हुआ देख पड़ेगा कि उससे अनुपात द्वारा सहज ही जाना जा सकता है कि एक चक्कर लगानेका समय क्या हो सकता है।

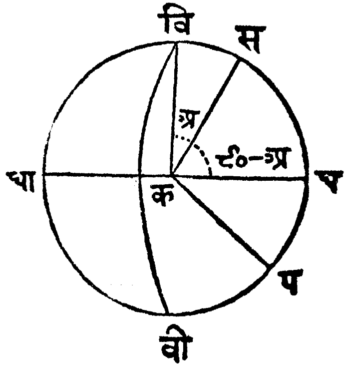
पोर्टर ने अपने लोलकको इस प्रकार लटकाया था। एक पीतलका हुक जिसकी मोटाई ¼ इञ्च थी एक फौलादकी प्यालीमें रखा गया है जिससे ऐंठन न पड़े। देखो चित्र १३१

यदि विषुवत् रेखा पर लोलक झुलाया जाय तो इसकी नोकसे बनी हुई लकीर एक दूसरेके ऊपर होगी क्योंकि यहाँ इसके दोनों किनारोंकी पच्छिमसे पूरबवाली गति समान है इसलिए लोलकका स्पन्दन-तल घूमता हुआ नहीं देख पड़ेगा वरन् एक ही लकीर पर चलता रहेगा।

परन्तु विषुवत् रेखासे भिन्न स्थानोंमें यह बात नहीं होगी क्योंकि लोलकके ठीक नीचेके धरातलके उस भागमें जो विषुवत् रेखाके पास है पृथ्वीके घूमनेकी गति उससे अधिक है जो ध्रुवके पास है इसलिए इसका परिणाम यह होगा कि लोलककी नोकसे जो लकीर बालू पर बनेगी उसका वह किनारा जो विषुवत् रेखाकी ओर है ध्रुवकी ओर वाले किनारे से अधिक वेगसे घूमनेके कारण पूरबकी ओर हटता हुआ और ध्रुवकी ओर वाले किनारेका चक्कर लगाता हुआ देख पड़ेगा परन्तु यह चक्कर २३ घंटे ५६ मिनट ४ संकडसे अधिक समयमें पूरा होगा जैसा कि नीचेकी गणनासे सिद्ध है।

कल्पना करो कि परीक्षाके स्थान स का उत्तरी अक्षांश अ है। वि वी विषुवत् रेखा, क पृथ्वीका केन्द्र, ध धा पृथ्वीका

अक्ष और ध उत्तरी ध्रुव है। ध धा अक्ष पर घूमने वाला पृथ्वी का कोणीय वेग व गति-विज्ञानके अनुसार दो भागोंमें बांटा जा



(चित्र नं० १३२)

सकता है, जिसका एक भाग क स पर और दूसरा भाग क प पर घूमता हुआ समझा जा सकता है।

वेगका यह भाग जो क स पर है व कोटिज्या (९० -अ) अथवा व ज्या अ के समान होगा और जो भाग कप पर है वह व कोज्या अ के समान होगा। परन्तु कप पर घूमने वाला वेग क स के समानान्तर होगा इसलिए इसका प्रभाव लोलक पर वैसा ही पड़ेगा जैसा विषुवत् रेखा पर पड़ता है अर्थात् इसके कारण लोलकसे बनने वाली लकीरकी दिशामें कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु क स पर घूमने वाला वेग भूलते हुए लोलककी सुईसे बनी हुई लकीरकी दिशामें परिवर्तन करेगा जिससे लकीरका दक्षिणी सिरा पच्छिमसे पूरब को ओर खसकता हुआ देख पड़ेगा और जान पड़ेगा मानों लोलक

का स्पन्दन तल हं' पूरबसे पच्छिमकी ओर घूम रहा है क्योंकि पहली लकीरसे दूसरी लकीर पच्छिम की ओर बनती चली जायगी।

अब यह देखना है कि कितनी देरमें लोलकका स्पन्दनतल यदि लगातार झूलता रहा तो एक चक्कर लगा लेगा। यह मान लिया गया है कि पृथ्वीके अक्ष पर घूमता हुआ वेग व है और स स्थान पर इसका खण्ड वेग व ज्या अ है इसलिए यह जानना सहज है कि जब व वेगसे एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है तब व ज्या अ वेगसे एक चक्कर अधिक समयमें पूरा होगा इसलिए लोलकसे बनी हुई लकीरोंका पूरा चक्कर $\frac{\text{व} \times \text{२४ घंटा}}{\text{व ज्या अ}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या अ}}$ समयमें पूरा होगा। जहां अ स्थानका अक्षांश है। यदि प्रयागमें यह प्रयोग किया जाय तो एक चक्कर $\frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या २५° २५'}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{·४२९२}} = \text{५५ घंटा}$ ५५ मिनट या मोटे हिसाबसे ५६ घंटेमें होगा। इसलिये यदि आधे घंटे भी लोलक झूलता रहे तो स्पन्दनतलकी दिशामें पर्याप्त परिवर्तन देख पड़ेगा क्योंकि जब ५६ घण्टेमें पूरा चक्कर होता है तब आधे घण्टेमें $\frac{१}{२} \times ३६० \times \frac{१}{५६}$ अंश $= \frac{४५}{१४} = ३$ अंश १३ कलाके लगभग परिवर्तन हो जायगा। जो सहज ही देखा जा सकता है क्योंकि यदि लोलक लम्बसे २ फुट भी हटा कर झुलाया जाय तो ३ अंशके परिवर्तन में लोलक १ इञ्चसे अधिक दूर हट जायगा।

इस प्रकारके प्रयोग भिन्न भिन्न अक्षांशों पर भिन्न भिन्न

विज्ञान वेत्ताओंने किये और सबके प्रयोगोंसे यही बात सिद्ध होती है कि लोलकसे बनी हुई रेखाके पूरा घूम जाने का समय $= \frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$ और एक घण्टेमें घूमने का परिमाण इस प्रकार निकलेगा $\frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$: १ घंटा :: ३६० अंश : इष्ट परिमाण

$$\therefore \text{ इष्ट परिमाण} = \frac{\text{३६०} \times \text{ज्या अक्षांश}}{\text{२४}} = \text{१५ ज्या अक्षांश}$$

अगले पृष्ठकी सारिणीमें* भिन्न भिन्न प्रयोगोंका परिणाम दिया जाता है—

इस सारणी से प्रत्यक्ष हो जाता है कि लोलक के स्पन्दन तल की दिशा का परिवर्तन पृथ्वी की ही भ्रमण गति से होता है। यह सब प्रयोग विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों के लिए है। विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में भी परिवर्तन इसी नियम से होता है।

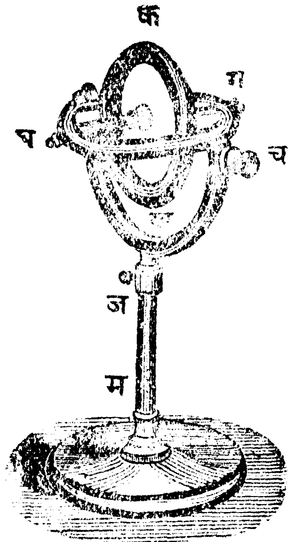
(३) पृथ्वी की भ्रमणगति सिद्ध करने के लिए एक तीसरी रीति भी है, जिसे फूको ने ही निकाली थी। यदि किसी चक्र का किनारा बहुत भारी हो और उसका अक्ष उसके केन्द्र से जाता हुआ उसके धरातल से समकोण बनाता हो और वह चक्र अपने अक्षपर बहुत वेग से घूम सकता हो तो ऐसे चक्र को घुमना पहिया (gyrostat) कहते हैं। यदि इसके साथ

---

* उर्दू के वैज्ञानिक मासिक पत्र 'रोशनी' अप्रैल १९१६ ई० पृष्ठ २८०, ८१ के आधार पर जो Movements of the earth by Norman Lockyer F. R. S से लिया गया है।

प्रयोग का स्थान	अक्षांश		१ घंटे में स्पन्दनतल की दिशामें परिवर्तन प्रयोग से	१ घंटे में स्पन्दनतल की दिशामें परिवर्तन गणना से	प्रयोगकर्ताका नाम
	अंश	कला			
सीलोन	६	५६	१·८७० अंश	१.८१५ अंश	Schaw and Lamprey
न्यूयार्क	४०	४४	६.७३३	६.८१४	Loomis
Provinces R.I.	४०	४६.५	६.६५५	६.८३३	Carowell and Norton
न्यू हेवन	४१	१८.५	६.६७०	६.६२७	
जेनेवा	४६	१२	१०.५२२	१०.८५६	Dufair and Wartman
पेरिस	४८	५०	११.५००	११.३२३	Foucault
ब्रिस्टल	५१	२७	११.७८८	११.७६३	Bunt
डबलिन	५३	२०	११.६१५	१२.०६५	Galbraith & Houghton
एबरडीन	५७	६	१२.७००	१२.६२८	Gerard

इसका आधार भी हो जिससे यह थमा रहता है तो इसका नाम घुमना चक्र (gyroscope) हो जाता है। एक साधारण घुमना चक्र का चित्र यह है—



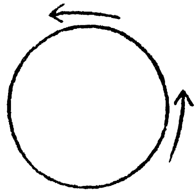
(चित्र नं० १३३)

क ख चक्र समधरातल अक्ष ग घ पर घूम सकता है और जिस चक्र पर ग घ अक्ष है वह च छ समधरातल अक्ष पर घूम सकता है (छ अक्षर चित्र में स्पष्ट नहीं है। यह घ के पास और यंत्र के कुछ पीछे है)। च छ अक्ष कुल को लेता हुआ ज म लम्ब अक्ष पर घूम सकता है। यह यंत्र ऐसा बनाना चाहिए कि इसके घूमते समय रगड़ कम से कम हो। ये तीनों अक्ष एक दूसरे से समकोण पर होते हैं, ग घ और च छ अक्ष

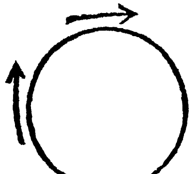
समधरातल में और ज म अक्ष लम्ब दिशा में। यदि रगड़ बहुत कम हो जिससे प्रत्येक अक्ष की गति पूरी तरह स्वतन्त्र हो तो घुमने-यंत्र में अनेक अद्भुत गुण पाये जाते हैं जब कि क ख चक्र खूब तेजी से घूम रहा हो। एक महत्व का गुण यह है कि यदि क ख चक्र तेज़ी से चला दिया जाय तो ग घ अक्ष की दिशा सर्वदा एक ही बनी रहती है जब कि घुमना-चक्र एक जगह से दूसरी जगह ज म को पकड़ कर हटाया जाता है। जब घुमना-चक्र के अक्ष की दिशा पृथ्वी के अक्ष के समानान्तर रखी जाती है तब तो इसकी दिशा आस पास की वस्तुओं की दृष्टि से स्थिर रहती है परन्तु यदि इसका अक्ष किसी अन्य दिशा में करके यह घुमाया जाय तो अक्ष उसी प्रकार दिशा बदलता है जैसे तारे। यदि अक्ष किसी विशेष तारे की दिशा में करके चक्र घुमाया जाय तो जब तक वह चक्र घूमता रहेगा अक्ष सदा उसी तारे की दिशा में रहेगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि तारों की दिशा स्थिर है और उनका प्रतिदिन का पूरब से पच्छिम को घूमना पृथ्वी की दैनिक गति के कारण है।

इन प्रयोगों के सिवा बहुत सी घटनाएं ऐसी हैं जिनसे पृथ्वी का अक्ष भ्रमण सिद्ध होता है। उत्तर गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा घड़ी की प्रतिकूल दिशा में घूमती है वैसे ही यहां बवंडरों के घूमने की दिशा भी होती है। परन्तु दक्षिण गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा तथा बवंडरों की दिशा घड़ी को अनुकूल दिशा में घूमती हैं। जो हवाएं विषुवत् रेखा से ध्रुव की ओर चलती हैं वे उत्तर गोल में पूरब की ओर अर्थात् अपने दाहिने और दक्षिण गोल में भी पूरब

की ओर अर्थात् अपने बायें मुड़ जाती हैं। इसका कारण सिवा इसके और क्या हो सकता है कि जब विषुवत् रेखा के ऊपर



उत्तर गोलमें बवंडरोंकी दिशा



दक्षिण गोल में बवंडरों की दिशा
(चित्र १३४)

की हवा गरम होकर हलकी होती है तब यह ऊपर उठती है इसलिए इसकी जगह भरने के लिए ध्रुवों के पास की ठंडी हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है। परन्तु विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की गति पूर्व की ओर अत्यन्त तीव्र होती है और ज्यों ज्यों ध्रुवों की ओर जाओ त्यों त्यों यह गति मंद पड़ती जाती है इस लिए जो हवा विषुवत् रेखा से चलती है उसकी भी पूर्व की ओर की गति तीव्र रहती है इस लिए जब यह ध्रुवों की ओर के देशों में पहुंचती है जिनकी पूर्वी गति मंद रहती है

तब यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इसी प्रकार जो हवा ध्रुवों से विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह पच्छिम को ओर को मुड़ जाती है।

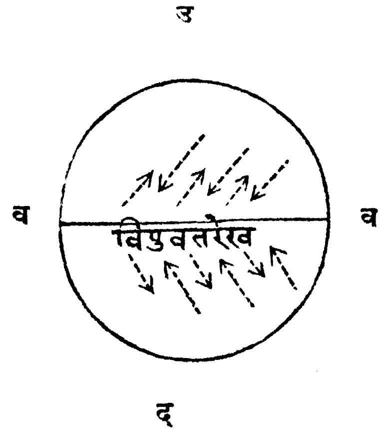
समुद्र की धाराओं की दिशा भी इसी प्रकार की होती है। मेक्सिको की खाड़ी से जो विषुवत् रेखा के पास है जो गरम जलधारा अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर चलती है वह आगे चलकर पूरब की ओर मुड़ जाती है और उत्तर पूरब दिशा में चलती हुई अटलांटिक महासागर की दूसरी ओर फ्रांस, इंगलैंड, नारवे आदि देशों में पहुंचती है तथा उत्तर की ठंडी धारा ग्रीनलैंड से उत्तरी अमेरिका की ओर जाती है। इसीका फल है कि नारवे का हैमर फैस्ट का बंदरगाह जो ७०½ उत्तरी अक्षांश पर है बारहों महीने बर्फ से मुक्त रहता है जब कि उत्तरी अमेरिका का पूरबी किनारा ४० अक्षांश तक जाड़ा भर और गरमी के भी अधिक भाग तक बर्फ से ढका रहता है।

इसी प्रकार हिन्द महासागर के द्वीपसमूह से जो गरम जल धारा उत्तर की ओर को चलती है वह पूरब की ओर को मुड़ कर जापान के पूरबी भाग को गरम रखती है और उत्तर से ठंडी जलधारा जापान के पच्छिमी किनारे से होती हुई चीन सागर में ठीक उलटी दिशा में आती है।

यह संक्षेप में बतलाया गया है कि पृथ्वी की दैनिक गति के कारण हवाओं और धाराओं की दिशाओं में क्या परिवर्तन हो जाता है। यदि इस विषय पर अधिक जानना हो तो भूगोल की अच्छी पुस्तकों से काम लेना चाहिए।

इस अक्षभ्रमण के सिवा पृथ्वी में एक दूसरी गति भी होती है जिससे यह वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा कर लेती है परन्तु

जान पड़ता है मानों सूर्य ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी की इस गति का प्रमाण और भी सूक्ष्म है जिसका



उ=उत्तर ध्रुव

द=दक्षिण ध्रुव

व वि=विषुवत् रेखा

(चित्र १३५)

विचार आगे कहीं किया जायगा। इस समय केवल इतना स्मरण करा देना पर्याप्त होगा कि पृथ्वी की इस गति के ही कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गतियां देख पड़ती हैं (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२६—१४०, १४५—१५६)।

७३ श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि ग्रह कक्षाएं भी भचक्र में बंधी हुई पूरब से पच्छिम को जा रही हैं। परंतु इन सब गतियों का कारण पृथ्वी की दैनिक गति ही है।

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः ।
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नराभुवि ॥७३॥

अनुवाद—सुर और असुर एक वार के उदय हुए सूर्य को लगातार आधे वर्ष तक देखते रहते हैं, चन्द्रलोकके निवासी पितृगण उसको एक पक्ष तक और पृथ्वी के निवासी मनुष्य उसको अपने एक दिन तक देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ वही है जो ६७ वें श्लोकमें बतलाया गया है। उत्तरार्धके प्रथम पदके अर्थमें ही कुछ विशेषता है जिसे समझाने की आवश्यकता है। सनातनधर्मी हिन्दुओं का विश्वास है कि चन्द्र-गोलके ऊर्ध्व भागमें पितृगण निवास करते हैं। यह भाग पृथ्वीके सन्मुख नहीं होता। पाश्चात्य ज्योतिषी भी कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा इस प्रकार करता है कि इसका अधोभाग ही पृथ्वीके सन्मुख रहता है और ऊर्ध्व भाग सदैव पीछे रहता है। इसलिए चन्द्रमा अपने अक्ष पर एक भ्रमण उतने ही दिनों में करता है जितने दिनमें वह पृथ्वीकी परिक्रमा करता है। इसका प्रमाण कठिन नहीं है। चन्द्र बिम्बको ध्यानसे देखने पर ज्ञात होता है कि उसके काले धब्बे बिम्बके किनारेसे सदैव एक ही स्थितिमें देख पड़ते हैं जिससे प्रकट होता है कि चन्द्र बिम्बका वह भाग जो पृथ्वीके सन्मुख है सदैव उसी दशामें रहता है अर्थात् चन्द्रमाका अक्ष-भ्रमण-काल उसके परिक्रमा कालके समान ही होता है। इस पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमामें अक्ष-भ्रमण होता ही नहीं। परन्तु यह ठीक नहीं है। यह एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। एक दीपक बीचमें रख दीजिये और उसकी ओर देखिए।

मान लीजिए कि दीपक आपके उत्तरको ओर है। अब दीपक को देखते हुए आप उसके चारों ओर घड़ीकी अनुकूल दिशामें घूमिए। जब आप चौथाई चक्कर कर लेंगे तब दीपक आपके पूरब हो जायगा। आधा चक्कर कर लेने पर दीपक आपके दक्षिण हो जायगा, तीन चौथाई चक्कर करने पर वह आपके पच्छिम हो जायगा और पूरा चक्कर करके उसी स्थान पर आ जाने पर जहाँसे चक्कर लगाना आरम्भ किया था वह दीपक फिर आपके उत्तर हो जायगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकारके एक चक्करमें आपका मुख सदैव दीपककी ओर रहता है और पीठ सदैव उसके पीछे। साथ ही साथ आपका शरीर भी एक बार घूम जाता है क्योंकि घूमने में भी तो आपका मुख उत्तर, पूरब, दक्षिण और पच्छिमकी ओर होता रहता है।

जब चन्द्रमाका ऊर्ध्व भाग सदा पृथ्वीसे विमुख रहता है तब उसका सम्बन्ध सूर्यसे किस प्रकार रहता है? अमावास्या के दिन सूर्य और पृथ्वीके बीचमें चन्द्रमा रहता है इसलिए इसका ऊर्ध्व भाग सूर्यके ठीक सामने रहता है। ऊर्ध्व भागमें पितृलोग निवास करते हैं इसलिए अमावस्याके दिन सूर्य पितरोंके ठीक सिर पर रहता है अर्थात् इस दिन उनका मध्याह्न होता है। इसीलिए अमावास्या के मध्याह्न कालमें पितरोंके लिए श्राद्ध तर्पण आदि किये जाते हैं। पूर्णमासीके दिन इनकी मध्यरात्रि होती है। कृष्ण पक्षका आधा भाग बीतने पर सूर्य पितरोंको उदय होता हुआ देख पड़ता है और शुक्लपक्षके आधे भाग तक वह बराबर उनको देख पड़ता है अर्थात् पितरोंका प्रातःकाल कृष्णपक्षकी अष्टमीको होता है और सायंकाल शुक्ल पक्षकी अष्टमी को।

ग्रह कक्षा और ग्रह गतियोंका सम्बन्ध—

उपरिस्थस्य महती कक्षाऽल्पाधः स्थितस्यच ।
महत्याकक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ॥७५॥
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्प भ्रमणाश्रितः ।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन ॥७६॥
स्वल्पयातो बहून भुङ्क्ते भगणांश्शीतदीधितिः ।
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः ॥७७॥

अनुवाद—(७५) जो ग्रहकक्षा ऊपर है अर्थात् पृथ्वीसे दूर है उसका परिमाण अधिक है और जो ग्रहकक्षा नीचे है अर्थात् पृथ्वीसे निकट है उसका परिमाण कम है। बड़ी कक्षाके अंश बड़े और छोटी कक्षाके अंश छोटे होते हैं। (७६) छोटी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अल्प कालमें अपना भगण अर्थात् चक्कर पूरा कर लेते हैं और बड़ी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अधिक कालमें अपना भगण पूरा करते हैं। (७७) चन्द्र कक्षा बहुत छोटी है इसलिए चन्द्रमा अनेक भगण पूरा करता है जब कि शनिश्चर बड़ी कक्षामें होनेके कारण थोड़े ही भगण पूरा कर पाता है।

विज्ञान-भाष्य—ग्रहोंकी कक्षाओं और उनकी गतियोंके सम्बन्धमें मध्यमाधिकार श्लोक २६, २७ तथा उसके विज्ञान भाष्य पृष्ठ २४—२६ में कुछ बतलाया जा चुका है इसलिए यहाँ अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है। बड़ी कक्षाके अंश बड़े और छोटी कक्षाके अंश छोटे कैसे होते हैं इसका प्रमाण

पृष्ठ २४ के चित्र १ से सहज ही मिल सकता है। बड़े वृत्तका २४ अंश जितना बड़ा है उतना ही छोटे वृत्तका ३६ अंश है अर्थात् बड़े वृत्तका एक अंश छोटे वृत्तके एक अंशसे बड़ा है। यह भी स्पष्ट है कि जो ग्रह बड़ी कक्षामें भ्रमण करते हैं उनका भगण काल बड़ा और जो ग्रह छोटी कक्षामें भ्रमण करते हैं उनका भगण काल छोटा होता है। परन्तु ग्रहके भगणकाल और उसकी दूरीमें ऐसा सरल सम्बन्ध नहीं जैसा कि भारतीय ज्योतिषी समझते थे और जैसा कि इसी अध्यायमें आगे बतलाया गया है। यह सम्बन्ध केपलरके तीसरे नियमके अनुसार है जो ग्रहगतियों और उनकी दूरियोंके सूक्ष्म विचार से निश्चित किया गया है (देखो पृष्ठ १२७—१३६)।

दिनपति, मासपति आदि जानने की रीति

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपः ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिता ॥७८॥
ऊर्ध्व क्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः ।
होरेशा सूर्यतनयादधोधः क्रमशस्तथा ॥७९॥

अनुवाद—(७८)—शनिसे नीचेका चौथा ग्रह क्रमानुसार दिनपति और तीसरा ग्रह वर्षपति होता है। (७९) चन्द्रमा से ऊपरके ग्रह क्रमशः मासपति तथा शनिसे नीचे ग्रह क्रमशः होरापति होते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकोंकी पूरी व्याख्या मध्यमाधिकारके पृष्ठ ६१—६८ में की गयी है इसलिये यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रह की गतियों का सम्बन्ध—

भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम् ।
सर्वोपरिष्टाद् भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम् ॥८०॥
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिताः शशिकक्षया ।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया करव्याप्तिस्तथा रवेः ॥८१॥
सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत् ।
कुवासरैर्विभज्याह्नः सर्वेषां प्राग्गतिः स्मृता ॥८२॥
भुक्तियोजनजा संख्या सेन्दोर्भ्रमण संगुणा ।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तिथ्याप्ता गति लिप्तिकाः ॥८३॥

अनुवाद—(८०)—सूर्य-कक्षाके योजनोंको ६० से गुणा करने पर नक्षत्र-कक्षाके योजनोंका मान आ जाता है। सब ग्रहोंसे ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजनोंमें घूमता है। (८१) शशिकक्षाके योजनोंको एक कल्पके चन्द्र भगणोंकी संख्यासे गुणा करने पर आकाश कक्षाका मान ज्ञात होता है। सूर्यकी किरणें वहीं तक जाती हैं। (८२) आकाश कक्षाके मानको जिस ग्रहके कल्प-भगणोंकी संख्यासे भाग दिया जायगा उसी ग्रह की कक्षाका मान योजनोंमें ज्ञात होगा। आकाश-कक्षाको कल्पके सावन दिनोंके भाग देने पर सब ग्रहोंको दैनिकगति योजनोंमें आ जाता है। (८३) इस योजनात्मक ग्रह गतिको चन्द्र-कक्षासे गुणा करके जिस ग्रहकी कक्षासे भाग देकर लब्धिको १५ से भाग दें उस ग्रहकी दैनिक गति कलाओं में आ जायगी।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकोंमें जो कुछ बतलाया गया है उसकी चर्चा कई जगहकी गयी है (देखो पृ० २३—२६; ६४२—६४५)। संक्षेपमें इसका सार यह है :—

(१) नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०

(२) आकाश कक्षा = कल्पके चन्द्र भगण × चंद्र कक्षा

(३) $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्पमें किसी ग्रहकी भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

(४) $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्पके सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रहकी दैनिक योजनात्मक गति

(५) $\frac{\text{ग्रहकी योजनात्मक गति} \times \text{चंद्र कक्षा}}{\text{ग्रह कक्षा} \times १५}$ = ग्रहकी दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे समीकरणसे स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्पमें योजनोंमें चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रहकी योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधोंसे अशुद्ध है। ग्रहकी दैनिक कलात्मक गति जाननेका सिद्धान्त वही है जो ६४३—६४५ पृष्ठोंमें अच्छी तरह समझाया गया है।

नक्षत्र कक्षा और आकाश कक्षाके विस्तार कल्पित हैं। नक्षत्रों या तारोंकी दूरीकी सीमा नहीं है। आज कलके वेधों से सिद्ध होता है कि कोई कोई तारे पृथ्वीसे इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाशके पहुँचनेमें लाखों वर्ष लग जाते हैं।

ग्रहकी दूरी जानने की रीति

कक्षा भूकर्ण गुणिता महीमण्डल भाजिता ।
तत्कर्णा भूमिकर्णोना ग्रहौच्च्यं स्वंदली कृताः ॥८४॥

अनुवाद—किसी ग्रहकी कक्षाको भूव्याससे गुणा करने और भूपरिधिसे भाग देने पर उस ग्रहकी कक्षाका व्यास होता है। इससे भूव्यास घटा कर शेषका आधा करनेसे भूपृष्ठसे उस ग्रहकी ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात होती है।

विज्ञान-भाष्य—परिधिसे व्यास जानने का यह एक नियम है। भूव्यासका भूपरिधिसे जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध प्रत्येक ग्रह की कक्षाके व्यास और परिधिमें होता है। इस श्लोकके पूर्वार्धका सरल अर्थ यह है कि ग्रहकी कक्षाको ३'१४१६ से भाग देने पर उसकी कक्षाका व्यास आ जाता है।

श्लोकके उत्तरार्धमें जो बात बतलायी गयी है वह पृष्ठ ५८७ के चित्र ७८ से स्पष्ट हो जाती है। इस चित्रमें यदि भ द रेखाको द की ओर इतना बढ़ाया जाय कि वह चन्द्र कक्षा और सूर्य कक्षा तक पहुँच जाय तो द से चन्द्र कक्षाके बिन्दु की दूरीको चन्द्रमा की ऊंचाई और सूर्यकक्षा के विन्दु को दूरी को सूर्यकी ऊँचाई समझनी चाहिये। इसी तरह अन्य ग्रहों की ऊँचाईके बारेमें भी समझना चाहिये।

ग्रहकक्षाओंके विस्तार योजनोंमें

खत्रयाब्धि द्विदहनाः कक्षा तु हिमदीधितेः ।
ज्ञशीघ्रस्याङ्क खद्वि त्रिकृत शून्येन्दवस्ततः ॥८५॥

शुक्रशीघ्रस्य सप्ताग्नि रसाब्धि रसषड्यमाः ।
ततोऽर्क बुधशुक्राणां खखार्थैकसुरार्णवाः ॥८६॥
कुजस्याप्यङ्कशून्याङ्क षड्वेदैकभुजङ्गमाः ।
चन्द्रोच्चस्या कृताष्टाब्धि वसु द्वित्र्यष्ट वह्नयः ॥८७॥
कृततु मुनिपञ्चाद्रिगुणेन्दु विषया गुरोः ।
स्वर्भानोर्वेदतर्काष्ट द्विशैलार्थखकुञ्जराः ॥८८॥
पञ्चबाणाक्षि नागर्तु रसाद्र्यर्काः शनेस्ततः ।
भानां रविखशून्याङ्क वसुरन्ध्रशराश्विनः ॥८९॥
खव्योम खत्रयखसागर षट्कनाग
व्योमाष्ट शून्य यमरूप नगाष्टचद्राः ।
ब्रह्माण्ड सम्पुट परिभ्रमणं समन्ताद्
भ्यन्तरे दिनकरस्य कर प्रसारः ॥९०॥

अनुवाद—(८५) चन्द्रमाकी कक्षा ३२४००० योजन, बुध शीघ्रकी कक्षा १०४३२०९ योजन; (८६) शुक्र शीघ्रकी कक्षा २६६४६३७ योजन; सूर्य, बुध और शुक्रकी कक्षाएं ४३३१५००; (८७) मङ्गल की कक्षा ८१४६९०९ योजन, चन्द्रोच्चकी कक्षा ३८३२८४८४ योजन; (८८) गुरुकी कक्षा ५१३७५७६४ योजन, राहु की कक्षा ८०५७२८६४ योजन (८९) शनिकी कक्षा १२७६६८२५५ योजन, नक्षत्र कक्षा २५९८९००१२ योजन और (९०) आकाश या ब्रह्माण्डकी परिधि १८७१२०८०८६४००००००० योजन है जहां तक सूर्यकी किरणों का प्रसार होता है।

विज्ञान-भाष्य—यदि ग्रहोंके कल्प-भगण मध्यमाधिकारके श्लोक २९-३३ के अनुसार मान कर इनकी कक्षाओं की गणना श्लोक ८२ के अनुसार की जाय तो ऊपर दी हुई संख्याओंकी इकाईके अंकमें थोड़ा सा अन्तर पड़ता है इसका कारण यह जान पड़ता है कि पूरी संख्या लिखनेके लिए भिन्नात्मक अंश या तो छोड़ दिया गया है या आधेसे अधिक होनेके कारण १ मान लिया गया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रोच्च और राहुकी कक्षाएँ नियमकी समानता दिखलानेके लिए दी गयी हैं क्योंकि ये आकाशमें स्वतन्त्र पिंड नहीं है, ये तो चन्द्र कक्षाके ही दो विशेष विन्दु हैं। नक्षत्र कक्षाका भी विशेष महत्व नहीं जान पड़ता।

आजकल वेधोंसे यह सिद्ध होता है कि ग्रहोंकी कक्षाएँ गोल नहीं है वरन् दीर्घवृत्त है जिनकी एक नाभि पर सूर्य रहता है और सब ग्रह सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दूरी सर्वदा समान नहीं रहती जैसा कि ५९० पृष्ठके लम्बनों की सारणीसे तथा पृष्ट ८६०में दिये हुए शीघ्र कर्णोंकी सारणीसे स्पष्ट है। इन शीघ्र कर्णोंके मान ऐसी इकाइयोंमें दिये हुए हैं जिनकी १००० इकाई पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी मानी गयी है। ऐसी १००० इकाइयां ९२९००००० मील (९ करोड़ २९ लाख मील) के समान होती हैं क्योंकि पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी इतनी ही है (देखो पृष्ठ ६४४)। यदि यह दूरी योजनोंमें जानना हो तो मीलोंको ५ से भाग दे देना चाहिए (देखो पृ० ८२)।

इस प्रकार भूगोलाध्याय नामक १२ वें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

अनुक्रमणिका

सूर्य-सिद्धान्त

ज्योतिषोपनिषद् और मानाध्याय

भाष्यकार

श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव

बी० एस-सी०, एल्० टी०, विशारद

प्रकाशक

विज्ञान परिषद् प्रयाग।

प्रथम संस्करण] १९४१ [मूल्य ॥)

ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३वाँ अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

श्लोक १-३—भूभगोलकी रचनाका उपदेश कैसे करना चाहिये। श्लोक ३-१३ भूभगोल बनानेकी रीति। श्लोक १३-१५—लग्न, अन्त्या आदिके स्थान निश्चय करना। श्लोक १६-१७— भूभगोल किस प्रकार अपने आप घूम सकता है। श्लोक १८-२४—समय बतालानेवाले अन्य यन्त्रोंकी चर्चा। श्लोक २५—ज्योतिषका माहात्म्य।

भूभगोल बनानेकी तैयारी—

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातः शुचिरलङ्कृतः।
सम्पूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान् भान्यथ गुह्यकान्॥१॥
पारम्पर्योपदेशेन यथाज्ञानं गुरोर्मुखात्।
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥२॥
भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।

अनुवाद—तब आचार्य स्नान करनेके बाद अलंकार धारण करके शुद्ध मनसे एकान्त और पवित्र स्थानमें सूर्य, ग्रहों, नक्षत्रों और यक्षोंकी भक्तिके साथ पूजा करके परम्परासे प्राप्त उपदेशके द्वारा गुरुके मुखसे सुने हुए और स्वयं प्रत्यक्ष देखे हुए ज्ञानसे शिष्यको पूरी तरह समझानेके लिये भूभगोलकी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली रचना करे।

विज्ञान भाष्य—कई टीकाकारोंने आचार्यका अर्थ सूर्यांश पुरुष और शिष्यका अर्थ मयासुर किया है; परन्तु मेरी समझमें यह सभी आचार्योंके लिये साधारण उपदेश है। 'कुर्यात्' शब्द भी यही प्रकट करता है। इन श्लोकोंसे प्रकट होता है कि आचार्यको केवल मौखिक उपदेशसे ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये वरन् व्यावहारिक और क्रियात्मक ज्ञान भी कराना चाहिये जिसके लिये उसे स्वयं व्यावहारिक ज्ञान भी रखना चाहिये और ज्ञानको प्रत्यक्ष देखनेवाला भी होना चाहिये, ऐसा नहीं कि टीका कर डालें सूर्य सिद्धांत ऐसे गूढ़ ग्रन्थकी, परन्तु आकाशके मुख्य-मुख्य तारोंकी भी पहचान न हो।

ग्रहोंकी पूजामें सूर्यकी पूजा भी आ जाती है परन्तु यहां ग्रहोंके साथ सूर्य शब्द अलग भी आया है जो सूचित करता है कि सूर्यकी विशेष प्रकारसे पूजा करनी चाहिये क्योंकि इस सिद्धांतके आदि आचार्य सूर्यदेव ही माने गये हैं। ग्रहोंकी आधुनिक परिभाषामें सूर्य आते भी नहीं हैं परन्तु सूर्य-सिद्धान्तकारने इस विचारसे सूर्यका नाम अलग नहीं दिया है क्योंकि और कहीं यह मत नहीं प्रकट होता।

यक्ष लोग धनके देवता कुबेरके सेवक हैं उनके कोष और बागकी रखवाली करते हैं। यह शायद शिल्पकलामें भी निपुण माने गये हैं क्योंकि पुष्पक विमान कुबेरका ही था। इसलिये यन्त्र रचनाके अर्थमें दैवी सहायता प्राप्त करनेके लिये इनकी भी पूजा करनेका आदेश है।

भूभगोल शब्द भू, भ और गोल तीन शब्दोंसे बना है इस लिये इसका अर्थ है ऐसा गोल जिसमें भूगोलके साथ आकाश-का वह गोल हो जिसमें ग्रह नक्षत्र आदि घूमते हुए माने गये हैं।

भूभगोल बनानेकी रीति—

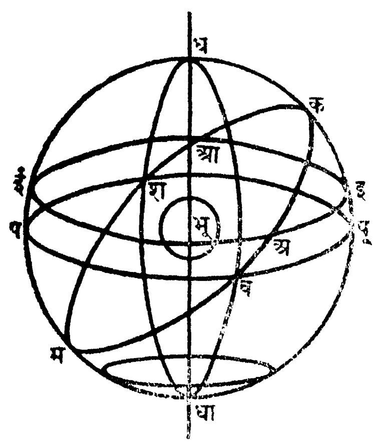
अभीष्टं पृथिवीगोलं कारयित्वा तु दारवम् ॥३॥
दण्डं तन्मध्यगं मेरोरुभयत्र विनिर्गतम् ।
आधारकक्षा द्वितयं कक्षा वैषुवती तथा ॥४॥
भगणांशाङ्गुलैः कार्या दलितैस्तस्त्र एव ताः ।
स्वाहोरात्रार्धकर्णैश्च तत्प्रमाणानुमानतः ॥५॥
क्रान्ति विक्षेप भागैश्च दलितैर्दक्षिणोत्तरैः ।
स्वैः स्वैरपक्रमैस्तिस्रो मेषादीनामपक्रमात् ॥६॥
कक्षाः प्रकल्पयेत् ताश्च कर्क्यादीनां विपर्ययात् ।
तद्वत्तिस्रस्तुलादीनां मृगादीनां विलोमतः ॥७॥
याम्यगोलाश्रिताः कार्याः कक्षाधाराद् द्वयोरपि ।
याम्योदग्गोल संस्थानां भानामभिजितस्तथा ॥८॥
सप्तर्षीणामगस्त्यस्य ब्रह्मादीनां च कल्पयेत् ।
मध्ये वैषुवती कक्षा सर्वेषामेव संस्थिता ॥९॥
तदाधारयुतेरूर्ध्वमयने विषुवद्वयम् ।
विषुवत्स्थानतो भागैः स्फुटैर्भगण सञ्चरात् ॥१०॥
क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत् ।
अयनादयनं चैव कक्षा तिर्यक् तथाऽपरा ॥११॥
क्रान्ति संज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयन् ।
चन्द्राद्याश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः ॥१२॥

ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपान्तेष्वपक्रमात् ।

अनुवाद—(३) लकड़ीका अभीष्ट आकारका एक गोला (भूगोल) बनाकर (४) इसमें छेद करके एक सीधा डंडा कस देना चाहिए जो भूगोलके केन्द्रसे होकर दोनों ओर बराबर निकला रहे और मेरु दंडका काम करे। इसी दंडमें दो आधारवृत्त (एक दूसरे से समकोणपर) स्थिर करो जिनके बीचोबीच विषुवद्वृत्त हो। (५) इन तीनों वृत्तोंको अंगुलोंसे ३६० अंशोंमें बांट दो। विषुवद्वृत्तके मानानुसार अहोरात्रवृत्तके व्यासार्धसे (६) दक्षिणोत्तरवृत्तपर क्रान्ति और शरके अंशोंके द्वारा जो इसपर अंकित हों मेष, वृष और मिथुन राशियोंके अन्तिम विन्दुओंकी क्रान्तियोंके अंतरपर इन तीन राशियोंके (७) अहोरात्रवृत्त स्थिर करो जो विलोम रीतिसे कर्क सिंह और कन्याके अहोरात्रवृत्त भी होंगे। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु तथा विलोम रीतिसे मकर, कुम्भ और मीन राशियोंके भी तीन अहोरात्रवृत्त (८) दोनों आधारवृत्तोंके ऊपर दक्षिण गोलमें स्थिर करो। ऐसे ही उत्तर और दक्षिण गोलोंमें स्थित नक्षत्रों, अभिजित (९) सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदय आदि तारोंके अहोरात्रवृत्त स्थिर करो। इन सब अहोरात्रवृत्तोंके बीचमें विषुवद्वृत्त होता है। (१०) विषुवद्वृत्त और दोनों आधारवृत्तोंके युतिविन्दुओंपर दोनों अयन विन्दु और दोनों विषुव सम्पात होते हैं। विषुव सम्पातके स्थानसे सायन राशिचक्रका आरम्भ करो। (११) इस प्रकार मेष वृष आदि राशियोंके विभाग तिर्यक् ज्याओं द्वारा करो। एक अयन विन्दुसे दूसरे अयन विन्दु तक तथा दूसरेसे फिर पहले तक जो तिर्यकवृत्त स्थिर किया जायगा (१२)

उसीका नाम क्रान्तिवृत्त है जिसपर सूर्य सदा प्रकाश देता हुआ भ्रमण करता है। चन्द्र, मंगल आदि ग्रह अपने अपने पातोंके द्वारा जो क्रान्तिवृत्तपर होते हैं (१३) खिचे हुए अपनी अपनी क्रान्तिसे विक्षेपके अंतमें देख पड़ते हैं।

विज्ञान भाष्य—यहां यह नहीं बतलाया गया है कि आधार कक्षा और विषुवत् कक्षा किस चीज़का बनाना चाहिये। अन्य ग्रन्थोंमें बांसकी पतली पतली तीलियोंका प्रयोग किया गया है है क्योंकि यही इतनी लचीली होती हैं कि गोलाईमें मोड़ी जा सकती हैं। आजकल लोहे या पीतलके तारसे यह काम आसानीसे हो सकता है। ऊपर बतलायी हुई रीतिसे जो भूभगोल बनता है वह अनेक वृत्तों (वलयों) के कारण बहुत ही दुर्बोध हो जाता है इस लिये आजकल यदि चित्र १३६ के अनुसार भूभगोल बनाया जाय तो बनानेमें भी सुगमता होगी और समझनेमें भी।



चित्र १३६

इस चित्रके बीचमें जो सबसे छोटा वृत्त है वह भूगोल (पृथ्वी-गोल) को सूचित करता है, इसी लिये बीचमें 'भू' लिखा है। 'धधा' दंड है जो पृथ्वी-गोलके केन्द्रसे होकर इसके दोनों ओर निकला रहता है। भू से ध और धा की दूरी समान है। इन्हीं स्थानोंसे दो आधारवृत्त 'धशधाव' और 'धपधापू' एक दूसरेसे समकोण पर बांधे जाते हैं। इन्हीं दोनों वृत्तोंपर ध और धासे समान अन्तर पर 'प व पू श' वृत्त बांधा जाता है जिसे विषुवत्कक्षा कहा गया है। इन तीनों वृत्तोंको ३६० समान भागोंमें बांट कर चिह्न बना देते हैं जो अंश कहलाते हैं। इसके बाद मेषादि बारह राशियोंके अहोरात्रवृत्त बनानेका आदेश है। परन्तु मेरी समझमें यह आवश्यक नहीं है। ऊपरके तीन वृत्त बांधनेके बाद सीधे क्रान्ति-वृत्तको ही बांधना सुगम होगा। यह भी ऊपरके किसी वृत्तके समान लेना चाहिए। इसे पहले व और श स्थानोंपर विषुवद्वृत्त और धशधाव आधारवृत्त के जोड़पर बांधना चाहिये फिर दूसरे आधारवृत्तके 'क' और 'म' स्थानों पर बांधना चाहिये। 'क' या 'म' का अन्तर विषुवद्वृत्तसे उतना ही होना चाहिये जितनी सूर्यकी परमक्रान्ति होती है जो आजकल साढ़े तेईस अंश २३° ३०′ के लगभग है। इस क्रान्ति-वृत्तको भी ३६० समान भागोंमें बांट देना चाहिये। 'व' स्थानको सायनमेष या वसंत सम्पात तथा 'श' स्थानको सायनतुला या शरद सम्पात कहते हैं। 'क' और 'म' स्थानोंको क्रमसे सायन कर्क और सायन तुला अथवा दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दु कहते हैं (देखो पृ० ३३८)। इन स्थानोंके विचारसे 'ध श धा व' आधार कक्षाको विषुतसम्पातवृत्त (Equinoctial Colure) और 'ध प म धा पू क' आधार कक्षाका अयनवृत्त (Solstitial

Colure) कहते हैं, क्योंकि पहले पर दोनों विषुव-सम्पात विन्दु और दूसरे पर दोनों अयन विन्दु होते हैं। चित्रमें क्रान्ति वृत्तके 'अ' स्थान पर विषुवद् वृत्तके समानान्तर एक अहोरात्रवृत्त 'अ इ आई' दिखलाया गया है। यह क्रान्तिवृत्तके दूसरे स्थान 'आ' पर मिलता है। 'अ' विन्दु वसंत-सम्पात 'व' से जितने अंतर पर है उतने ही अंतर पर परन्तु विलोम दिशामें शरद सम्पात 'श' से 'आ' का स्थान है अथवा 'क' से 'अ' और 'आ' समान दूरी पर हैं। यदि 'अ' सायन वृष राशिके आदिमें हो तो 'आ' सायन कन्या राशिके आदिमें होगा और यदि पहला सायन मिथुन राशिके आदिमें हो तो दूसरा सायन सिंह राशिके आदिमें होगा। इसी प्रकार क्रान्ति-वृत्तके किसी स्थानका अहोरात्र वृत्त बांधा जा सकता है। यही बात श्लोक ६-७ में बतलायी गयी है। इसके सिवा 'धा' स्थानके पास एक अहोरात्र वृत्त समझा जा सकता है।

१२ वें श्लोक में चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहोंके कक्षावृत्तोंकी भी चर्चा है परन्तु चित्रमें ऐसा कोई भी कक्षावृत्त नहीं दिखलाया गया है। ऐसा कक्षावृत्त बांधनेके लिये पहले ग्रहका पात-विन्दु क्रान्ति-वृत्त पर स्थिर करना चाहिये। इसी पर उस ग्रहका कक्षा वृत्त बांधना चाहिये जिसका दूसरा जोड़ इस स्थानसे १८० अंश पर क्रान्ति-वृत्त पर हो। यह दोनों स्थान ग्रहके पात स्थान हुए फिर इस वृत्तको ९० अंशके अंतरपर क्रान्ति-वृत्तसे उस ग्रहके परम विक्षेपके बराबर उत्तर और दक्षिण स्थानोंपर भी बांध देना चाहिये (परम विक्षेपकी चर्चा मध्यमाधिकारके पृ० ११२-११४ में की गयी है)।

उदयलग्न, मध्यलग्न, अन्त्या, चरज्या आदिका निश्चय—

उदयक्षितिजे लग्नमस्तं गच्छञ्च तद्वशात् ॥१३॥
लङ्कोदयैर्यथा सिद्धं खमध्योपरि मध्यमम् ।
मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या साऽन्याऽभिधीयते॥१४॥
ज्ञेयाचरदलज्या च विषुवत् क्षितिजान्तरम् ।
कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिज मण्डलम् ॥१५॥

अनुवाद—(१३) क्रान्तिवृत्तका जो विन्दु पूर्व क्षितिजमें लगा रहता है वह उदय लग्न है । इस उदय लग्नके अनुसार क्रान्ति वृत्त का जो विन्दु पच्छिम क्षितिजमें लगा रहता है वह अस्त लग्न होता है । (१४) याम्योत्तरवृत्त पर मध्यम लग्न होता है जिसकी गणना लंकाके उदयासुओंसे की जाती है । अहोरात्रवृत्त और याम्योत्तरवृत्तके संधिस्थानसे क्षितिज वृत्त तक जो ज्या होती है उसे अन्त्या कहते हैं । (१५) विषुवत् रेखाके क्षितिज जिसे उन्मण्डल कहते हैं और अपने स्थानके क्षितिजके बीच जो अन्तर होता है वह चरज्या है । भूगोल पर अपने स्थानको सबसे ऊपर करनेपर क्षितिज वृत्त भगोलके मध्यमें होता है ।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें एक ही शब्द कई परिभाषाओं के लिये प्रयुक्त हुआ है इस लिये इनका भाव जल्दी समझमें नहीं आता । १४ वें श्लोकके पूर्वार्धमें 'मध्यम' मध्य लग्नके लिये आया है । उत्तरार्धमें 'मध्य' शब्द अहोरात्रवृत्त और याम्योत्तर वृत्तको सन्धि स्थानके लिये आया है । १५ वें श्लोकके पूर्वार्धमें 'विषुवत्' विषवत्क्षितिज या उन्मण्डलके लिये तथा क्षितिज शब्द अपने स्थानके क्षितिज वृत्तके लिये प्रयुक्त हुआ है । इसके उत्तरार्ध में 'मध्ये' शब्द अपने स्थानके ऊर्ध्वाधर याम्योत्तरवृत्तके मध्यके

लिये आया है। इस प्रकारका प्रयोग बड़ा ही भ्रमोत्पादक होता है और वैज्ञानिक ग्रंथोंके लिये दोष समझा जाता है।

यह सब परिभाषाएं त्रिप्रश्नाधिकारके ४२६-४२८ पृष्ठोंपर तथा स्पष्टाधिकारके चित्र ३९, ४२, ४३ और त्रिप्रश्नाधिकारके चित्र ६३से अच्छी तरह समझी जा सकती है। उपर्युक्त विवरणसे भूभगोल यंत्रमें इन सब परिभाषाओंका ज्ञान सहज ही हो सकता है।

युक्ति जिससे भूभगोल यंत्र सदा घूमता रहे—

वस्त्रच्छन्नं बहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम् ।
अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् ॥ १६ ॥
तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत् ।
गोप्यमेतत्प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह ॥ १७ ॥

अनुवाद—(१६) लोकालोकसे अर्थात् क्षितिजवृत्तसे घिरे हुए गोलको ऊपर कपड़ेसे ढक कर जल प्रवाहके द्वारा ऐसा प्रबन्ध करे कि वह अपने आप घूमकर नाक्षत्रकाल सूचित करे। (१७) अथवा इस गोल यंत्रको पारेके संयोगसे ऐसा बनावे कि वह अपने आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिये। साफ साफ बतला देनेसे इस संसारमें यह सबको मालूम हो जायगा।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकोंकी भाषा बहुत ही अस्पष्ट है। इस बातका तनिक भी बोध नहीं होता कि यह गोलयंत्र किस प्रकार अपने आप घूम कर आकाशका दैनिक भ्रमण सिद्ध करता था। इतना तो प्रकट है कि गोलयंत्रका मेरुदण्ड इस प्रकार स्थिर किया जाता था कि वह ध्रुवकी ओर रहे। फिर उसमें ऐसी युक्तिकी जाती होगी कि जलकी धारासे उसमें ऐसी

टक्कर लगे कि एक नाक्षत्र दिनमें वह एक बार घूम जाय जैसे पनचक्की चलती है। पानीकी जगह पारेसे भी काम लिया जाता था परन्तु यह पता नहीं कि कैसे। अंतमें यह बतलाया गया है कि यह युक्ति सबसे नहीं बतलानी चाहिये। शायद इसी लिये संकेत मात्रकर दिया गया है। इससे लोग यह परिणाम निकाल सकते हैं कि लेखक स्वयम् इस क्रियाको अच्छी तरह नहीं जानता था। उसको केवल आभास था कि ऐसा यन्त्र बन सकता है जो अपने आप चलता हो, इसीलिये उसने सब बातें गोल रखी है। यह भी संभव है कि प्राचीन कालमें शिल्पकलाकी इतनी उन्नति थी कि ऐसे स्वयंवह यंत्र पारे और पानीके संयोगसे उसी प्रकार बनते थे जैसे आजकल घड़ी आदि अपने आप चलने वाले यंत्र बनते हैं, परन्तु बीचमें समयके फेरसे सब ज्ञान नष्ट हो गया हो।

तस्माद् गुरूपदेशेन रचयेद् गोलमुत्तमम्।
युगे युगे समुच्छिन्ना रचनेयं विवस्वतः॥ १८॥
प्रसादात् कस्यचिद्भूयः प्रादुर्भवति कामतः।
कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत्॥ १९॥
एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारिणि।

अनुवाद—(१८) इसलिये गुरुके उपदेशके अनुसार उत्तम गोलकी रचना करनी चाहिये। यह रचना प्रत्येक युगमें नष्ट हो जाती है और सूर्य भगवानकी (१९) इच्छानुसार उनके प्रसादसे फिर किसीको प्राप्त होती है। इसी प्रकार समयका ज्ञान करनेके लिये अन्य यन्त्रोंकी भी रचना करनी चाहिये। (२०) आश्चर्य

उत्पन्न करनेवाले यंत्रमें (उसको चलानेके लिये) पारेका प्रयोग एकान्तमें करना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंसे प्रकट होता है कि स्वयंवह यंत्र बनानेकी क्रिया काल पानेपर नष्ट हो जाती है, जिसको फिर सूर्य भगवान् अपनी इच्छासे किसीको बतला देते हैं। इसके सिवा समय बतलानेवाले अन्य यंत्रोंको बनानेके लिये भी कहा गया है और अंतमें फिर बतलाया गया है कि पारेका प्रयोग एकान्तमें करना चाहिये, सबको नहीं बतलाना चाहिए।

समय बतलानेवाले अन्य यन्त्रोंके नाम—

शंकु यष्टि धनुश्चक्रैश्छाया यन्त्रैरनेकधा ॥२०॥
गुरूपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः।
तोय यन्त्र कपालाद्यैर्मयूर नरवानरैः।
ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक् कालं प्रसाधयेत् ॥२१॥
पारदाराम्बु सूत्राणि शुल्बतैल जलानि च।
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभाः ॥२२॥

अनुवाद—(२०) शंकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकारके छाया यंत्रोंके द्वारा (२१) चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरुके उपदेशसे कालका ज्ञान प्राप्त करते हैं। कपाल आदि जल यंत्रोंसे, मयूर, नर और वानर यंत्रोंसे जिनके पेटमें बालू रहती है जो सूतके सहारे निकलती है समयका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। (२२) पारेका आरा, जल, सूत, शुल्ब, तेल और जल, पारा और बालू इन सबका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु यह भी कठिन है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें समय जाननेके अनेक यंत्रोंके नाम गिना दिये गये हैं परन्तु उनके बनानेकी विधि कहीं नहीं बतलायी गयी है। पहले चार यंत्रोंसे सूर्यकी छाया देखकर समय जाना जा सकता है इसलिये वे दिनमें ही काम कर सकते हैं और उनको छाया यंत्र कहा गया है। इनमेंसे शंकुकी चर्चा त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायमें बहुत हुई है। उस अध्यायमें यह बतलाया गया है कि १२ अंगुलके शंकुसे अक्षांश, नतांश, नतकाल, दिशा आदिका ज्ञान कैसे किया जाता है। इसके द्वारा समय जाननेके लिये गुणा भागकी क्लिष्ट क्रिया करनी पड़ती है, सीधे समय नहीं निकलता। छायाकी नाप भी बहुत शुद्ध नहीं ली जा सकती इसलिये इस यंत्रसे जो समय आता है वह चार पांच मिनट अधिक या कम हो सकता है। इसलिये आजकल इससे काम लेनेकी जरूरत नहीं।

यष्टि यंत्र—इसकी चर्चा इस पुस्तकमें और कहीं नहीं की गई है इसलिये यह नहीं बतलाया जा सकता कि इससे कैसे काम लिया जाता था। भास्कराचार्य जीने सिद्धान्त शिरोमणिके यंत्राध्यायमें इसकी विशेष चर्चा की है जिससे जान पड़ता है कि इससे भी समयका ज्ञान करनेके लिये क्लिष्ट गणना करनी पड़ती है। इसलिये आजकल अच्छे साधनोंके होते हुए यह यंत्र भी आवश्यक नहीं है।

धनुष और चक्र-यंत्रसे समयका ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह दोनों यंत्र वास्तवमें एक ही हैं। चक्र-यन्त्रमें एक गोल चक्र होता है जिसके किनारे समान भागोंमें अंकित रहते हैं। यदि ६० समान भाग हों तो प्रत्येक भाग एक घड़ीका समय सूचित करता है। इस चक्रके केन्द्रसे एक सीधी कीली लोहे या

पीतलकी कस दी जाय और चक्र पृथ्वीपर दो खंभोंमें इस प्रकार गाड़ दिया जाय कि कोलीका सिरा आकाशके ध्रुवकी दिशामें हो तो इस यन्त्रसे सूर्यका नतकाल (Hour Angle) सहज ही जाना जा सकता है। दिल्ली और काशी आदिके मान-मन्दिरोंमें पत्थरके वृहदाकार चक्र यन्त्र बने हैं जो पृथ्वीपर इस प्रकार स्थिर किये गये हैं कि इनके तल विषुवद्वृत्तके समानान्तर हैं और इनके केन्द्रसे एक कीली दोनों ओर ६ इंचके लगभग निकली हुई ध्रुवोंको दिशामें है। इस चक्र-यंत्रके दोनों तरफ़के किनारे सम भागोंमें अंकित है। जब सूर्य उत्तर गोलमें रहता है (सायनमेष संक्रान्तिसे सायन तुला संक्रान्ति तक) तब कोलकी छाया यंत्रके उत्तरी तलपर पड़कर नतकाल बतलाती है और जब सूर्य दक्षिण गोलमें रहता है तब कीलकी छाया दक्खिनी तलपर पड़ती है और नतकाल सूचित करती है। जैसे जैसे सूरज ऊपर उठता है छाया नीचे होती जाती है। मध्याह्नकालमें कीलकी छाया ठीक नीचे हो जाती है। यदि चाहें तो इसके किनारे घंटोंमें भी अंकित हो सकते हैं। यह भी एक प्रकारकी धूप-घड़ी है।

भास्कराचार्य जीने एक दूसरे प्रकारका चक्र-यंत्र बतलाया है। यह भी चक्राकार होता है परन्तु यह स्थिर नहीं किया जाता। किनारेसे कुछ दूर एक छेद होता है जिसमें एक जंजीर लगी रहती है। इसी जंजीरसे यह लटकाया जा सकता है। इसके किनारे ३६० अंशोंमें अंकित रहते हैं। लटकने पर इसका केन्द्र छेदके ठीक नीचे रहता है। इन दोनों बिन्दुओंको मिलाने वाली रेखासे समकोण पर जो रेखा होती है, और जो चक्रके केन्द्र पर भी रहती है उसके एक किनारे शून्यका अंक रहता है और दूसरे किनारे १८० का। जब समय जानना हो इसको

लटकाकर ऐसा घुमाओ कि इसके केन्द्रपर जड़ी हुई कीलकी नोकको छाया किनारेके भागों पर पड़े। यदि इसके किनारे सायन राशियोंके इष्ट स्थानके उदयमानोंमें भी विभाजित हों तो इससे लग्नका ज्ञान भी किया जा सकता है। आजकलके सूक्ष्म यंत्रोंके सामने इस यंत्रसे भी विशेष लाभ नहीं है।

चाप या धनुष यन्त्र—यदि चक्र-यन्त्रका आधा भाग लेकर यंत्र बनाया जाय तो सूर्यका नतकाल उसी प्रकार जाना जा सकता है।

आजकल दिनमें सूर्यका किसी समयका नतांश एक साधारण चापयंत्रसे जो कार्ड-बोर्डका बनाया जा सकता है सहज ही जाना जा सकता है और उससे नतकालका ज्ञान भी हो सकता है। ऐसे यंत्रकी चर्चा इस लेखक ने विज्ञान भाग ४२ संख्या १ पृष्ठ १८ में की है चित्र (१३८)। उसमें कई सारणियां भी दी गयी हैं जिनसे २८ अक्षांशसे २२ अक्षांश तकके स्थानोंमें दिनमें समय जाना जा सकता है। इस यंत्रसे सूर्यकी छायाके अनुसार समय जाना जाता है और चार पांच मिनटसे अधिक अंतर नहीं पड़ता। इस लेखककी घड़ी जब कभी बन्द हो जाती है या ठीक समय नहीं देती तब वह इसीसे मिला लेता है। इस यंत्रसे किसी स्थानका अक्षांश भी सहज ही जाना जा सकता है। यह सारणी त्रिप्रश्नाधिकारके पृष्ठ ४२५के गुर (१) के अनुसार तैयारकी गयी है। इससे काम लेनेको संक्षिप्त रीति इस अध्यायके अंतमें दी गयी है, जहां एक धूप-घड़ीकी भी चर्चाकी जायगी।

इन छाया-यन्त्रोंके सिवा जल-घड़ी और बालू-घड़ी आदिसे भी काम लिया जाता था। जल घड़ीको कपाल यंत्र कहते थे

क्योंकि यह कपालकी तरह अर्द्धगोलाकार होती थी। इसके पेंदमें एक छोटासे छेद होता है। यदि यह पानीमें तैरा दिया जाय तो छेदसे पानी धीरे धीरे कटोरेमें भरने लगता है और इतना भर जाता है कि कटोरा डूब जाता है। इस कटोरेका और छेदका आकार ऐसा होता था कि दिन रातमें वह ६० बार डूब जाता था। जितनी देरमें वह एक बार डूबता था उसे घड़ी कहते थे। इसी लिये इसका नाम घटीयंत्र हो गया जो आगे चलकर घड़ीके नामसे प्रसिद्ध हो गया। प्राचीनकालमें घटी यंत्र बनानेके लिये ऐसे नियम बन गये थे जिनसे स्पष्ट बोध होता था कि कपाल या कटोरा कितना बड़ा हो और छेद कैसा हो। इसका विशेष वर्णन २३ वें श्लोकके विज्ञान-भाष्यमें किया जायगा।

मयूर और वानर यंत्रोंके विषयमें विस्तार पूर्वक कहीं नहीं लिखा गया है। यह शायद मोर, और वानरके आकारके यंत्र बनाये जाते होंगे जिनमें सूत और बालूके सहारे समयका ज्ञान किया जाता रहा होगा। इन यंत्रोंमें पारा, तेल, जल आदिके द्वारा ऐसी युक्ति की जाती थी कि वे स्वयम् चलें और समयका ज्ञान करावें परन्तु इस बातका स्पष्ट वर्णन नहीं है कि वह किस प्रकार बनाये जाते थे, केवल इतना ही संकेत है कि इनका प्रयोग बड़ा दुर्लभ है।

पता नहीं कि ऐसे स्वयंवह यन्त्र यथार्थमें बनाये गये थे या केवल कल्पनामें ही थे। आज कल तो अपने आप चलने वाली तरह तरह की घड़ियां सभी काममें ला सकते हैं। परन्तु उनका सिद्धांत बतलानेकी यहां आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

कपाल यन्त्र—

ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि ।
षष्टिमज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम् ॥ २३ ॥

अनुवाद—ताम्बेका कटोरा जिसके पेंदेमें छेद हो निर्मल जलके कुंडमें रखनेसे दिनरातमें ६० बार डूबे तो वह शुद्ध कपाल यन्त्र होता है ।

विज्ञान भाष्य—ऐसे कपाल यन्त्रका विशेष वर्णन आचार्य श्रीपति ने सिद्धान्त शेखरमें इस प्रकार दिया है :—

शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम् ।
तदम्भसा षष्टिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्धप्रतिमं घटीस्यात् ॥
सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुलास्यात् ।
विद्धं तया प्राकृतनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाम्बुना तत् ॥

अर्थात् दस पल तोलका तांबा लेकर उसका अर्ध गोलाकार एक कटोरा ऐसा बनाया जाय जिसकी ऊँचाई ६ अंगुल और जिसके मुखकी चौड़ाई इसका दूनो हो, जिसमें ६० पल पानी आता हो और जिसकी पेंदीमें इतना बड़ा छेद होना चाहिये कि उसमें ३⅓ माशा सोनेकी चार अंगुल लम्बी सुई जा सके जिससे एक घड़ीमें वह कटोरा पानीसे भर जाय ।

इससे यह सिद्ध होता है कि यह आचार्य समयकी शुद्ध शुद्ध नापके लिये कितना प्रयत्नशील था । परन्तु इस प्रकारका यन्त्र बनाना सुगम नहीं था । इसी लिये भास्कराचार्य[1] जीने इसकी उपेक्षा की है ।

१—अत्र दशभिः शुल्बस्य पलैरित्यादि यद् घटी लक्षणम् कैश्चित् कृतं तद्युक्ति शून्यं दुर्घट चेत्ये तदुपेक्षितम् । (गोलाध्याय, यन्त्राध्या श्लोक ८ की व्याख्या)

नरयन्त्र—

नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ।
छाया संसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम् ॥२४॥

अनुवाद—इसी प्रकार नरयन्त्र अथवा शङ्कु दिनमें जब सूर्य स्वच्छ हो अच्छा होता है। छायाकी ठीक ठीक नापसे समय का ठीक ठीक ज्ञान करनेकी रीति बतलायी गयी है।

विज्ञान भाष्य—त्रिप्रश्नाधिकारमें यह विस्तार पूर्वक बतलाया गया है कि १२ अंगुल लम्बे शंकुकी छायासे दिशा देश और कालकी गणना कैसेकी जाती है।

उपसंहार—

ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्त्वतः।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नरः ॥ २५ ॥

इति सूर्य-सिद्धान्ते ज्योतिषोपनिषदध्याय

अनुवाद—ग्रह और नक्षत्रोंकी चाल तथा गोल गणितके तत्व को जाननेवाला मनुष्य ग्रहलोकको प्राप्त होता है और जन्मान्तरमें आत्मज्ञानी होता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकसे यह प्रकट होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिष-शास्त्रके तत्वकी जानकारीका कितना महत्व समझते थे और इसका प्रत्यक्ष बोध करानेके लिये अनेक प्रकारके यन्त्रोंकी कैसी रचना करते थे। आजकल यन्त्रोंकी इतनी उन्नति हो गयी है कि इनके द्वारा आकाशीय पिंडोंकी गति का साधन बड़ी सूक्ष्मतासे किया जा सकता है। इस अध्यायमें ऐसे एक यंत्रकी

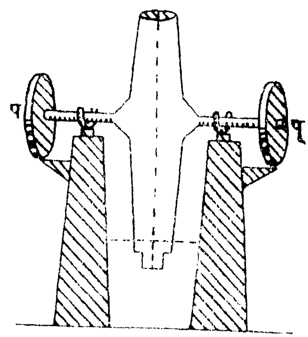
चर्चा संक्षेपमें की जाती है। जिनको इनके सम्बन्धमें विशेष रीति से जाननेकी इच्छा हो उन्हें प्रकाश-विज्ञानकी पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

दूरदर्शक—इस यंत्रसे दूरकी वस्तुओंका प्रतिबिम्ब बहुत बड़ा और स्पष्ट देख पड़ता है। इसका सिद्धान्त संक्षेपमें यह है :—

पीतलकी नलिकाके एक सिरे पर ऐसा ताल रहता है जिससे दूरकी वस्तुका प्रतिबिम्ब उसकी नाभी पर या इसके पास ही बनता है। इस प्रतिबिम्बके पास ही दूसरे सिरे पर एक छोटा ताल होता है जिससे यह प्रतिबिम्ब बड़ा होकर दिखाई पड़ता है। यह छोटा ताल एक दूसरी नलिकाके सिरे पर जड़ा रहता है जो बड़ी नलिकामें खिसक सकती है। बड़ा ताल वस्तुकी ओर रहता है इस लिये इसका नाम 'वस्तु ताल' और छोटा ताल देखनेवाले के नेत्रकी ओर रहता है इस लिये इसे 'नेत्र ताल' कहते हैं। माउन्ट विल्सनके वेधालयके दूरदर्शकके वस्तु ताल का व्यास १०० इंच अथवा ८ फुट ४ इंच है। दस वर्षसे एक ऐसा ताल बनाया जा रहा है जिसका व्यास २०० इञ्चका होगा। इसकी मोटाई २५ इञ्चकी है और तोल ३३००० पौंड अथवा ४०२ मनसे कुछ ऊपर। इस ताल से जो प्रतिबिम्ब बनेगा वह दस लाख गुना बढ़ाया जा सकता है। चन्द्रमा यहांसे २५०००० मील दूर है परन्तु इस तालसे देखने पर वह ऐसा जान पड़ेगा मानो केवल २० मीलकी दूरी पर है। यह ताल जिस नली में जड़ा जायगा उसकी लम्बाई ५५ फुट और तोल २५०००० पौंड अथवा ३०४९ मन[1] है।

(१) २५ अक्टूबर १९३८ के अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' से

यदि यह यंत्र इस प्रकार स्थिर किया जाय कि यह पूर्व-पश्चिम दिशामें स्थापित सम अक्षपर याम्योत्तर वृत्तके तलमें घूमे तो इसका नाम याम्योत्तर यंत्र हो जाता है। इससे किसी ग्रह या तारेका याम्योत्तरलंघन काल, विषुवांश और क्रान्तिकी नाप हो सकती है। चित्र १३७ से इस यंत्रके स्थिर करनेकी रीति मोटे तौर पर मालूम हो सकती है। 'पूप' अक्षके दोनों सिरोंपर दो चक्र होते हैं जिनके किनारोंपर अंशों और कलाओंके चिह्न अंकित रहते हैं। दूरदर्शकको किसी ग्रह या तारेकी सीधमें करते समय चक्र जितना घूम जाता है उसीसे उस ग्रहका नतांश जान लिया जाता है। स्थानका अक्षांश मालूम ही रहता है। बस इन दोनोंकी सहायतासे उस ग्रहकी क्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।



चित्र १३७

साधारण चापयन्त्र (अथवा सभी जगह काम देने वाली धूप घड़ी)

चाप यंत्र

विज्ञान भाग ४३ संख्या १ पृष्ठ १८ का ब्लाक यहां देना चाहिये

चाप यंत्रसे समय जाननेकी सारणी (२५॥ अक्षांशके स्थानोंके लिये जैसे काशी, प्रयाग, पटना आदि

मास	तारीख	काल समीकरण	१२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय घं०	सूर्योदय मि०
जनवरी	१	+३	४६	५१	५७	६५॥।	७६	८७॥।		−१॥	२२	दिस०	६	४८
	१०	७॥	४७॥	४९॥।	५६	६४॥।	७५।	८७		१०।	३		६	४४
	२१	११॥	४५॥	४७॥	५४।	६३।	७४	८६		१३॥	२२	नवम्बर	६	४०
	२९	१३।	४३॥	४५॥।	५२॥	६२	७३	८५		१५॥।	१३		६	३५
फरवरी	५	१४	४१॥	४३॥।	५०॥।	६०॥	७१॥।	८४		१६।	६		६	३१
	११	१४॥	३९॥	४२	४९।	५९	७०॥	८३		१६।	३१	अक्टूबर	६	२७
	१७	१४।	३७॥	४०।	४७॥।	५७॥।	६९॥	८२		१५॥	२५		६	२३॥
	२३	१३॥	३५॥	३८।	४६	५६॥	६८॥	८१		१५	१९		६	१९॥
	२८	१२॥	३३॥	३६॥	४४॥	५५।	६७।	८०।		१३॥।	१४		६	१५॥

मास	तारीख	काल समीकरण	१२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय घं०	सूर्योदय मि०
मार्च	५	११॥	३१॥	३७॥।	४३	५४	६६।	७६।		१२॥	६		६	१२
	१०	१०॥	२६॥	३२॥।	४१॥	५२॥।	६५।	७८।		१०॥।	३		६	८
	१६	९॥।	२७॥	३१	४०	५१॥	६४।	८७॥		९।	२८		६	४
	२१	७॥	२५॥	२६।	३८॥।	५०॥	६३।	७६॥		७॥	२३		६	०
	२६	५॥।	२३॥	२७॥	३७।	४६।	६२।	७५॥।	८६	५॥।	१८	सितम्बर	५	५६
	३१	४।	२१॥	२५॥।	३६	४८।	६१।	७४॥।	८८।	३	१३		५	५२
अप्रैल	५	२॥।	१६॥	२४।	३४॥।	४७।	६०॥	७४	८७॥	२	७		५	४८
	१०	१॥	१७॥	२२॥	३३॥	४६।	५६॥	७३	८६॥	१	२		५	४४॥
	१६	०	१५॥	२१	३२॥	४५॥	५८॥।	७२।	८५॥।	+१॥	२७		५	४०॥
	२२	–१॥	१३॥	१६॥	३१॥	४४॥	५८	७१॥	८४॥।	३	२२	अगस्त	५	३६॥
	२८	२॥	११॥	१८	३०॥	४३॥।	५७।	७०॥।	८४	४॥	१५		५	३३
मई	४	३।	९॥	१६॥।	२६॥	४३	५६॥	७०	८३	५॥	६		५	२९
	१२	३॥।	७॥	१५॥।	२८॥।	४२।	५५॥।	६६।	८२।	६।	१		५	२५
	२०	३॥।	५॥	१४॥।	२८॥।	४०॥।	५५	६८॥	८१॥	६।	२४	जुलाई	५	२०
जून	१	२॥	३॥	१४	२७॥।	४१।	५४॥	६७॥।	८०॥।	५॥	१२		५	१६
	१४	०	...	...	...	...	...	...	...					
	२१	+१॥	२	१३॥	२७।	४०॥।	५४	६७	८०				५	१२

सारिणीको ध्यानसे देखने पर पता चलेगा कि जहां १२ लिखा हुआ है वह मध्याह्न काल सूचित करता है। इसके बाद वाले खानेमें नीचे १ और ऊपर ११ लिखे हुए हैं। इनका अर्थ यह है कि सूर्य्यका नतांश ११ बजे जितना होता है उतना ही एक बजे होता है। परन्तु मध्याह्न कालिक नतांश से इसमें अधिक अन्तर नहीं रहता। जनवरी और दिसम्बरमें तो यह अन्तर सवा दो अंशसे अधिक नहीं होता। फरवरी और अक्टूबरमें यह २॥ से ३ अंश तक हो जाता है। मार्च और सितम्बरमें ४। के लगभग हो जाता है। अप्रैल और अगस्तमें ६॥ अंश और मई, जून, जुलाई, अगस्तमें इससे भी अधिक हो जाता है। इसलिये इस धूप घड़ीसे जाड़के दिनोंमें ११ बजेसे १ बजे तकका समय बहुत शुद्धताके साथ नहीं जाना जा सकता।

एक बजेसे २ बजे तक या १० बजेसे ११ बजे तकका समय सुगमतासे जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कालोंमें समयका ज्ञान बहुत ही सूक्ष्मताके साथ किया जा सकता है।

काल-समीकरण—धूप घड़ीसे जो समय आता है वह शुद्ध स्थानीय काल होता है तारघरकी घड़ीसे जो समय जाना जाता है वह इससे भिन्न होता है। स्थानीय-कालसे तारघरकी घड़ीका समय जाननेके लिये स्थानीय-कालमें २ संस्कार करने पड़ते हैं। एकको काल-समीकरण और दूसरेको देशान्तर-संस्कार कहते हैं। काल-समीकरण १ ली जनवरीसे १६ अप्रैल तक धनात्मक होता है, इसके बाद १४ जून तक वह ऋणात्मक रहता है। १४ जूनके बाद फिर धनात्मक हो जाता है और अगस्त तक ऐसा ही रहता है। सितम्बरसे दिसम्बर तक प्रायः ऋणात्मक रहता है। जब धनात्मक रहता है तब धूप घड़ीके समयमें इसे जोड़ना पड़ता है

और जब ऋणात्मक होता है तब घटाना पड़ता है। यह संस्कार करनेपर शुद्ध स्थानीय-काल मध्यम स्थानीय कालके समान हो जाता है।

देशान्तर संस्कार—मध्यम-स्थानीय-काल जान लेनेके बाद यदि अपना स्थान ८२॥ अंशकी देशान्तर रेखासे १ अंश पूर्व हुआ तो ४ मिनट, २ अंश पूर्व हुआ तो आठ मिनट और दस अंश पूर्व हुआ तो ४० मिनट घटाना पड़ता है। परन्तु यदि अपना स्थान ८२॥ अंशकी देशान्तर रेखासे पश्चिम हुआ तो उसी हिसाबसे जोड़ना पड़ता है। ऐसा करनेसे जो समय आता है वही तारघर या रेलघड़ीका समय होता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त-काल—सारणीमें सूर्योदय काल भी घण्टा मिन्टों में दिया हुआ है। यदि सूर्योदय कालको १२ घंटेसे घटा दिया जाय तो सूर्यास्त काल आ जायेगा। यह वह समय है जिस समय सूर्यके बिम्बका केन्द्र क्षितिज पर गणितके अनुसार आना चाहिये। परन्तु वास्तवमें प्रकाश-वर्तनके कारण सूर्यका बिम्ब क्षितिजके नीचे रहते हुए भी दिखाई पड़ने लगता है। इस वर्तनके कारण सूर्योदय दिये हुये समयसे प्रायः २॥ मिनट पहले और सूर्यास्त २॥ मिनट बाद होता है।

सूर्यका विम्ब भी विन्दुके समान नहीं है। इसलिये उसके ऊपरवाला किनारा प्रायः एक मिनट पहले उदय हो जाता है और १ मिनट बाद अस्त होता है। इसलिये सूर्योदय कालमें ३॥ मिनट घटा देनेसे वह समय आ जायगा जिस समय सूर्य बिम्बका ऊपर वाला किनारा देख पड़ने लगता है। इसी प्रकार सूर्यास्त कालमें ३॥ मिनट जोड़ देनेसे यह समय आ जायगा जिस समय सूर्यका पूरा बिम्ब छिप जाता है। परन्तु यह समय स्थानका

स्पष्ट-काल है। रेल घड़ीका समय जाननेके लिये काल-समीकरण और देशान्तर-संस्कार भी करना चाहिये। सारणीको देखनेसे पता चलता है कि दो तारीखोंमें सूर्योदय काल एक ही होता है। उदाहरणके लिये १० जनवरी और ३ दिसम्बरको सूर्योदय ६ बजकर ४४ मिनटपर इलाहाबादमें या २५॥ अक्षांशके स्थानोंमें सब जगह होता है। परन्तु इन तारीखोंमें सूर्योदयके समय रेलकी घड़ीमें भिन्नता दीख पड़ती है। कारण स्पष्ट है। ३ दिसम्बरको काल समीकरण १०। मिनट घटाना पड़ता है और १० जनवरीको ७॥ मिनट जोड़ना पड़ता है। अन्य संस्कार दोनों में समान होते हैं। उदाहरणके लिये इन दो तारीखोंका सूर्योदय काल रेलकी घड़ीसे जो आता है, वह नीचे बतलाया जाता है—

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्योदय काल	६ घं० ४४ मि०	६ घं० ४४ मि०
वर्तन-संस्कार	—२॥ मि०	—२॥ "
काल समीकरण संस्कार	—१०। "	+ ७॥ "
देशान्तर संस्कार (इलाहाबाद के लिये)	+ २ "	+ २ "
रेलकी घड़ीसे सूर्योदय काल	६ घं० ३३। मि०	६ घं० ५१ मि०

यदि सूर्य-बिम्बके ऊपरी किनारेके उदयका समय जानना हो तो १ मि० कम कर देना चाहिये। इन तारीखोंमें रेल घड़ीसे सूर्यास्त-काल जाननेके लिये स्पष्ट सूर्योदय कालको १२ घंटेसे घटानेपर ५ घंटा १६ मिनट होता है। इसमें वर्तन, काल-समीकरण और देशान्तर-संस्कार इस प्रकार करना चाहिये।

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्यास्त	५ घं० १६ मि०	५ घं० १६ मि०
वर्तन-संस्कार	+ २॥ मि०	+ २॥ मि०

काल-समीकरण	—१०। "	+७।। मि०
देशान्तर	+२ मि०	+२ "
रेल घड़ीका समय	५ घं० १० मि०	५ घंटा २८ मि०

टिप्पणी—गणित सिद्ध सूर्योदय कालमें वर्तन-संस्कार घटाना और सूर्यास्त कालमें जोड़ना चाहिये।

सूर्यका नतांश नापकर समय जानना—

उदाहरण १—१७ फरवरीको मध्याह्नके पहले सूर्य्यका नतांश ५० है। समय क्या है? इस तारीख़ को १० बजेका नतांश ४७।। और ९ बजेका ५७।। है इसलिये ९ और १० बजेके बीच सूर्य का नतांश ५० होगा। यह भी प्रगट है कि ९ से १० बजे तक नतांश १० अंश कम होता है। इसलिये इस घंटेमें नतांश १ घंटेमें १० अंशकी दरसे घट रहा है अर्थात् १ अंश ६ मिनटमें घटता है। ५७।। से ५० तक ७।। अंश होते हैं। इसलिये ७।। अंशकी कमी ६ × ७।। मिनट अथवा ४६।। मि० में होती है। इसलिये स्पष्ट स्थानीय काल ९ बजकर ४६।। मिनट हुआ। इस दिन काल-समीकरण + १४। मिनट है। इसलिये यह संस्कार देने पर मध्यम स्थानीय काल ९घं ४६।। मिनट + १४। मिनट = १० घण्टा १ मिनट हुआ। यदि स्थान इलाहाबाद है तो उसमें २ मिनट और जोड़ना चाहिये। इस प्रकार रेलका समय १० घंटा ३ मिनट हुआ। यदि स्थान काशी हो तो दस घंटा १ मिनटसे २ मिनट घटाना चाहिये, क्योंकि काशी २ मिनट पूर्व है। इसलिये काशीमें इस तारीख को जिस समय सूर्यका नतांश ५० होगा उस समय ९ बजकर ५९ मिनट हुआ होगा।

उदाहरण २—२३ मार्चको पटना नगरमें दोपहरके बाद सूर्यका नतांश ७४ अंश है। इस समय रेलकी घड़ीमें क्या बजा है?

सारणीमें २२ मार्च कहीं नहीं है। उसमें तो मार्चकी २१ और २६ तारीखोंके नतांश और नतकाल दिये हुए हैं। २१ मार्च को ४ बजेका नतांश ६३। और ५ बजेका ७६।। है। २६ मार्चको ४ बजेका नतांश ६२। और ५ बजेका ७५।।। है। ५ दिन में ४ बजेके नतांशमें १ अंशकी कमी पड़ती है और ५ बजेके नतांशमें पौन अंश की। इसलिये २ दिनमें चार बजेके नतांशमें लगभग आधे अंशकी कमी पड़ेगी और पांच बजेके नतांशमें लगभग चौथाई अंशकी। इसलिये २२ ता० को ४ बजेका नतांश ६२।। और ५ बजेका नतांश ७६। होंगे। इन दोनोंका अन्तर हुआ १३।। अंश। यह वृद्धि १ घंटेमें होती है। इसलिये नतांशके बढ़ने की गति लगभग ४।। मिनट प्रति अंश है। परन्तु ७४ नतांशका समय जानना है जो ७६। से २। अंश कम है। ४।। मिनट प्रति अंशकी दरसे २। अंश लगभग १० मिनटमें पूरा होगा। इसलिये स्थानीय स्पष्ट काल ५ बजनेमें १० मिनट है अर्थात ४ बजकर ५० मिनट हुआ है। यही पटनेकी धूपघड़ीका समय है।

अब देखना चाहिये कि इस दिनका काल-समीकरण क्या है। २१ मार्चका काल-समीकरण ७।। मिनट और २६ तारीखका ५।।। है इसलिये ५ दिनमें काल-समीकरणमें १।।। मिनटकी कमी हुई, और २ दिनमें पौन मिनट की। इसलिये २२ मार्चको काल समीकरण ६।।। मिनट है। यह धनात्मक है, इसलिये इसको जोड़नेपर स्थानीय मध्यमकाल ४ बजकर ५६।।। मिनट अथवा ४ बजकर ५७ मिनट हुआ।

पटनेका देशान्तर ग्रीनिचसे ८५ अंश ३० कलाके लगभग है जो भारतवर्षके प्रधान देशान्तर ८२° ३०′ से ३ अंश पूर्व है। इसलिये पटनेका देशान्तर-काल १२ मि० पूर्व हुआ। उपर्युक्त

समयसे १२ मि० घटानेपर आया ४ घंटा ४५ मिनट। यही रेल घड़ीका समय हुआ।

किसी स्थानका अक्षांश जानना—किसी सारणीसे इष्ट दिनका मध्याह्नकालिक (१२ बजेका) नतांश जान लीजिये। फिर उसी सारणीमें देखिए कि २१ मार्चका मध्याह्न कालिक नतांश कितना है। दोनोंका अन्तर जान लीजिये। यही उस दिनकी सूर्यकी क्रान्ति है। अब अपने स्थानका मध्याह्नकालिक नतांश नतांश-दर्पणसे देख लीजिये। यदि क्रान्ति उत्तर हो तो इस नतांशमें जोड़नेसे और दक्षिण हो तो घटानेसे उस स्थानका अक्षांश आ जावेगा।

उदाहरण—१७ फरवरीको रायबरेलीका मध्याह्न कालिक नतांश ३८॥ है। सारणीमें १७ फरवरीका मध्याह्न कालिक नतांश ३७॥ है, और २१ मार्चका २५॥; इन दोनों नतांशोंका अन्तर हुआ १२. इस लिये इस दिनकी सूर्यकी क्रान्ति हुई १२° दक्षिण। इस क्रान्तिको ३८॥ से घटानेपर आता है २६॥, जो राय बरेलीका अक्षांश हुआ। यह यथार्थमें २६। है। इसलिये इसमें चौथा ई अंशकी अशुद्धि है।

जयपुरके महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने ज्योतिष शास्त्रका उचित रीतिसे अध्ययन करनेके लिये पहले दिल्लीमें, फिर जयपुर, मथुरा, काशी और उज्जैनमें ईसाकी १८ वीं शताब्दीके पहले चरणमें अथवा विक्रमकी उसी शताब्दीके चौथे चरणमें वेधालय बनवाये। प्रत्येक वेधालयमें सात आठ यंत्र प्रायः एक ही ढंगके परन्तु भिन्न भिन्न आकारके अब भी दीख पड़ते हैं। उनके नाम यह हैं :—

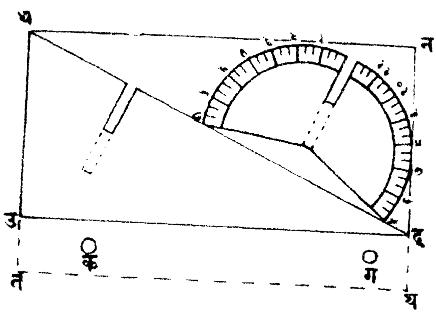
१—सम्राट यन्त्र, २—षष्टांश यन्त्र, ३—राशिवलय यंत्र, ४—जयप्रकाश यंत्र, ५—कपाल यन्त्र, ६—राम यन्त्र, ७—दिगंश यंत्र, ८—नाडीवलय यंत्र, ९—दक्षिणोत्तर भित्तियंत्र १०—उन्नतांश यंत्र, ११—चक्र यन्त्र, १२—क्रान्ति वृत्त यंत्र।

इन यंत्रोंकी विशेष चर्चा करनेकी आवश्यकता यहां नहीं है। इनसे प्रकट होता है कि प्राचीन कालमें हमारे राजे महराजे ज्योतिष सम्बन्धी खोजके लिये कैसा परिश्रम करते थे और कितना रुपया खर्च करते थे। इस अध्यायको एक साधारण धूप घड़ीके बनानेकी रीति लिखकर समाप्त किया जायगा। ऐसी धूप घड़ीके लिये पीतलकी चद्दर जिसकी मुटाई ½ इंचके लगभग, लम्बाई १५ से २० इंच तक और चौड़ाई दस या बारह इञ्च हो तो काम चल सकता है। इस चद्दरसे एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लेना चाहिये जिसकी लम्बी भुजपर जो कोण बने वह उस स्थानके अक्षांशके समान हो जहां धूप-घड़ी स्थापित करना हो। इसी प्रकारका एक समकोण त्रिभुज बची हुई चद्दरमें भी बन जायगा। मान लीजिये त थ न ध पीतलकी चद्दरका चौकोर टुकड़ा है। इससे द ध न एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लिया जिसका कोण द ध न प्रयागके अक्षांश २५°२५′ के समान है। बचा हुआ टुकड़ा त थ द ध है जिसमें द से त थ के समानान्तर द उ रेखा खींच दी जाय तो इसका उ द ध कोण भी २५°२५′, के समान होगा। अब द ध न टुकड़ेको लेकर यह देखना चाहिये कि इसमेंसे बड़ेसे बड़ा वृत्त खंड किस प्रकार काटा जा सकता है। ऐसे वृत्त खंडका केन्द्र निश्चय करके इसीके पास दो समानान्तर रेखाएं जिनके बीचकी दूरी चद्दरकी मुटाईके समान हो और जो द ध भुज पर लम्ब बनाती हों खींच लेनी चाहिये।

फिर प्रत्येक रेखाकी नोकको केन्द्र मान कर दो समान धनु खींच लेने चाहिये। इन धनुओंके केन्द्र परका कोण ९० अंशसे कम न हो और १०५ अंशसे अधिक न हो क्योंकि प्रयागमें दिनमान १४ घंटेसे अधिक नहीं होता। इस वृत्त खंडके किनारोंको पहले पन्द्रह पन्द्रह अंशोंके अंतर पर विभाजित करना चाहिये फिर इन भागोंको तीन तीन या चार चार समान भागोंमें बांटना चाहिये (चित्रमें तीन ही तीन भाग दिखलाये गये हैं)। पन्द्रह पन्द्रह अंशवाले भाग घंटा बतलावेंगे और यदि प्रत्येक घंटेमें तीन तीन भाग हों तो हर एकसे २० मिनट और चार चार भाग हो तो हर एकसे पन्द्रह मिनटका ज्ञान हो सकता है। चित्रमें इससे छोटे छोटे भाग नहीं दिखलाये जा सके परन्तु यथार्थमें प्रत्येक चौथे भागके भी तीन तीन समान भाग किये सा सकते हैं जिनसे पांच मिनटका अन्तर जाना जा सकता है। बलिया और राय बरेलीके गवनमेंट हाई स्कूलोंमें ऐसी ही धूप-घड़ी स्थापित की गयी हैं। बलियाकी धूप घड़ी को तो ९ वीं कक्षाके एक विद्यार्थी ने ही इस लेखकका देख रेखमें तैयार की थी परन्तु राय बरेलीकी धूप घड़ी एक मिस्त्रीसे बनवायी गयी थी।

चित्र १३९ को ध्यानसे देखते पर यह बातें समझमें आ जायंगी। वृत्त खंडके दो समानान्तर त्रिज्याओंके बीचके आधे भागको जो परिधिकी ओर है काट कर निकाल देना चाहिये और द ध भुज पर लम्ब बनाती हुई दो समानान्तर रेखाएं इस प्रकार खींचनी चाहिये कि दोनोंके बीचका अंतर चद्दरकी मुटाई के समान हो। इन्हीं रेखाओंके बीचके उतने हिस्सेको निकाल देना चाहिये जिसकी लम्बाई वृत्त खंडके उस भागके बराबर हो जो कटी हुई रेखाओंसे प्रकट किया गया है। अब इस वृत्त खंड-

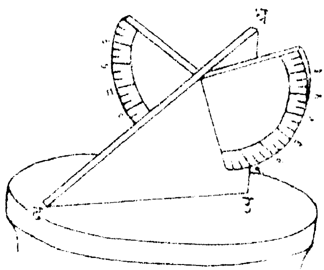
को द ध भुज पर इस प्रकार जोड़ देना चाहिये कि वृत्त खंडका केन्द्र द ध भुज पर आ जाय और इसका खुला हुआ भाग त्रिभुजके उस भाग पर बैठ जाय जो कटी हुई रेखाओंसे प्रकट किया गया है। ऐसा करने पर इन दोनोंका आकार चित्र १४० के उस भागके समान हो जायगा जो खंभे पर दिखलाया गया है।



चित्र १३९

इस धूप घड़ीको ऐसे स्थान पर स्थापित करना जाहिये जहां धूप दिन भर रहती हो, घर या पेड़की छाया कम पड़े तो अच्छा है। चार साढ़े चार फुट ऊँचा पक्का खम्भा बनवाकर उसपर यह इस प्रकार स्थिर करना चाहिये कि इसका त थ द उ भाग खंभे को गच के नीचे हो, द उ ठीक दक्षिण-उत्तर रेखा पर हो, द उ ध त्रिभुजका तल ठीक सीधा खड़ा हो पूरब या पच्छिम किसी तरफ झुका न हो। ऐसी दशामें द ध किनारा ठीक आकाशीय ध्रुवकी दिशामें रहेगा। यह खंभेमें अच्छी तरह जकड़ा रहना चाहिये, इस लिये यह अच्छा होगा कि क, ग, स्थानोंपर छेद करके इनमें

दो लोहेकी छड़ें एक एक हाथ लम्बी जड़ दी जांय जिनके दूसरे किनारे दो दो इञ्च पर झुके रहें। इनके द्वारा यह धूप घड़ी खंभेमें डेढ़ फुटकी गहराई तक जकड़ी रहेगी। (देखो चित्र १४०)



चित्र १४०

इस घड़ीका समय भी स्थानीय कालके समान होता है। रेलवे टाइम जाननेके लिये काल समीकरण और देशान्तर संस्कार उसी प्रकार करना चाहिये जैसा पहले बतलाया गया है।

इस प्रकार ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १२ वें अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

मानाध्याय नामक १४ वां अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-२—मानोंकी संख्या और व्यवहार। श्लोक ३-११ सौर मानसे अहोरात्र, षडशीतिमुख, अयन, विषुव संक्रान्तियाँ, संक्रान्तियोंके पुण्यकाल और ऋतुकी गणना। श्लोक १२-१४ चान्द्रमानसे तिथि, करण, विवाहादि संस्कार, व्रतोपवासादि तथा पितरोंके दिन रातका निश्चय। श्लोक १५-१६—नाक्षत्र दिन तथा नक्षत्रोंसे चान्द्रमासोंके नाम। श्लोक १७—बृहस्पतिके वर्षोंके नाम। श्लोक १८-१९ सावन दिनसे यज्ञकाल तथा सूतक आदिका निश्चय। श्लोक २०-२१—दिव्य, प्राजापत्य तथा ब्रह्ममान। श्लोक २२-२७—उपसंहार। अंतमें बीजोपनयनाध्यायके २१ श्लोक हैं जो क्षेपक कहे जाते हैं।

नव मानोंके नाम

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥१॥

अनुवाद—ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र नव कालमान हैं।

विज्ञान भाष्य—इन शब्दोंकी व्याख्या आगे आनेवाले श्लोकोंमें ही दे दी गयी है इस लिये इस समय अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

व्यवहारमें आनेवाले मान

चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्षसावनैः ।
बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दं ज्ञेयं नान्यैस्तु नित्यशः ॥२॥

अनुवाद—इस लोकमें सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों-का व्यवहार होता है । साठ संवत्सरोंकी गणना वृहस्पति मानसे होती है, शेष चार मानोंका काम नित्य नहीं पड़ता ।

विज्ञान भाष्य—इन पांच मानोंकी चर्चा मध्यमाधिकारमें भी आ चुकी है ।

सौरमान

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीति मुखानिच ।
अयनं विषुवच्चैव संक्रान्तेः पुण्यकालता ॥३॥

अनुवाद–दिन रात्रिका परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति, तथा अन्य संक्रान्तियोंका पुण्यकाल सौरमानसे निश्चय किया जाता है ।

षडशीतिमुख

तुलादि षडशीत्यह्नां षडशीतिमुखं क्रमात् ।
तच्चतुष्टयमेव स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु ॥४॥
षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशे तिमिनस्यच ।
मिथुनाष्टादशे भागे कन्यायास्तु चतुर्दश ॥५॥

अनुवाद—(४) तुला संक्रान्तिसे छियासी दिनोंका षडशीति मुख क्रमसे होता है । यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियोंमें होते

हैं । (५) धनु राशिके २६ वें अंश, मीन राशिके २२ वें अंश, मिथुन राशिके १८ वें अंश और कन्या राशिके १४ वें अंश तक ।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें दिनका अर्थ सावन दिन नहीं हैं, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है। ऐसे ३६० दिनोंका एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार ३६५ दिन ६ घंटे से कुछ अधिक हुआ। परन्तु सूर्यकी गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखोंके मान भी सावन दिनोंमें समान नहीं हैं। तुला राशिसे आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों-के तीस तीस अंश और धनुके २६ अंश मिलकर ८६ अंश हुए इस लिये प्रथम षडशीतिमुख धनुके २६ अंश पर समाप्त होता है। दूसरा षडशीतिमुख धनुके २७ वें अंशसे आरम्भ होकर मीनके २२ वें अंश पर समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मिथुनके १८ वें अंश पर और चौथा कन्याके १४ वें अंश पर समाप्त होता है। जिन चारों राशियोंमें षडशीति मुखोंका अंत होता है वे द्विस्वभावकी बतलायी गयी है। जिसकी चर्चा फलित ज्योतिषमें आयी है।

किसी किसी ग्रन्थमें तिमिनस्यके स्थानमें 'निमि[illegible]' पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है क्योंकि निमिषका अर्थ [illegible] [illegible]शे नहीं है।

पितृपक्ष

ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम् ॥६॥

अनुवाद—इसके उपरान्त कन्या राशिके शेष १६ दिन यज्ञ-कालके समान हैं। इसमें पितरोंका श्राद्धादि कर्म करनेसे अक्षय फल मिलता है।

विज्ञान भाष्य—इससे प्रकट होता है कि पितरोंका श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशिमें १५ से ३० अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणनासे आश्विन कृष्ण पक्षमें और अमान्त गणनासे भाद्र कृष्ण पक्षमें अर्थात् चान्द्रमानके अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

संक्रान्तियोंके नाम—

भचक्रनाभौ विषुवद् द्वितयं समसूत्रगं।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः ॥७॥
तदन्तरेषु संक्रान्ति द्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात् तु संक्रान्तेर्ज्ञेयं विष्णुपदी द्वयम् ॥८॥

अनुवाद—(७) भगोलके मध्यमें एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियां और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियां कुल चार संक्रान्तियां होती हैं जो प्रसिद्ध हैं। (८) इनके बीचमें दो दो संक्रान्तियां और होती हैं जिनमेंसे वह संक्रान्तियां जो इन चारोंके बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

विज्ञान भाष्य—चौथे श्लोकसे आरम्भ करके आठवें श्लोक तक १२ संक्रान्तियोंके नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशिमें प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियां बारह हैं जिनमेंसे चार राशियोंको षडशीतिमुख कहते हैं। शेषमें दोको विषुवत् दोको अयन और चारको विष्णुपदी कहते हैं।

	राशि	संक्रान्तिके नाम	ऋतुओंके नाम
१	मेष	विषुवत्	वसंत

२	वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
३	मिथुन	षडशीतिमुख	,,
४	कर्क	अयन	वर्षा
५	सिंह	विष्णुपदी	,,
६	कन्या	षडशीतिमुख	शरद
७	तुला	विषुवत्	,,
८	वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
९	धनु	षडशीतिमुख	,,
१०	मकर	अयन	शिशिर
११	कुम्भ	विष्णुपदी	,,
१२	मीन	षडशीतिमुख	बसंत

उत्तरायण दक्षिणायन और ऋतु—

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम् ।
कर्कादेस्तु तथैवस्यात् षण्मासा दक्षिणायनम् ॥९॥
द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशरादयः ।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः ॥१०॥

अनुवाद—(९) सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशिमें प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक दक्षिणायन होता है। (१०) ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष सक्रान्तिसे १२ सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष होता है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियां स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार अश्विनी के आदिविन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश १८० है। परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इस लिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में आरम्भ होती थी और ६ महीने तक रावर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरंभ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएं एक साथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से २३ दिन पहले ही आरंभ हो जाती है। पांच सौ वर्ष में यह अंतर एक महीने के लगभग हो जायगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चाकी गयी है। सूर्य-सिद्धान्तका यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनीके २७ अंश इधर उधर हो रहता है, इससे अधिक अंतर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकलके विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदिने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है (त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३५३)।

कुछ विद्वानोंका यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थोंके ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायणका आरंभ पहले उस समयसे नहीं माना जाता था जब सूर्यकी प्रवृत्ति

उत्तरकी ओर होती है वरन् उस समयसे माना जाता था जब सूर्य विषुवत रेखासे उत्तर होकर उत्तर गोलमें आजाता है। इससे देवताओंके दिन और रातका भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि देवता उत्तर ध्रुवके निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुवपर दिनका आरंभ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विषुवत रेखासे उत्तर होने लगता है। इसी लिए उत्तरायण देवताओंका दिन और दक्षिणायण उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्धमें यह *कल्पना न करनी पड़ती।

संक्रांतिका पुण्यकाल

अर्कमान कलाः षष्ट्या गुणिता भुक्ति भाजिताः।
तदर्धनाड्यः सङ्क्रान्तेरर्वाक् पुण्यं तथा परे ॥११॥

अनुवाद—सूर्यके बिम्बमानकी कलाओंको साठसे गुणा करके उसकी दैनिक गतिसे भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियां पहले और पीछे संक्रान्तिका पुण्यकाल होता है।

विज्ञान भाष्य—संक्राति उस समय होती है जिस समय सूर्य-बिम्बका केन्द्र राशिमें प्रवेश करता है परन्तु सूर्य बिम्बका मान ३२ कलाके लगभग है इस लिये संक्रान्तिका पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य बिम्बका पूर्वी किनारा राशिको प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब

*दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् संहितिकैः प्रकीर्तितम्,
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत् ॥ ११ ॥
(गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

तक बिम्बका पच्छिमी किनारा राशिके आदि विन्दुको पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाबसे ३२ घड़ीके लगभग होता है जिसका आधा १६ घड़ी है। इस लिये संक्रातिसे लगभग १६ घड़ी पहले पुण्यकालका आरंभ होता है और १६ घड़ी बाद तक रहता है। सूक्ष्म गणनाके लिये श्लोकमें बतलाये हुये अनुपातसे काम लेना चाहिये। संक्रान्तिकालमें सूर्यकी जो दैनिक गति हो उतनी गति ६० घड़ीमें होती है तो सूर्य बिम्बके समान गति कितनी घडियों में होगी। अर्थात

$$\text{पुण्यकाल} = \frac{\text{सूर्य बिम्बका मान} \times ६० \text{ घड़ी}}{\text{सूर्यकी दैनिक गति}}$$

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकालसे घटानेपर पुण्यकालका आरम्भ जाना जाता है और जोड़नेपर उसकी समाप्तिका समय निकल आता है।

चान्द्र और पितृमान—

अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः॥१२
तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा।
व्रतोपवास यात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते॥१३
त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम्।
निशाच मास पक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः॥१४॥

अनुवाद— (२) चद्रमा सूर्यसे अलग होकर जो दिन प्रति दिन पूरबकी ओर बढ़ता है वही चान्द्रमान है। इस अंतरके १२

अंशोंकी एक तिथि होती है। (१३) तिथि, करण विवाह, क्षौर कर्म, मुंडन आदि सब क्रियाएं तथा व्रत, उपवास, यात्रा आदि चान्द्रमानसे निश्चय किये जाते हैं। (१४) तीस तिथियोंका एक चान्द्रमास होता है जो पितरोंका एक अहोरात्र समझा जाता है। चन्द्रमासके अंतमें अर्थात् अमावस्याके अन्तमें पितरोंका मध्याह्न और पक्षके अन्त अर्थात् पूर्णिमाके अन्तमें पितरोंकी मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार शुक्ल पक्षकी अष्टमीके आधे भागसे पितरोंको रात्रिका आरम्भ और कृष्ण पक्षकी अष्टमीके आधे भागसे उनके दिनका आरम्भ होता है।

विज्ञान भाष्य—तिथिके सम्बन्धमें मध्यमाधिकार पृष्ठ १२ और स्पष्टाधिकार पृष्ठ ३१८ में विशेष चर्चाकी गयी है। वहीं पृष्ठ ३१९ में करणके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ लिखा गया है। पितरोंके मध्याह्न और मध्यरात्रिके बारेमें भूगोलाध्याय पृष्ठ ११०७-८ देखिये।

नाक्षत्रमान तथा नक्षत्रानुसार मासोंके नाम—

भचक्र भ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्त योगतः ॥१५॥
कीर्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।
अन्त्यो पान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्।१६

अनुवाद—(१५) जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम

पड़े हैं। (१६) कार्तिक आदि मासों का संयोग कृत्तिकादि नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवे मासोंका संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

विभान ज्ञाष्य—नाक्षत्र दिन की व्याख्या पृष्ठ ११, ४४४-४५, और ४९३ में की गयी है। चान्द्र मासोंके नाम उन नक्षत्रोंके नामपर रखे गये हैं जिनपर चंद्रमा पूर्णिमाके दिन रहता है। इस युक्तिसे तिथि मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसारके ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उनपर दूसरे देशोंके ज्योतिष शास्त्रके नकल करनेका जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासोंका यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहां यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्षसे अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचंभे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालोंकी ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। नीचे दी हुई सारिणी से यह सहजही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है :—

मास	पूर्णिमाके नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्तकालमें नक्षत्रोंकी वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत्र	१४—चित्रा १५—स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६—विशाखा	विशाखा अनुराधा	बिशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१७—अनुराधा १८—ज्येष्ठा १९—मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा
आषाढ़	२०—पूर्वाषाढा २१—उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा
श्रावण	२२—श्रवण २३—धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४—शतभिषा २५—पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	पू०भाद्रपद	शतभिषा उ० भाद्रपद	उ०भाद्रपद	पूर्वाभाद्रपद

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्त कालमें नक्षत्रोंकी वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
	२६—उत्तराभाद्रपद					
आश्विन	२७—रेवती	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
	१—अश्विनी					
	२—भरणी					
कार्तिक	३—कृत्तिका	कृत्तिका	भरणी +	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी +
	४—रोहिणी					
मार्गशीर्ष	५—मृगशिरा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी +
	६—आर्द्रा					
पौष	७—पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
	८—पुष्य					
माघ	९—आश्लेषा	मघा	आश्लेषा	पू० फाल्गुनी +	मघा	आश्लेषा
	१०—मघा					
फाल्गुन	११—पूर्वाफाल्गुनी	उत्तरा फाल्गुनी	पू० फाल्गुनी	हस्त	उ० फल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी
	१२—उत्तराफाल्गुनी					
	१३—हस्त					

इस सारणी में १९९४—९५ वि० के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पञ्जिका से लिये गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान ३६५ दिन ६ घंटा ९ मिनट ९-५०४ सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक १८० अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगोंसे लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहां दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

वार्हस्पत्य वर्ष के नाम—

वैशाखादिषु कृष्णेच योगः पंचदशे तिथौ ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा ॥१७॥

अनुवाद—(जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त कालके नक्षत्रों-के नामसे चान्द्रमासोंके नाम पड़े हैं उसी प्रकार) वैशाखादि मासोंके कृष्णपक्षकी १५ वीं तिथिके योगमें वृहस्पतिके अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

विज्ञान भाष्य—जिस समय वृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्यके प्रकाशके कारण यह देखा नहीं जा सकता इस लिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्यसे इतनी दूर हो जाता है कि देख पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। (देखो उदयास्ताधिकार पृ० ९४०-४१)। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और वृहस्पति की युति होती है जो लगभग ३९९ दिन या १३ मास के अंतर पर हुआ

करती है। इस काल को 'बार्हस्पत्य वर्ष' कहते है। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर बृहस्पति उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। १६ वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासोंके नाम उन नक्षत्रोंके नामपर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है इस लिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासोंके पूर्णिमान्त नक्षत्रोंसे १४ वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मासमें पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मासमें सूर्य विशाखा या अनुराधा के १४ वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय वृहस्पतिका उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इनके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इस लिये वृहस्पतिका 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि वृहस्पतिका उदय या अस्त हो तो बृहस्पतिका 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'वार्हस्पत्य मार्ग शीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और वार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनोंमें यह अंतर भी कर दिया जाता है कि वार्हस्पत्य वर्षोंके नामके पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षोंका प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्तका यह नियम बहुत ढीला है। वृहस्पतिके अस्तकालसे उदयकालका अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकालके समय सूर्य स्वाती नक्षत्रमें हो और उदय कालके समय अनुराधामें।,

ऐसी दशामें कौनसा बार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख'। शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में बृहस्पति जिस नक्षत्रपर हो उसीके नामसे बृहस्पतिके वर्षका नाम रखना चाहिये* । वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा की है।

बृहस्पतिका वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं (मध्यमाधिकार श्लोक ५५ और उसका भाष्य)। पंचांगोंमें इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्पके मंत्रों में तो यह प्रति दिन काममें आते हैं। ऐसे ६० संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा ५ संवत्सरोंका एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह हैं—(१) संवत्सर, (२) परिवत्सर (३) इदावत्सर, (४) अनुवत्सर, (५) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदाङ्ग ज्योतिष तथा बृहत्संहिता में है जहां इनके फल भी बतलाये गये हैं।

सावनमान—

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्त्तितम्।
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तुतैः ॥१८॥
सूतकादि परिच्छेदो दिन मासाब्द पास्तथा।
मध्यमाग्रह भुक्तिस्तु सावनेनैवगृह्यते ॥१९॥

---

*नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मास क्रमेणैव ॥१॥
वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभंतु पञ्चममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षम ॥२॥ (गुरुचाराध्याय)

अनुवाद—(१८) सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयके बीच के समयको सावन दिन कहते हैं। सावन दिनोंसे यज्ञ करने के समयका विधान किया जाता है। (१९) जन्म का सूतक और चान्द्रायण आदि व्रत की सीमा, दिन, मास और वर्षके स्वामियों का निश्चय, ग्रहोंकी मध्यम गतिकी गणना सावन दिनोंसे ही की जाती है।

विज्ञान भाष्य—इस विषयपर मध्यमाधिकार में अच्छी तरह विचार किया गया है। सावन दिनोंमें जिन जिन कार्यों के करने की अवधि निश्चित की जाती है वे यहां गिनाये गये हैं। जिस घरमें सन्तान उत्पन्न होती है, अथवा जिस घरमें किसी की मृत्यु होती है वह घर दस, बारह या पन्द्रह दिनोंके लिये अपवित्र समझा जाता है। यही सूतक है जिसकी अवधि सावन दिनोंके अनुसार निश्चय की जाती है।

दिव्यमान्—

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत् प्रोक्तं तद्भवेद्दिव्यं भानोर्भगण पूरणात् ॥२०॥

अनुवाद—देवताओं और असुरों का जो परस्पर विरोधी अहोरात्र बतलाया गया है वही दिव्यमान है और यह सूर्य के एक भगण पूरा होने का समय है।

विज्ञान भाष्य—इसकी चर्चा विस्तारके साथ भूगोलाध्याय श्लोक ४७-५० के भाष्यमें की गयी है।

प्राजापत्य तथा ब्राह्ममान—

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्राद्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्त्तितम् ।२१।

अनुवाद—मन्वन्तरकी व्यवस्था प्राजापत्य मानका उदाहरण है जहां दिन और रातका कोई भेद नहीं है। कल्प ब्राह्ममान कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—कल्प, मन्वन्तर आदिकी व्याख्या मध्यमाधिकारके श्लोक १८-२० और उसके विज्ञान-भाष्यमें की गयी है।

माहात्म्य—

एतत् ते परमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतं।
ब्रह्मैतत् परमं पुण्यं सर्वपाप प्रणाशनम् ॥२२॥
दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणां च दर्शित ज्ञानमुत्तमम्।
वज्ञायार्कादि लोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ।२३

अनुवाद—(२२) तुझसे यह दूसरा खंड बतलाया गया जो रहस्यमय और बड़ा ही अद्भुत है, यह ब्रह्म रूप है, उत्कृष्ट, है पवित्र है और सब पापों का नाश करने वाला है। (२३) आकाशीय, नात्त्त्र और ग्रहोंका उत्तम ज्ञान दिखलाया गया जिसको अच्छी तरह जान कर मनुष्य सूर्यादि लोकोंमें शाश्वत स्थान प्राप्त कर लेता है।

विज्ञान भाष्य—सूर्यसिद्धान्तका पूर्वार्ध पाताधिकारके साथ समाप्त हो गया था जिसका उपसंहार उसके अन्तिम श्लोकमें कर दिया गया था। उसके उपरान्त भूगोलाध्यायके आरंभमें मयासुरके प्रश्न करने पर उत्तरार्धका आरंभ किया गया था जो यहां आकर समाप्त होता है, इस लिये यहां इस खंडका भी उपसंहार कर दिया गया।

उपसंहार—

इत्युक्त्वा मयमामंत्र्य सम्यक् तेनाभिपूजितः।
दिवमाचक्रमेऽर्कांशः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥२४॥
मयोऽथ दिव्यं तज् ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद् विवस्वतः।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ॥२५॥
ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम्।
परिवब्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ॥२६॥
स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत्।
अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्म सम्मितम् ॥२७॥

इति सूर्य-सिद्धान्ते मानाध्यायः

अनुवाद—(२४) यह कहकर सूर्यांश पुरुष मयसे विदा होकर और उससे अच्छी तरह पूजित होकर स्वर्ग को जाकर अपने मण्डल में घुस गये। (२५) तब मयासुर ने साक्षात् सूर्य भगवान् से इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके अपनेको पाप रहित और कृतकृत्य माना। (२६) तब ऋषियोंने यह जान कर कि मयको सूर्य भगवान से यह बरदान मिला उसके पास आये और घेर कर आदर के साथ पूछा। (२७) इसपर उसने प्रेमके साथ ग्रहोंके इस महान् चरित्रको जो इस लोकमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला, रहस्यमय और ब्रह्मज्ञानके समान है उनको बतलाया।

विज्ञान भाष्य—इससे स्पष्ट होता है कि यह सूर्य-सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थ ऋषियोंको मयासुरसे मिला जिसने तपस्या करके यह ज्ञान सूर्य भगवान् अथवा सूर्यांश पुरुष से

प्राप्त किया था। इससे कुछ विद्वान् यह परिणाम निकालते हैं कि यह ग्रन्थ यवन ज्योतिषियों से प्राप्त किया गया था। इस सम्बन्ध में यहां कुछ विचार न करके भूमिकामें विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

किसी किसी ग्रन्थ में बीजोपनयनाध्याय नामक २१ श्लोकों का एक छोटा अध्याय और लिखा मिलता है जिस पर टीका-कारोंने यह समझ कर टीका नहीं की है कि ग्रन्थ-निर्माण-काल में बीज-संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ सकती इस लिये यह अध्याय पीछे से जोड़ा गया है। मेरी लघु सम्मति में यह सम्भव है कि अब तक जो कुछ लिखा गया है वह इसी रूप में सूर्यांश पुरुष से मयासुर को मिला हो परन्तु उसके बाद मयासुर ने कई वर्ष तक जीवित रह कर अपने अनुभव से कुछ अंतर पाया होगा जिसके अनुसार उसने बीजोपनयनाध्याय अंत में जोड़ दिया। अथवा मयासुर के बाद किसी अन्य ज्योतिषीने ही इसे बढ़ाया होगा। भूमिका में इस पर भी प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा। इस समय मैं भी यह अध्याय जोड़ देने की धृष्टता करता हूँ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥१॥
न देयं तत् कृतघ्नाय वेदविप्लवकाय च।
अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहङ्काराय पापिने ॥२॥
एवं विधाय पुत्रायाप्यदेयं सहजाय च।
दत्तेन वेद मार्गस्य समुच्छेदः कृतो भवेत् ॥३॥
अजेतामन्धतामिस्रं गुरु शिष्यौ सुदारुणाम्।
ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥४॥

चक्रानुपातजो मध्यो मध्यवृत्तांशजः स्फुटः ।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ॥५॥
राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया ।
शेषं नक्षत्रकक्षायास्त्यजेच्छेषकयोस्तयोः ॥६॥
यदल्पं तद्भजेद्भानां कक्षया तिथिनिघ्नया ।
बीजं भागादिकं तत् स्यात् कारयेत् तद्धनं रवौ ॥७॥
त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत् ।
द्व्यमघ्नमृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम् ॥८॥
ऋणं व्योमनवघ्नं स्याद्दानवेज्यचलोच्चके ।
धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते ॥९॥
युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः ।
ओजान्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः ॥१०॥
वच्मि निर्बीजकानोजपदान्ते वृत्त भागकान् ।
सूर्येन्द्वोर्मनवो दन्ता धृतितत्त्वकलोनिताः ॥११॥
बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्याचल बाहवः ।
वाक्पतेरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवो भृगोः । ॥१२॥
शून्यत्तंवोऽर्कपुत्रस्य बीजमेतेषु कारयेत् ।
बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥१३॥
इनाप्तं योजयेदिन्दोः कुजस्याश्वहृतं क्षिपेत् ।
विदश्चन्द्रहृतं योज्यं सूरेरिन्द्रहृतं धनम् ॥१४॥
धनं भृगोर्भुवा निघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छने :
एवं मान्दाः परिध्यंशाः स्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥१५॥
भौमस्याभ्रगुणाक्षीणि बुधस्याब्धि गुणेन्दवः ।
बाणाक्षा देव पूज्यस्य भार्गवस्येन्दु षड्यमाः ॥१६॥
शनिश्चन्द्राब्धयः शीघ्रा ओजान्ते बीजवर्जिताः ।

द्विघ्नं स्वं कुज भागेषु बीजं द्विघ्नमृणं विदः ॥१७॥
अत्यष्टिघ्नं धनं सूरेरिन्दुघ्नं शोधयेत्कवेः ।
चन्द्रघ्नमृणमार्कस्य स्युरेभिर्दृक्समा ग्रहाः ॥१८॥
एतद्बीजं मया ख्यातं प्रीत्या परमया तव ।
गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥ १९ ॥
परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे ।
देयं विप्राय नान्यस्मै प्रतिकञ्चुककारिणे ॥ २० ॥
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्यं परमं स्फुटम् ।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ॥ २१ ॥

विज्ञान भाष्य—यह २१ श्लोक मानाध्याय के २३ वें श्लोक के उपरान्त और अन्तिम ४ श्लोकों के पहले मिलते हैं और कम से कम ४०० वर्ष पुराने हैं क्योंकि रंगनाथ जी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में जो शक १५२५ को लिखी है इसका उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त में भी बीज संस्कार करने की आवश्यकता पड़ी थी और हमारे पुराने आचार्य भी ज्योतिष शास्त्र को दोषरहित और सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के पक्ष में थे, आजकलके कुछ पंडितों की तरह लकीरके फकीर नहीं थे।

इन श्लोकों की टीका इधर के किसी टीकाकारने नहीं की है इस लिये मैं भी इसका अनुवाद करना व्यर्थ समझता हूँ क्योंकि इन पुराने बीजों से भी अब काम नहीं चल सकता। अब तो सारी गणना नवीन वेधों से स्थिर करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्त के मानाध्याय नामक १४ वें और अन्तिम अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

सूर्य-सिद्धान्तमें प्रयुक्त

संख्या सूचक शब्द

०—अम्बर, ख, वियत, व्योम, शून्य

१—इन्दु, कु, निशाकर, रूप

२—अश्वि, अश्वि, अश्विन, दस्र, दस्रक, द्वि, नेत्र, यम, यमल, लोचन

३—अग्नि, गुण, ज्वलनः, त्रि, त्रिक, पावक, वह्नि, शिखि, हुताश

४—अब्धि, अर्णव, कृत, चतुः, चतुष्क, युग, वेद, समुद्र, सागर

५—अर्थ, इषु, पंच, बाण, मार्गण, विषय, शर

६—अङ्ग, ऋतु, रस, षट्, षड्

७—अग, अद्रि, नग, पर्वत, भूधर, भूमिधर, मुनि

८—अष्ट, कुञ्जर, गज, नाग, भुजङ्ग, वसु, सर्प

९—अङ्क, गो, छिद्र, नव, रन्ध्र

१०—दिक्, दिङ्

११—ईश, ईश्वर, रुद्र, शंकर

१२—अर्क, मास, सूर्य

१३—विश्व

१४—मनु

१५—तिथि

१८—धृति

१९—अतिधृति

२०—कृति, नख

२५—तत्त्व

३२—रद

३३—सुर

ज्योतिषका

*अँग्रेजी-हिन्दी-अरबी कोष

Aberration भूचलन संस्कार, coefficient of— भूचलन संस्कारका स्थिरांक।
Abscissa भुज
Adjacent part आसन्न खंड
Aldebaran रोहिणी (योग-तारा), दबरान دبران
Algenib उत्तरा-भाद्रपदाका दक्खिनी तारा
Almanac पंचांग, पंजिका; nautical—नाविक पंचांग
Alpherat उत्तरा भाद्रपदाका उत्तरी तारा
Altair श्रवणका योगतारा
Altitude उन्नतांश
Andromeda अन्तरमदा
Angle of the vertical ऊर्ध्व रेखाकोण
Anomaly मन्द केन्द्र; Eccentric—उत्केन्द्र
Antares ज्येष्ठा, क़लब قلب
Anti-clockwise अनुलोम, अपसव्य
Apogee उच्च
Approximation असकृत्कर्म
Apsis मन्दोच्च; line of apsides नीचोच्च रेखा
Aquarius कुंभ, दल्व دلو
Aquilae श्रवण नक्षत्र
Arc धनु, धनुष
Archer धनुराशि, क़ौस قوس
Arcturus स्वाती तारा
Argo navis नौका पुंज
Aries मेष, हमल حمل
Ascendant उदय लग्न

---

* अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द पुस्तकके जिन पृष्ठोंमें लिखे गये हैं उनकी संख्या हिन्दीके समानार्थक शब्दोंकी अनुक्रमणिकामें मिलेगी।

Ascending node उत्तरपात, राहु
Ascensional difference चरकाल
Astrology फलित ज्योतिष
Astronomy ज्योतिष सिद्धांत, गणित ज्योतिष
Aurigae α ब्रह्महृदय
Aurigae β. प्रजापति
Auxiliary circle सहायक वृत
Axis अक्ष; major—दीर्घ —, minor—लघु—
Azimuth दिगंश
Balance तुला, मीज़ान ميزان
Binomial theorem द्वियुक्पद सिद्धान्त
Bootis भूतेश
Bull वृष, सौर ثور
Cancer कर्क, सरतान سرطان
Canopus अगस्त्य
Capella ब्रह्महृदय
Capricorn मकर, जदी جدی
Cassiopea काश्यप मण्डल
Castor पुनर्वसुका प्रथम तारा, कैस्टर
Celestial equator विषुवन्मण्डल;-pole आकाशीय ध्रुव
Centre केन्द्र;—of gravity गुरुत्व केन्द्र
Cepheus सिफियस
Cetus तिमि
Chord ज्या, जीवा
Circle वृत्त; aggregate—समास वृत्त; great—बृहद्वृत्त, परमवृत्त;-of deflection वलनाश्रित वृत्त;-of position समप्रोतवृत्त; vertical—ऊर्ध्ववृत्त
Circular measure कोणीय मान, चापीय मान—parts चापखंड, गोलीय खंड
Circumference परिधि
Clock घड़ी, sidereal—नाक्षत्र घड़ी; solar—सावन घड़ी
Clockwise सव्य, विलोम, प्रतिलोम
Coefficient गुणक, स्थिरांक
Colatitude लम्बांश

Complementary पूरक
Cone सूची
Conjunction युति; inferior—अन्तर्युति, भीतरी युति; superior—बहिर्युति, बाहरी युति
Constants ध्रुवाङ्क, स्थिराङ्क, मूलाङ्क
Constellation नक्षत्र, राशि
Continuous अनवच्छिन्न
Coordinates भुजयुग्म
Correction बीज संस्कार
Corresponding sides समपक्ष
Corvi हस्त, अव्वा عوا
Cosecant कोटिच्छेदन रेखा
Crab कर्क, सरतान سرطان
Crane सारस
Culminating point मध्य लग्न, दशम लग्न, याम्योत्तर लग्न
Curve वक्र
Cusp शृङ्ग
Day दिन;—of gods or polar day दिव्य दिन, देवताओंका दिन, equinoctial—विषुव दिन, sidereal—नाक्षत्र दिन, Solar—सौर दिन, सावन दिन, भूमि सावन दिन;—measure अन्त्या
Declination अपक्रम, क्रान्ति
Degree अंश, भाग
Delphini धनिष्ठा, सऊद سعود
Denebola उत्तरा फाल्गुनी
Denominator हर
Deviation विचलन
Diagram परिलेख
Diameter व्यास, कर्ण
Differential calculus चलन-कलन;—equation चलन समीकरण
Directrix नियामक रेखा
Diurnal circle अहोरात्र वृत्त
Draco अजगर
Dynamics गति विज्ञान
Earth पृथ्वी, भू,
Eccentric anomaly उत्केन्द्र
Eccentricity च्युति, फल

केन्द्र च्युति

Eclipse ग्रहण, annular—कंकण—; lunar—चन्द्र—; partial—खंड—, solar—सूर्य—; total—सर्वग्रास, पूर्ण; beginning of—स्पर्शकाल, end of—मोक्षकाल, Beginning of total—सम्मीलनकाल; end of total—उन्मीलन काल

Ecliptic क्रान्तिवृत, अपमण्डल; culminating point of—दशम लग्न, Rising point of—उदय लग्न; setting point of—अस्तलग्न

Ellipse दीर्घवृत्त

Elongation सूर्यसे ग्रहका अंतर, इनान्तर; ग्रहसे उसके उपग्रहका अन्तर

Emergent ray निर्गत किरण

Equation of time कालसमीकरण, उदयान्तर; polar equation ध्रुवीय समीकरण

Equator निरक्ष देश, विषुवत् रेखा या विषुव रेखा; celestial—विषुववृत्त, विषुवद्वृत्त, विषुवन्मंडल

Equatorial विषुवद्वृत्तीय, नाडीवलय यंत्र

Equinoctial day विषुव दिन;—point विषुवसम्पात; —colure विषुवसम्पातवृत्त

Equinox विषुव सम्पात दिन; autumnal—शरद सम्पात दिन, सायन तुला संक्रान्ति; vernal—वसंत सम्पात दिन या वसंत विषुव दिन, सायनमेष-संक्रान्ति;

Evection च्युति संस्कार

Even युग्म, सम

Experimental error प्रयोगात्मक भूल

Fishes मीन, हूत حوت

Focus नाभि

Fomalhaut कुम्भज

Fortnight पक्ष, bright—शुक्लपक्ष, सुदी; dark—कृष्ण पक्ष, बदी;

Full moon पूर्णिमा, पूर्णमासी

Gemini मिथुन, जौज़ा, جوزا

Geminorum β पुनर्वसु, ज़िराअ ذراع

Geocentric भूकेन्द्रीय, भूकेन्द्रगत;—zenith भूकेन्द्रीय खमध्य

Geographical भौगोलीय; —zenith भौगोलिक खमध्य

Gravitation आकर्षण, गुरुत्वाकर्षण

Gyroscope घुमना चक्र

Heliacal rising of a planet ग्रहोदय, setting of—ग्रहास्त

Heliocentric रविकेन्द्रीय, रविकेन्द्रगत

Hemisphere गोलार्ध; northern—उत्तर गोल; southern—दक्षिण गोल

Homogeneous समजातीय

Horizon क्षितिज; Rational—यथार्थ—; sensible—स्पष्ट—;

Horizontal तिर्यक, क्षितिज सम

Hour होरा, घंटा; —angle नतकाल, घंटा-कोण

Hyperbola अतिपरवलय

Immeasurable अमूर्त

Incident आपात, आनेवाली; —ray आपात किरण

Index of refraction वर्तनाङ्क

Integral calculus चलराशि कलन

Integration चलराशि क्रिया, चलराशि कलन

Jupiter बृहस्पति, गुरु, मुश्तरी

Latitude celestial शर, विक्षेप; geographical अक्ष, अक्षांश

Leo सिंह, असद اسد

Leporis शशक

Libra तुला, मीज़ान میزان

Lion सिंह, असद اسد

Linear equation एकघात समीकरण

Logarithm लघुरिक्थ; logarithmic sine लघु-

रिकीय ज्या

Longitude, celestial- भोग, भोगांश; geographical देशान्तर

Lord of day दिनपति; of hour होरापति; of month मासपति; of year वर्षपति

Lyrae α अभिजित

Markab पूर्वभाद्रपदका दक्षिण तारा

Mars कुज, मंगल, मिर्रीख़ مریخ

Mercury बुध, उतारिद عطارد

Meridian याम्योत्तर वृत्त; — line उत्तर-दक्षिण रेखा; standard— मध्यरेखा

Measurable मूर्त

Minute of arc कला, लिप्ता; of time मिनट

Month मास; lunar or lunisolar चान्द्रमास, sidereal—नाक्षत्रमास; solar सौरमास

Moon चन्द्र, चन्द्रमा, क़मर; full—पूर्णमासी, पूर्णिमा; new—अमावस्या, अमावस, दर्श

Neptune नेप्चून, वरुण

Node पात; ascending- उत्तरपात, राहु; descending node दक्षिण पात, केतु

Nonagecimal point त्रिभोनलग्न, वित्रिभलग्न; sine of zenith distance of—दृक्क्षेप

cosine " —दृग्गति

Normal लम्ब

Nutation अक्ष विचलन

Oblique तिरछा

Obliquity of ecliptic परमापक्रम

Observatory वेधशाला, मानमन्दिर

Odd ओज, विषम

Opposition आमने सामने, षड्भान्तर

Orbit कक्षा, कक्षावृत्त

Ordinate कोटि

Orion ओरायन, अग्रहायण

Parallax लंबन; horizontal—क्षितिजलम्बन, परम लंबन—; in declenation क्रान्ति लंबन;—in latitude नति, शर-लंबन—in longitude हरिज, भोगांश लंबन; —in right ascension विषुवांश लंबन

Pegasus, square of भाद्रपदा वर्ग, प्रौष्ठपदा

Penumbra परिछाया

Perihelion नीच

Periodical नियतकालिक

Perpendicular लम्ब, कोटि

Perturbing force विचालक शक्ति

Physical astronomy भौतिक ज्योतिष

Pisces मीन, हूत حوت

Planet ग्रह, ताराग्रह; Inferior—अन्तर्ग्रह, भीतरीग्रह; superior—बहिर्ग्रह; बाहरी ग्रह

Polar day विष्य दिन;—distance ध्रुवान्तर

Pole ध्रुव; celestial—आकाशीय ध्रुव; ecliptic—कदम्ब, क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव terrestrial—मेरु

Pollux पुनर्वसुका दूसरा तारा, पोलक्स

Precession of equinoxes वसंत सम्पात चलन,—of solstices अयन चलन

Prime vertical सममण्डल

Progression (arithmetical) श्रेढी व्यवहार

Projection छेद्यक

Quadrant पद, पाद; even-समपद, युग्मपद; odd–ओजपद, विषमपद

Radian रेडियन, त्रिज्यामान

Radius त्रिज्या, अर्द्धव्यास; —vector कर्ण, मन्दकर्ण; of earth's shadow भूभार्ध

Ram मेष, हमल حمل

Refraction वर्तन, किरणवक्रीभवन

Refracted ray वर्तित किरण
Regulus मघा, जबह جبہ
Resultant लब्ध
Revolution भगण; period of—भगणकाल
Right ascension विषुवांश, विषुवकाल, विषुवत्काल
Rising point of ecliptic लग्न, उदयलग्न
Sagittarius धनु, कौस قوس
Satellite उपग्रह
Saturn शनि
Scorpion या Scorpio वृश्चिक, अकरब عقرب
Secant छेदन रेखा
Second विकला, सेकंड
Section छेद
Sign सायन राशि
Similar सजातीय
Sine ज्या, भुजज्या, क्रमज्या;—of colatitude लम्बज्या
Sirius लुब्धक, मृगव्याध
Six o'clock line उन्मण्डल
Solstice अयन विन्दु; summer—दक्षिणायन विन्दु winter—उत्तरायण विन्दु
Solstitial colure अयनवृत्त, अयनान्तवृत्त; —point अयन विन्दु
Spherical astronomy गोलीय ज्योतिष
Spherics गोलयंत्र
Spica चित्रा, सिमाक سماک
Substitution उत्थापन
Tangent स्पर्श रेखा
Taurus वृष, वृषभ, सौर ثور
Telescope दूरदर्शक, दूरबीन
Transparent पारदर्शक
Trigonometrical ratio त्रिकोणमितीय सम्बन्ध
Twilight सन्धि प्रकाश
Twin मिथुन, जौज़ा جوزا
Umbra छाया
Uniform एक रूप
Uranus अरुण, यूरेनस
Variable चल या चल राशि
Variation पाक्षिक संस्कार
Vega अभिजित, ग्रावेह واقع

Velocity वेग, गति; rectilinear—रेखात्मक गति, angular—कोणात्मक गति

Venus शुक्र

Versed sine उत्क्रमज्या

Vertical ऊर्ध्वाधर;—circle ऊर्ध्ववृत्त

Virgin या Virgo कन्या, सुम्बुल سنبله

Water bearer कुंभ, दल्व دلو

Winter constellations शीतकालके नक्षत्र

Year वर्ष; jovial-संवत्सर; luni-solor—चान्द्र वर्ष; sidereal—नाक्षत्र सौर वर्ष; solar year सौर वर्ष; tropical year—सायन वर्ष या साम्पातिक वर्ष

Zenith खमध्य, खस्वस्तिक;-distance नतांश

ग्रन्थ सूची

(संस्कृत, हिन्दी या उर्दू के उन ग्रन्थों, पंचांगों या पत्रों की सूची जिनकी सहायता विज्ञान भाष्य में ली गयी है ।)

आर्यभटीय परमेश्वराचार्य कृत संस्कृत टीका तथा उदय नारायण सिंह की हिन्दी टीकाके साथ, ब्रह्म प्रेस इटावाका सं० १९६३ वि० का छपा ।

खंडखाद्यक मराठी के भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर ।

गणक तरंगिणी म० म० सुधाकर द्विवेदी की लिखी और मेडिकल हाल प्रेस बनारस की सं० १९४९ वि० की छपी ।

गीता रहस्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के मराठी पुस्तक का माधवराव सप्रेका हिन्दी अनुवाद जो पूना के चित्रशाला स्टीम प्रेस में सं० १९७३ वि० में छपा था ।

ग्रहलाघव मल्लारि, विश्वनाथ और सुधाकर द्विवेदी की संस्कृत टीका सहित और म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ।

चलनकलन म० म० सुधाकर द्विवेदी कृत ।

ज्योतिर्गणित वेंकटेश बापूजी केतकर कृत शक १८१२ का छपा ।

तैत्तिरीय संहिता भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधार पर

दामोदरीय भटतुल्य ,, ,,

धर्म-सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का शक १८२६ का छपा

नक्षत्र कल्प भारतीय ज्योतिःशास्त्रके आधार पर ।

नारद संहिता ,, ,,

निर्णय सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का छपा ।

पंच सिद्धान्तिका बराहमिहिर कृत और डाक्टर थीवो तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी के अंग्रेजी, संस्कृत अनुवाद के साथ मेडिकल, हाल प्रेस बनारस को १८८९ ई० की छपी।

पंचांग (१९८५ वि० के केतकी, चित्रशाला प्रेसका, गुजराती का चैत्री, नवल किशोर प्रेस का, पंचाग प्रवर्तक कमेटीका, बालकृष्ण शास्त्री का, बालकृष्ण तुकाराम का, हिन्दू विश्व-विद्यालय का विश्व पंचाग, शास्त्र शुद्ध ऐक्य वर्द्धक तथा १९८३ वि० का गणेशदत्त शर्मा का, नवल किशोर प्रेस का, भारत भूषण, विजय और विश्व पंचाग; नाविक पंचांग १९२२ तथा १९२८ ई० के)

वाराही संहिता (बृहत्संहिता) म० म० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी टीका सहित नवल किशोर प्रेस में छपी।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदीकी संस्कृत टीका सहित और उन्हीं की सम्पादित, मेडिकल हाल प्रेस बनारस में १९०२ ई० का छपा।

भगवत्गीता

भगवत्गीता रहस्य (देखो गीता रहस्य)

भारतीय ज्योतिःशास्त्र शंकर बालकृष्ण दीक्षितका मराठीमें लिखा और पूनाके आर्य भूषण प्रेसका शक १८१८ में छपा।

भारत भ्रमण

मकरंदसारिणी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईकी संवत् १९६० वि० की छपी।

मनुस्मृति पं० जनार्दन झा की भाषा टीका सहित कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेंसी से सं० १९८१ में प्रकाशित।

महासिद्धान्त द्वितीय आर्यभट का लिखा, म० म० सुधाकर द्विवेदी की टीका सहित चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस की १९१० ई० का छपा।

माधुरी खंड २ संख्या ४ नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मर्यादा १९७८ और १९७९ वि० की, काशी के ज्ञान मण्डल से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मुहूर्त चिन्तामणि पं० रामेश्वर भट्ट की टीका सहित सं० १९७४ वि० का निर्णय सागर प्रेस का छपा।

मुहूर्त तत्व भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

रत्नमाल श्रीपति कृत " "

रत्नकोश लल्ल कृत " "

रोशनी उर्दू का वैज्ञानिक मासिक पत्र अप्रैल १९१६ ई० को।

लघु मानस भारतीय ज्योतिः शास्त्रके आधार पर।

लल्ल तंत्र भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

लीलावती

विज्ञान मासिक पत्र

विशुद्ध सिद्धान्त पंजिका बंगला।

वेदाङ्ग ज्योतिष सोमाकरकी टीका तथा म० म० सुधाकर द्विवेदीकी टीका सहित और इन्हीं के द्वारा सम्पादित।

वृद्ध गार्गीय संहिता भा० ज्यो शा० के आधार पर।

वृहत्तिथि चिंतामणि गणक तरंगिणी के आधार पर।

शतपथ ब्राह्मण भा० ज्यो० शा० के आधार पर।

शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त " "

सिद्धान्ततत्वविवेक म० म० सुधाकर द्विवेदी तथा म० म० मुरलीधर शर्मा की टिप्पणियों सहित ब्रजभूषण दास कम्पनी द्वारा बनारस से १९२४ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त दर्पण चन्द्रशेखर सिंह सामन्तका लिखा और प्रो० योगेशचन्द्र राय द्वारा सम्पादित और १८९९ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त शिरोमणि (१) गणिताध्याय कलकत्ते के वाचस्पत्य यंत्रका १९१५ ई० का छपा और गोलाध्याय नारायण यंत्रका १८९९ का छपा, (२) म० म० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी सहित बनारस के मेडिकल हाल प्रेसका १८६६ ई० का छपा, (३) गोलाध्याय पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रभा भाषा भाष्य सहित सम्पादित तथा नवल किशोर प्रेस में १९११ ई० का छपा।

सिद्धान्त शेखर सुधा वर्षिणी टीकाके आधारपर।

सुन्दरी सिद्धान्त भा० ज्यो० शा० के आधारपर।

सूर्य सिद्धान्त (१) पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी द्वारा अनुवादित और सम्पादित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सं० १९७५ वि० में प्रकाशित।

(२) गूढार्थ प्रकाशित टीकाके साथ पं० बल्देव प्रसाद मिश्र द्वारा हिन्दी में अनुवादित और सम्पादित तथा वेंकटेश्वर प्रेस में १८९६ ई० में मुद्रित।

(३) पं० माधव पुरोहित की टीका सहित पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित और नवल किशोर प्रेस में १९०४ ई० में मुद्रित।

(४) विज्ञानानन्द स्वामी द्वारा बंगला भाषामें अनुवादित और सम्पादित तथा भारत मिहिर यन्त्रालय द्वारा १९०९ ई० में मुद्रित।

(५) म० म० सुधाकर द्विवेदीकी सुधावर्षिणी टीका सहित बंगालकी एशियाटिक सोसाइटी द्वारा १९२५ ई० में दूसरी बार मुद्रित परन्तु लेखकको १९२४ ई० में प्राप्त।

(६) पंच सिद्धान्तिका का डाक्टर थीवो और सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ।

विज्ञान-भाष्यमें उपयोग किये गये

अंग्रेज़ी ग्रन्थों की सूच

Askwith's pure Geometry.

Asutosh Mukhopadhyaya's Geometry of Conics.

Ball's Spherical Astronomy.

Berry's Short History of Astronomy.

Brennand's History of Hindu Astronomy.

Burgess Suryasiddhanta published by Calcutta Univercity in 1935 AD.

Encyclopaedia Brittanica.

Godfray's Treatise of Astronomy.

Hall and knight's Trigonometry.

Heath's Popular Astronomy.

Heroes of Science (Astronomers)

Herschel's Outlines of astronomy.

Imperial Gazetteer.

Kaye's Hindu Astronomy.

L.D. Swami kannu Pillai's Indian Chronology

Leader 25th Oct 1939.

Lockyer's Elementory Lessons on Astronomy.

Loney's Elements of Coordinate Geometry.

Loomi's Practical Astronomy.

Nautical Almanac of 1922 and 1928 .

Parkers El ements of Astronomy.
Popular Hindu Astronomy Part I (by Kalidas Mukherji)
Scientific American July 1928.
Todhunter and Leathern Spherical Trigonometry-
Williamson Differential Calculus.

भारतीय ग्रन्थकार

जिनकी चर्चा विज्ञान-भाष्यमें की गयी है

विदेशी ग्रंथकार

जिनकी चर्चा विज्ञान-भाष्यमें की गयी है

पारिभाषिक शब्दोंकी

अनुक्रमणिका

(अंकोंसे पृष्ठांक समझना चाहिए)

मुद्रक—कला प्रेस, प्रयाग